साहित्य अमृत

मासिक

आषाढ-श्रावण, संवत्-२०७९ ❖ जुलाई २०२२

वर्ष-२७ ❖ अंक-१२ ❖ पृष्ठ ८४ | यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित | ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)

श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक

पीयूष कुमार

संपादक

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२

फोन : ०११-२३२८९७७७

०८४४८६१२२६९

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क

एक अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

साहित्य अमृत के बैंक खाते का विवरण

बैंक ऑफ इंडिया

खाता सं. : **600120110001052**

IFSC : **BKID0006001**

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

✍ **संपादकीय**

विश्व मंच पर हिंदी… ४

✍ **प्रतिस्मृति**

अकेली/ *मन्नू भंडारी* ६

✍ **कहानी**

केशर-कश्मीरा/ *मुरलीधर वैष्णव* १०

निर्मला आंटी/ *मीना पाठक* २०

प्रेम की पीर/ *हरीश नवल* ४४

दर्पण, जुगनू और रात/ *अंजू शर्मा* ५६

✍ **लघुकथा**

आजादी/ *सुनीता शानू* ५०

ड्यूटी/ *सुनीता शानू* ६७

प्रकाश-पुंज/ *पूनम सिंह* ६९

✍ **आलेख**

आज भी सिरमौर है प्रेमचंद का साहित्य/ *प्रकाश मनु* १४

भगवतीचरण वोहरा का बलिदान/ *कल्पना पांडे* २६

प्रणाम और संवाद/ *जीतसिंह चौहान* ३५

क्रांति के महान् अग्रदूत : तात्या टोपे/ *मनमोहन गुप्ता* ३९

साहित्य में वर्षा या पावस ऋतु/ *प्रवीण शंकर त्रिपाठी* ५२

हिंदी गजलों में स्त्री-चेतना/ *सोनरूपा विशाल* ६२

✍ **कविता**

कविताएँ/ *ऋता शुक्ल* ९

कविताएँ/ *जनार्दन द्विवेदी* १९

पानी भरी कटोरी/ *माला श्रीवास्तव* २४

चार ग़ज़लें/ *माला कपूर 'गौहर'* २५

यदि जीवन में/ *बी.एल. गौड़* ३०

प्रकृति की ओर/ *प्रीति कच्छल* ३८

दोहे/ *आलोक बेजान* ४७

बहुत याद आते हैं…/ *मनोहर मधुकर* ६०

गजलें/ *संदीप राशिनकर* ६५

जंगल की बातें/ *राबिया परवीन* ७१

सावन की कुंडलियाँ/ *श्याम सुंदर श्रीवास्तव 'कोमल'* ७६

✍ **जिन्होंने जगाई स्वाधीनता की अलख**

गणेश शंकर विद्यार्थी, चंद्रशेखर आजाद ३२

✍ **राम झरोखे बैठ के**

मच्छर की महत्ता/ *गोपाल चतुर्वेदी* ३६

✍ **ललित-निबंध**

डीकुर/ *नर्मदा प्रसाद सिसोदिया* ४८

✍ **साहित्य का भारतीय परिपार्श्व**

इकटक दृष्टि से/ *बी.आर. लक्ष्मण राव* ५१

✍ **व्यंग्य**

नींद/ *परगट सिंह जठोल* ६१

✍ **साहित्य का विश्व परिपार्श्व**

एक नन्हे सितारे के नीचे/ *मारिया विस्लावा एना सिंबोंस्का* ६६

✍ **स्मरण**

महाराष्ट्र के लाड़ले लोकप्रिय लेखक पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे/ *अशोक वाधवाणी* ६८

✍ **लोक-साहित्य**

बुंदेलखंड की लोकसंस्कृति के परिचायक लोकगीत/ *दीपिका विजयवर्गीय* ७०

✍ **यात्रा-वृत्तांत**

गोवा, जरा हट के/ *राजेश जैन* ७२

✍ **बाल-संसार**

मधुमक्खियाँ/ *विष्णु भट्ट* ७४

✍ वर्ग-पहेली ७७

✍ पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७८

✍ साहित्यिक गतिविधियाँ ७९

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

विश्व मंच पर हिंदी...

पूरे देश में तथा विश्व भर के अनेक देशों में बसे हिंदी-प्रेमियों में खुशी की लहर दौड़ गई थी। पूरे सोशल मीडिया पर यह समाचार छा गया था कि संयुक्त राष्ट्र में अब हिंदी की गूँज सुनाई देगी। दरअसल संयुक्त राष्ट्र की महासभा (जनरल एसेंबली) ने अपने कामकाज के प्रचार-प्रसार के लिए छह आधिकारिक भाषाओं के साथ-साथ पुर्तगाली, स्वाहिली, उर्दू, बांग्ला तथा हिंदी को भी अपना लिया है।

छह आधिकारिक भाषाएँ अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पैनिश, चीनी, रूसी, अरबी हैं। झूठ सोशल मीडिया का एक स्थायी भाव बन गया है, अति उत्साही लोगों ने पोस्टर बनाकर या वीडियो बनाकर यह प्रचारित कर दिया कि हिंदी संयुक्त राष्ट्र की 'सातवीं भाषा' बन गई है और इसे भारत की महान् उपलब्धि बता दिया गया; फिर क्या था, सब खुशी में इतने भावविह्वल हो गए कि बिना सच्चाई जाने झूठे संदेश को फॉरवर्ड करने लगे! जिन्होंने सच बताने का प्रयास किया, उन्हें खुशी में बाधक मानकर 'ट्रोल' किया गया। भारत में एक वर्ग ने खुश होने का एक नया साधन खोज लिया है कि सच्चाई कुछ भी हो, एक झूठ गढ़ो और फैला दो! खैर, बात हिंदी की हो रही थी। निश्चय ही बहुत खुशी की बात है कि संयुक्त राष्ट्र में हिंदी का प्रवेश हुआ। भले ही 'उर्दू' पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा है और 'बांग्ला' बांग्लादेश की, लेकिन 'हिंदी' के साथ इन मूल रूप से भारतीय भाषाओं को शामिल किया जाना भी खुशी की बात है।

भारत के हिंदी-प्रेमियों, हिंदी-सेवियों को हिंदी के संयुक्त राष्ट्र में एक कदम रखने के बाद इस बात पर गहन विचार-विमर्श करने तथा गंभीर प्रयास करने की आवश्यकता है कि हिंदी कैसे अपना 'सही' स्थान पाए। 'सही' स्थान निश्चय ही संयुक्त राष्ट्र की सातवीं आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त करना होगा।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। आबादी के लिहाज से विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है। हिंदी की बात करें तो लिपि की वैज्ञानिकता, व्याकरण, शब्द संख्या आदि के पैमाने पर संयुक्त राष्ट्र की किस आधिकारिक भाषा से कम श्रेष्ठ है। लेकिन एक कहावत है 'अपना दाम खोटा तो परखनेवाले का क्या दोष!' जब संयुक्त राष्ट्र में पहली बार हिंदी के संदर्भ में चर्चा हुई थी तो एक विदेशी राजनयिक ने कटाक्ष किया था कि 'पहले अपने देश में तो हिंदी ले आइए।' उन राजनयिक की पोस्टिंग कभी भारत में भी हुई थी और वह भारत में हिंदी की स्थिति से परिचित थे। ऐसा ही एक प्रसंग और याद आता है एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन था। सभी देशों के प्रतिनिधि माइक पर आते तथा अपने-अपने देश की भाषा में बोलकर बैठ जाते। जब भारत की बारी आई तो उसने अंग्रेजी में वक्तव्य दिया। सम्मेलन के संचालक ने चुटकी लेते हुए कहा, 'आपकी अपनी कोई भाषा नहीं है! ओह! याद आया, आप लोग तो सदियों गुलाम रहे हैं।' कितना कटु तथा लज्जा में डुबोनेवाला कटाक्ष था यह, लेकिन उसे यह अवसर भारतीय प्रतिनिधि ने प्रदान किया था। यह बात दशकों पुरानी है किंतु भारत में हिंदी को लेकर क्या कोई बुनियादी बदलाव आया है! पिछले दिनों संस्कृति मंत्रालय द्वारा भारत के इतिहास का सबसे बड़ा साहित्य महोत्सव शिमला में आयोजित हुआ। वाहनों से उतरकर लगभग आधा किलोमीटर आयोजन स्थल तक जाना था। दोनों तरफ दुकानों में अंग्रेजी के बोर्ड थे। तीन प्रतिष्ठित कवि साथ थे—मैंने कहा, 'हिंदी का कोई अक्षर दिख जाए तो आपको बधाई दे दूँ!' पूरे शिमला में किसी होटल, किसी दुकान में हिंदी नहीं खोज पाएँगे सिवाय सरकारी कार्यालयों के, जबकि हिमाचल प्रदेश की राजभाषा हिंदी है। तर्क दिया जा सकता है कि शिमला पर्यटन-स्थल है, दूसरे प्रांतों से लोग आते हैं किंतु किसी अन्य हिंदी भाषी प्रांत के किसी भी नगर में यही दृश्य देखने को मिलेगा!

कुछ हिंदी प्रेमी इस बात से खुश हो लेते हैं कि मुंबई में हिंदी के

लिखे साइनबोर्ड दिख जाते हैं, जबकि वह गैर-हिंदी भाषी है, किंतु वे बोर्ड हिंदी में नहीं, मराठी में होते हैं, जिसकी लिपि 'देवनागरी' ही है। मराठी भाषियों में कम-से-कम अपनी भाषा के प्रति सम्मान तो है। हिंदी भाषियों के मन में अपनी हिंदी के प्रति सम्मान कब जागेगा? दिल्ली के 'ऐरोसिटी' चले जाइए, मजाल है कि हिंदी का एक अक्षर कहीं दिख जाए; किसी भी मॉल में चले जाइए, खोज लीजिए, हिंदी का एक अक्षर! क्या आपके संज्ञान में हिंदी भाषी प्रांतों के करोड़ों परिवारों में किसी ऐसे परिवार का पता है, जहाँ बच्चे को जरा सी समझ आने पर 'तुम्हारी नोज कहाँ है', 'तुम्हारी आइज कहाँ है' न सिखाया गया हो; अंग्रेजी की घिसी-पिटी 'पोयम' न सिखाई गई हो।

आप यूके के स्कॉटलैंड जाइए, हर साइनबोर्ड पर पहले स्कॉटिश में लिखा मिलेगा, फिर अंग्रेजी में। वेल्स जाइए तो पहले वहाँ की भाषा में, फिर अंग्रेजी के नामपट मिलेंगे। हिंदी से रोजी-रोटी कमानेवाला भी अंग्रेजी में 'विजिटिंग कार्ड' थमाएगा। हिंदी से करोड़ों रुपए कमानेवाले अभिनेता-अभिनेत्रियाँ अंग्रेजी में बोलकर शान दिखाते हैं—भले ही चैनल हिंदी का हो तथा कार्यक्रम भी हिंदी में हो! आज भी भारत के हजारों कॉन्वेंट स्कूलों में हिंदी में बात करना प्रतिबंधित है। याद करिए मध्य प्रदेश के कस्बे शिवपुरी के कॉन्वेंट स्कूल की घटना, जहाँ एक बच्चे को कक्षा में अपने साथी से हिंदी में बात करते हुए 'पकड़ा गया' और आठ पेज में 'आई विल नॉट स्पीक इन हिंदी' (मैं हिंदी में नहीं बोलूँगा) की सजा सुनाई गई थी। छात्रों को तरह-तरह की अन्य सजा देने की खबरें भी खूब सामने आई हैं—अपराध—'हिंदी में बात कर लेना।' जबलपुर के इंजीनियरिंग कॉलेज के, माँ-बाप की इकलौती संतान की आत्महत्या को भी याद करना जरूरी है, जिसने लिखा कि 'मेरी अंग्रेजी कमजोर है, जिसके कारण मुझे अपमान का शिकार होना पड़ता है! इसी तरह इंदौर की प्रतिभावान छात्रा ने इसलिए आत्महत्या कर ली कि उसका अंग्रेजी का परचा 'अच्छा नहीं' हुआ! बाद में परिणाम आया तो अंक मिले थे ८३ (तिरासी)। अंग्रेजी का इतना भयावह आतंक! भविष्य नष्ट हो जाने की आशंका। ऐसा आपने दुनिया के किसी और देश में देखा-सुना है कि फ्रांस के किसी छात्र ने इसलिए आत्महत्या कर ली हो कि उसे जर्मन भाषा अच्छे से नहीं आती! आज भी पूरे देश में जितने भी प्रतिष्ठित पाठ्यक्रम हैं, चाहे चिकित्सा हो या अभियांत्रिकी या कानून या चार्टर्ड एकाउंटेंट या आर्कीटेक्चर या अन्य, सबका माध्यम (अपवादों को छोड़कर) अंग्रेजी ही है। इसीलिए हर तरफ अंग्रेजी का ही वर्चस्व है। अंग्रेजी ही आज भी 'महारानी' बनी हुई है। हिंदी दुर्दशा, उपेक्षा की शिकार है। हिंदी भाषियों में हिंदी को लेकर गुलामी की मानसिकता से छुटकारा नहीं मिल रहा है। हिंदी भाषी प्रांतों में भी घर-घर दरवाजे के बाहर अंग्रेजी की नामपट्टियाँ मिलेंगी। मांगलिक कार्यों, जैसे विवाह आदि के निमंत्रण-पत्र अंग्रेजी में ही मिलेंगे, भले ही किसी हिंदी कवि, लेखक, पत्रकार, हिंदीसेवी का परिवार क्यों न हो! अंग्रेजी इतनी हावी है कि हिंदी के एक वाक्य में अंग्रेजी के तीन-चार शब्द अवश्य प्रवेश पा जाएँगे। कुछ लोग 'हिंगलिश' को भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने को कटिबद्ध हैं। आत्मीय रिश्तों के लिए भी 'मेरी मदर', 'मेरे फादर', 'मेरी सिस्टर', 'मेरी वाइफ' आदि का बोलबाला है।

आप अपने दिल पर हाथ रखकर, एक सर्वप्रभुतासंपन्न राष्ट्र के गौरवशाली नागरिक के रूप में ईमानदारी से सोचकर बताएँ कि क्या देश में हिंदी की इतनी उपेक्षा, अपमान तथा दुर्दशा के भयावह परिदृश्य के बावजूद संयुक्त राष्ट्र में हिंदी के प्रवेश पर खुशी मनाना कितना खोखला लगता है। यह ठीक है कि भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयीजी संयुक्त राष्ट्र में हिंदी में बोलते हैं तो खुशी मनाई जाती है। रूस के राष्ट्रपति ख्रुश्चेव विमान से उतरते ही नेहरूजी से कहते हैं, 'आवारा हूँ' (राजकपूर की फिल्म का संदर्भ) और सारे अखबारों की सुर्खियों में यही वाक्य होता है! ओबामा भारत में एक सभा में अचानक हिंदी में एक वाक्य 'बड़े-बड़े शहरों में…' बोल देते हैं, खुशी की लहर दौड़ जाती है। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन में 'नमस्ते, कैसे हैं?' बोलते हैं तो खुशी की लहर दौड़ जाती है। लेकिन इस तरह खुशी मनाने के साथ हिंदी-सेवियों को बहुत गंभीर होकर हिंदी को अपने ही देश में सुदृढ़ करना होगा, उसे उसका सम्मानजनक स्थान दिलाना होगा। शासन-प्रशासन में, शिक्षा में, न्याय में, कारोबार में हर क्षेत्र में हिंदी को प्रतिष्ठित करना होगा। गुलामी की मानसिकता को उखाड़ फेंकना होगा। यदि स्वाधीनता के अमृत महोत्सव में भी यह न हुआ तो कब होगा? अनेक निराशाओं के बीच सुखद यह है कि भारत सरकार में हिंदी में कामकाज बढ़ा है। भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदीजी वैश्विक मोर्चों पर हिंदी में बोलते हैं। दुनिया भर में भारतवंशी एवं प्रवासी भारतीय हिंदी को अपनी पहचान मानकर समृद्ध करने में लगे हैं। इंटरनेट ने हिंदी के पक्ष में क्रांतिकारी योगदान दिया है। ऐसे में हिंदी-सेवियों को संयुक्त राष्ट्र की सातवीं आधिकारिक भाषा बनाने में जुट जाना चाहिए।

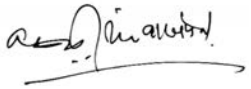

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

अकेली

● मन्नू भंडारी

सोमा बुआ बुढ़िया हैं।
सोमा बुआ परित्यक्ता हैं।
सोमा बुआ अकेली हैं।

सोमा बुआ का जवान बेटा क्या जाता रहा, उनकी अपनी जवानी चली गई। पति को पुत्र-वियोग का ऐसा सदमा लगा कि वे पत्नी, घर-बार तजकर तीर्थवासी हुए और परिवार में कोई ऐसा सदस्य था नहीं, जो उनके एकाकीपन को दूर करता। पिछले बीस वर्षों से उनके जीवन की इस एकरसता मैं किसी प्रकार का कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ, कोई परिवर्तन नहीं आया। यों हर साल एक महीने के लिए उनके पति उनके पास आकर रहते थे, पर कभी उन्होंने पति की प्रतीक्षा नहीं की, उनकी राह में आँखें नहीं बिछाईं। जब तक पति रहते, उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता, क्योंकि पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोजमर्रा के जीवन की अबाध गति से बहती स्वच्छंद धारा को कुंठित कर देता। उस समय उनका घूमना-फिरना, मिलना-जुलना बंद हो जाता और संन्यासीजी महाराज से तो यह भी नहीं होता कि दो मीठे बोल-बोलकर सोमा बुआ को एक ऐसा संबल ही पकड़ा दें, जिसका आसरा लेकर वह उनके वियोग के ग्यारह महीने काट दें। इस स्थिति में बुआ को अपनी जिंदगी पास-पड़ोसवालों के भरोसे ही काटनी पड़ती थी। किसी के घर मुंडन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, बुआ पहुँच जातीं और फिर छाती फाड़कर काम करतीं, मानो वे दूसरे के घर में नहीं, अपने ही घर में काम कर रही हों।

आजकल सोमा बुआ के पति आए हुए हैं और अभी-अभी कुछ कहासुनी हो चुकी है। बुआ आँगन में बैठी धूप खा रही हैं, पास रखी कटोरी से तेल लेकर हाथों में मल रही हैं और बड़बड़ा रही हैं। इस एक महीने में अन्य अवयवों के शिथिल हो जाने के कारण उनकी जीभ ही सबसे अधिक सजीव और सक्रिय हो उठती है। तभी हाथ में एक फटी साड़ी और पापड़ लेकर ऊपर से राधा भाभी उतरीं।

"क्या हो गया बुआ, क्यों बड़बड़ा रही हो? फिर संन्यासीजी महाराज ने कुछ कह दिया क्या?"

"अरे, मैं कहीं चली जाऊँ, सो भी इन्हें नहीं सुहाता। कल चौकवाले किशोरीलाल के बेटे का मुंडन था, सारी बिरादरी का न्योता था। मैं तो जानती थी कि ये पैसे का ही गरूर है, जो मुंडन पर भी सारी बिरादरी को न्योता है, पर काम उन नई-नवेली बहुओं से सँभलेगा नहीं, सो जल्दी ही चली गई। हुआ भी वही", और सरककर बुआ ने राधा के हाथ से पापड़ लेकर सुखाने शुरू कर दिए। "एक काम गत से नहीं हो रहा था। अब घर में कोई बड़ा-बूढ़ा हो तो बतावे या कभी किया हो तो जानें। गीतवाली औरतें मुंडन पर बन्ना-बन्नी गा रही थीं, मेरा तो हँसते-हँसते पेट फूल गया।" और उसकी याद से ही कुछ देर पहले का दु:ख और आक्रोश धुल गया। अपने सहज स्वाभाविक रूप में वे कहने लगीं, "भट्ठी पर देखो तो अजब तमाशा—समोसे कच्चे ही उतार दिए और इतने बना दिए कि दो बार खिला दो और गुलाबजामुन इतने कम कि एक पंगत में भी पूरे न पड़ें। उसी समय खोया मँगाकर नए गुलाबजामुन बनाए। दोनों बहुएँ और किशोरीलाल तो बिचारे इतना जस मान रहे थे कि क्या बताऊँ? कहने लगे, 'अम्माँ! तुम न होतीं तो आज भद्द उड़ जाती। अम्माँ! तुमने लाज रख ली!' मैंने तो कह दिया कि अरे, अपने ही काम नहीं आवेंगे, तो कोई बाहर से तो आवेगा नहीं। ये तो आजकल इनका रोटी-पानी का काम रहता है, नहीं तो मैं तो सवेरे से ही चली जाती!"

"तो संन्यासी महाराज क्यों बिगड़ पड़े? उन्हें तुम्हारा आना-जाना अच्छा नहीं लगता बुआ!"

"यों तो मैं कहीं आऊँ-जाऊँ सो ही इन्हें नहीं सुहाता और फिर कल किशोरी के यहाँ से बुलावा नहीं आया। अरे, मैं तो कहूँ कि घरवालों का कैसा बुलावा? वे लोग तो मुझे अपनी माँ से कम नहीं समझते, नहीं तो कौन भला यों भट्ठी और भंडारघर सौंप दे? पर उन्हें अब कौन समझाए। कहने लगे, तू जबरदस्ती दूसरों के घर में टाँग अड़ाती फिरती है।" और यकायक उन्हें उस क्रोध भरी वाणी और कटुवचनों का स्मरण हो आया, जिनकी बौछार कुछ देर पहले ही उन पर हो चुकी थी। याद आते ही फिर

उनके आँसू बह चले।

"अरे, रोती क्या हो बुआ! कहना-सुनना तो चलता ही रहता है। संन्यासीजी महाराज एक महीने को तो आकर रहते हैं, सुन लिया करो और क्या?"

"सुनने को तो सुनती ही हूँ, पर मन तो दु:खता ही है कि एक महीने को आते हैं, तो भी कभी मीठे बोल नहीं बोलते। मेरा आना-जाना इन्हें सुहाता नहीं, सो तू ही बता राधा, ये तो साल में ग्यारह महीने हरिद्वार रहते हैं। इन्हें तो नाते-रिश्तेवालों से कुछ लेना-देना नहीं, पर मुझे तो सबसे निभाना पड़ता है। मैं भी सबसे तोड़-ताड़कर बैठ जाऊँ तो कैसे चले? मैं तो इनसे कहती हूँ कि जब पल्ला पकड़ा है तो अंत समय में भी साथ ही रखो, सो तो इनसे होता नहीं। सारा धरम-करम ये ही लूटेंगे, सारा जस ये ही बटोरेंगे और मैं अकेली पड़ी-पड़ी, यहाँ इनके नाम को रोया करूँ। उस पर से कहीं आऊँ-जाऊँ, वह भी इनसे बरदाश्त नहीं होता···" और बुआ फूट-फूटकर रो पड़ीं। राधा ने आश्वासन देते हुए कहा, "रोओ नहीं बुआ, अरे वे तो इसीलिए नाराज हुए कि बिना बुलाए तुम चली गईं।"

"बेचारे इतने हंगामे में बुलाना भूल गए, तो मैं भी मान करके बैठ जाती? फिर घरवालों का कैसा बुलाना? मैं तो अपनेपन की बात जानती हूँ। कोई प्रेम नहीं रखे तो दस बुलावे पर नहीं जाऊँ और प्रेम रखे तो बिना बुलाए भी सिर के बल जाऊँ। मेरा अपना हरखू होता और उसके घर काम होता, तो क्या मैं बुलावे के भरोसे बैठी रहती? मेरे लिए जैसा हरखू, वैसा किशोरीलाल! आज हरखू नहीं है, इसी से दूसरों को देख-देखकर मन भरमाती रहती हूँ!" और वे हिचकियाँ लेने लगीं।

पापड़ों को फैलाकर स्वर को भरसक कोमल बनाकर राधा ने कहा, "तुम भी बुआ बात को कहाँ से कहाँ ले गईं? अब चुप भी होओ! अच्छा देखो, तुम्हारे लिए एक पापड़ भूनकर लाती हूँ, खाकर बताना कैसा है?" और वह पापड़ लेकर ऊपर चढ़ गई।

□

कोई सप्ताह भर बाद बुआ बड़े प्रसन्न मन से आई और संन्यासीजी से बोली, "सुनते हो, देवरजी के ससुरालवालों की किसी लड़की का संबंध भागीरथजी के यहाँ हुआ है। वे सब लोग यहीं आकर ब्याह कर रहे हैं। देवरजी के बाद तो उन लोगों से कोई संबंध ही नहीं रहा, फिर भी हैं तो समधी ही। वे तो तुमको भी बुलाए बिना नहीं मानेंगे। समधी को आखिर कैसे छोड़ सकते हैं?" और बुआ पुलकित होकर हँस पड़ीं। संन्यासी की मौन उपेक्षा से उनके मन को ठेस तो पहुँची, फिर भी वे प्रसन्न थीं। इधर-उधर जाकर वे इस विवाह की प्रगति की खबरें लातीं! आखिर एक दिन वे यह भी सुन आईं कि उनक समधी यहाँ आ गए। जोर-शोर से तैयारियाँ हो रही हैं। सारी बिरादरी को दावत दी जाएगी—खूब रौनक होनेवाली है। दोनों ही पैसेवाले ठहरे।

"क्या जाने हमारे घर तो बुलावा आएगा या नहीं? देवरजी को मरे पच्चीस बरस हो गए, उसके बाद से तो कोई संबंध ही नहीं रखा। रखे भी कौन? यह काम तो मरदों का होता है, मैं तो मरदवाली होकर भी बेमरद की हूँ।" और एक ठंडी साँस उनके दिल से निकल गई।

"अरे वाह बुआ! तुम्हारा नाम कैसे नहीं हो सकता। तुम तो समधिन ठहरीं। देवर चाहे न रहे, पर कोई रिश्ता थोड़े ही टूट जाता है!" दाल पीसती हुई घर की बड़ी बहू बोली।

"है बुआ, नाम है। मैं तो सारी लिस्ट देखकर आई हूँ।" विधवा ननद बोली। बैठे-ही-बैठे दो कदम आगे सरककर बुआ ने बड़े उत्साह से पूछा, "तू अपनी आँखों से देखकर आई है नाम? नाम तो होना ही चाहिए। पर मैंने सोचा कि क्या जाने आजकल के फैशन में पुराने संबंधियों को बुलाना हो-न-हो।" और बुआ बिना दो पल भी रुके वहाँ से चल पड़ीं। अपने घर जाकर सीधे राधा भाभी के कमरे में चढ़ीं, "क्यों री राधा, तू तो जानती है कि नई फैशन में लड़की की शादी में क्या दिया जावे है? समधियों का मामला ठहरा, सो भी पैसेवाले। खाली हाथ जाऊँगी तो अच्छा नहीं लगेगा। मैं तो पुराने जमाने की ठहरी, तू ही बता दे क्या दूँ? अब कुछ बनाने का समय तो रहा नहीं, दो दिन बाकी हैं, सो कुछ बना-बनाया ही खरीद लाना।"

"क्या देना चाहती हो अम्माँ, जेवर, कपड़ा, शृंगारदान या कोई और चाँदी को चीज?"

"मैं तो कुछ भी नहीं समझूँ री। जो कुछ पास है, तुझे लाकर दे देती हूँ, जो तू ठीक समझे, ले आना। बस भद्द नहीं उड़नी चाहिए! अच्छा देखूँ पहले कि रुपए कितने हैं?" और वे डगमगाते कदमों से नीचे आईं। दो-तीन कपड़ों की गठरियों हटाकर एक छोटा सा बक्स निकाला। उसका ताला खोला। इधर-उधर करके एक छोटी सी डिबिया निकाली। बड़े जतन से उसे खोला, उसमें सात रुपए की कुछ रेजगारी पड़ी थी और एक अँगूठी। बुआ का अनुमान था कि रुपए कुछ ज्यादा होंगे, पर जब सात ही रुपए निकले, तो सोच में पड़ गईं। रईस समधियों के घर में इतने से रुपयों से बिंदी भी नहीं लगेगी। उनकी नजर अँगूठी पर गई। यह उनके मृत-पुत्र की एकमात्र निशानी उनके पास रह गई थी। बड़े-बड़े आर्थिक संकटों के समय भी वे उस अँगूठी का मोह नहीं छोड़ सकी थीं। आज भी एक बार उसे उठाते समय उनका दिल धड़क गया, फिर भी उन्होंने पाँच रुपए और एक अँगूठी आँचल में बाँध ली। बक्स को बंद किया और फिर ऊपर को चलीं, पर इस बार उनके मन का उत्साह कुछ ठंडा पड़ गया था और पैरों की गति शिथिल! राधा के पास जाकर बोलीं, "रुपए तो नहीं निकाले बहू। आएँ भी कहाँ से, मेरे कौन कमानेवाला बैठा है? उस कोठरी का किराया आता है, उसमें दो समय की रोटी निकल जाती है जैसे-तैसे!" और वे रो पड़ीं।

राधा ने कहा, "क्या करूँ बुआ, आजकल मेरा भी हाथ तंग है, नहीं तो मैं ही दे देती। अरे, पर तुम देने के चक्कर में पड़ती ही क्यों हो? आजकल तो देने-लेने का रिवाज ही उठ गया है।"

"नहीं रे राधा! समधियों का मामला ठहरा! पच्चीस बरस हो गए, तो भी वे नहीं भूले और मैं खाली हाथ जाऊँ? नहीं-नहीं, इससे तो न जाऊँ, सो ही अच्छा!"

"तो जाओ ही मत। चलो छुट्टी हुई, इतने लोगों में किसे पता लगेगा कि आईं या नहीं।" राधा ने सारी समस्या का सीधा सा हल बताते हुए कहा।

"बड़ा बुरा मानेंगे। सारे शहर के लोग जाएँगे और मैं समधिन होकर नहीं जाऊँगी, तो यही समझेंगे कि देवरजी मरे तो संबंध भी तोड़ लिया। नहीं-नहीं, तू यह अँगूठी बेच ही दे।" और उन्होंने आँचल की गाँठ खोलकर एक पुराने जमाने की अँगूठी राधा के हाथ पर रख दी। फिर बड़ी मिन्नत के स्वर में बोली, "तू तो बाजार जाती है राधा, इसे बेच देना और जो कुछ ठीक समझे, खरीद लेना। बस शोभा रह जावे, इतना खयाल रखना।"

गली में बुआ ने चूड़ीवाले की आवाज सुनी, तो यकायक ही उनकी नजर अपने हाथ की भद्दी मटमैली चूड़ियों पर जाकर टिक गई। कल समधियों के यहाँ जाना है, जेवर नहीं है तो कम-से-कम काँच की चूड़ी तो अच्छी पहन ले। पर एक अव्यक्त लाज ने उनके कदमों को रोक दिया, कोई देख लेगा तो। लेकिन दूसरे ही क्षण अपनी इस कमजोरी पर विजय पाती सी वे पीछे के दरवाजे पर पहुँच गईं और एक रुपया कलदार खर्च करके लाल-हरी चूड़ियों के बंद पहन लिये। पर सारे दिन हाथों को साड़ी के आँचल से ढके-ढके फिरीं।

शाम को राधा भाभी ने बुआ को चाँदी की एक सिंदूरदानी, एक साड़ी और एक ब्लाउज का कपड़ा लाकर दे दिया। सबकुछ देख-पाकर बुआ बड़ी प्रसन्न हुईं और यह सोच-सोचकर कि जब वे यह सब दे देंगी, तो उनकी समधिन पुरानी बातों की दुहाई दे-देकर उनकी मिलनसारिता की कितनी प्रशंसा करेगी, उनका मन पुलकित होने लगा। अँगूठी बेचने का गम भी जाता रहा। पासवाले बनिए के यहाँ से एक आने का पीला रंग लाकर रात में उन्होंने साड़ी रँगी। शादी में सफेद साड़ी पहनकर जाना क्या अच्छा लगेगा? रात में सोईं, तो मन कल की ओर दौड़ रहा था।

दूसरे दिन नौ बजते-बजते खाने का काम समाप्त कर डाला। अपनी रँगी हुई साड़ी देखी तो कुछ जँची नहीं। फिर ऊपर राधा के पास पहुँची, "क्यों राधा, तू तो रँगी साड़ी पहिनती है तो बड़ी आब रहती है, चमक रहती है, इसमें तो चमक आई नहीं?"

"तुमने कलफ जो नहीं लगाया अम्माँ, थोड़ा सा माँड़ दे देतीं तो अच्छा रहता। अभी दे लो, ठीक हो जाएगी। बुलावा कब का है?"

"अरे, नए फैशनवालों की मत पूछो, ऐन मौकों पर बुलावा आता है। पाँच बजे का मुहूरत है, दिन में कभी भी आ जावेगा।"

राधा भाभी मन-ही-मन मुसकरा उठी।

बुआ ने साड़ी मैं माँड़ लगाकर सुखा दिया। फिर एक नई थाली निकाली, अपनी जवानी के दिनों में बिना हुआ क्रोशिए का एक छोटा सा मेजपोश निकाला। थाली में साड़ी, सिंदूरदानी, एक नारियल और थोड़े से बताशे सजाए, फिर जाकर राधा को दिखाया। संन्यासी महाराज सवेरे से इस आयोजन को देख रहे थे। उन्होंने कल से लेकर आज तक कोई पच्चीस बार चेतावनी दे दी थी कि यदि कोई बुलाने न आए तो चली मत जाना, नहीं तो ठीक नहीं होगा। हर बार बुआ ने बड़े ही विश्वास के साथ कहा, "मुझे क्या बावली ही समझ रखा है, जो बिना बुलाए चली जाऊँगी? अरे, वह पड़ोसवालों की नंदा अपनी आँखों से बुलावे की लिस्ट में नाम देखकर आई है। और बुलावेंगे क्यों नहीं? शहरवालों को बुलावेंगे और समधियों कहो नहीं बुलावेंगे क्या?"

तीन बजे के करीब बुआ को अनमने भाव से छत पर इधर-उधर घूमते देख राधा भाभी ने आवाज लगाई, "गईं नहीं बुआ?"

यकायक चौंकते हुए बुआ ने पूछा, "कितने बज गए राधा? क्या कहा, तीन? सर्दी में तो दिन का पता ही नहीं लगता है। बजे तीन ही हैं और धूप सारी छत पर से ऐसे सिमट गई, मानो शाम हो गई हो।" फिर यकायक जैसे खयाल आया कि वह तो भाभी के प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ, तो जरा ठंडे स्वर में बोली, "मुहरत तो पाँच बजे का है, जाऊँगी तो चार तक जाऊँगी, अभी तो तीन ही बजे हैं।" बड़ी सावधानी से उन्होंने स्वर में लापरवाही का पुट दिया! बुआ छत पर से गली में नजर फैलाए खड़ी थीं, उनके पीछे ही रस्सी पर धोती फैली हुई थी, जिसमें कलफ लगा था और अभरक छिड़का हुआ था। अभरक के बिखरे हुए कण रह-रहकर धूप में चमक जाते थे, ठीक वैसे ही जैसे किसी को भी गली में घुसता देख बुआ का चेहरा चमक उठता था।

सात बजे के धुँधलके में राधा ने ऊपर से देखा, तो छत की दीवार से सटी, गली की ओर मुँह किए एक छाया मूर्ति दिखाई दी। उसका मन भर आया। बिना कुछ पूछे इतना ही कहा, "बुआ! सर्दी में खड़ी-खड़ी यहाँ क्या कर रही हो? आज खाना नहीं बनेगा क्या, सात तो बज गए?"

जैसे यकायक नींद में से जागते हुए बुआ ने पूछा, "क्या कहा, सात बज गए?" फिर जैसे अपने से ही बोलते हुए पूछा, 'पर सात कैसे बज सकते हैं, मुहरत तो पाँच बजे का था।' और फिर यकायक ही सारी स्थिति को समझते हुए, स्वर को भरसक संयत बनाकर बोली, "अरे, खाने का क्या है, अभी बना लूँगी। दो जनों का तो खाना है, क्या खाना और क्या पकाना।"

फिर उन्होंने सूखी साड़ी को उतारा। नीचे जाकर अच्छी तरह उसकी तह की, धीरे-धीरे हाथों से चूड़ियाँ खोलीं, थाली में सजाया हुआ सारा सामान उठाया और सारी चीजें बड़े जतन से अपने एकमात्र संदूक में रख दीं।

और फिर बड़े ही बुझे हुए दिल से अँगीठी जलाने बैठीं।

कविताएँ

● ऋता शुक्ल

: एक :

यह मेरा गाँव
मेरे पुरखों का गाँव।
बँसवारी, अमराई, कोयल की कूक
भाई की असमय विदाई,
मन के तहखाने में छिपी हुई हूक
काली माई और शीतला माता
गाँव के सिवान पर समाधिस्थ
आदि पुरखे रतनदेव बाबा
आन-बान-स्वाभिमान
तेजोमयता लिये
साँस की सुवास में
आज भी विराज रहे।

: दो :

श्रीमन नारायण तिवारी
मेरी प्रिय संन्यासी काका
चिन्मय श्रीकृष्ण के साधक महान्
मथुरा के अधिवासी
परिजन की पुरजन की
माया को त्यागकर
मौन निष्क्रमण करते
कौपीनधारी वे
नवद्वीप, कनखल,
केदार, बदरीधाम
भटकते, भरमते
गाँव लौट आए हैं।

: तीन :

गाँव यह तिवारीपुर
व्याघ्र सर-बक्सर-का
सिद्धाश्रम धाम
रघुवर के दिव्य चरण,
माटी ललाम।
वेदों की पावनता,
माटी की शुभ्रता
दोहे चौपाई, दोहराती माई
आजी की रेहल पर
लाल बेठन खुलते ही मुसकराते
वाल्मीकि, तुलसी।

: चार :

और 'चाँद' पत्रिका के
संपादकाचार्य
क्रांति बीज धारते
शब्दों का शंखनाद
अलख भाव भरते,
गोरी हुकूमत का ध्वंस राग रचते
मेरे बड़के बाबा
पंडित नंदकिशोर तिवारी
उनके ही वंशज
हिंदी की करुणा में आकंठ रचे बसे रामेश्वर
मेरे प्रिय बाबूजी।

: पाँच :

पुश्तैनी घर की दीवार
कच्ची थी, अब पक्की हो गई।
गोशाला जस की तस
माई की, आजी की कोठरी
वैसी की वैसी है।

: छह :

अँगनाई लीपती, चाची की मधुर टेर—
कहाँ चली बचिया,
पहिले जलखावा लो।
मकई के भात पर
कलछुल भर छाछ का
अमरित सा स्वाद
ऐसा जलखावा था।
दर्जनभर भाई बहिन
चंदा, बिंदा, उषा, चिंता, किरण
चंदा, बिंदु, दीपू, वीरेंद्र, जितेंद्र
विंध्याचल, पन्नग, छोटा गुड्डू
एक साथ बैठ सभी जीमते
नंदन-कानन सरीखा
यह अपना घर था।

: सात :

पुरखे सब चले गए,
नई पौध आई है।
आँगन के चार कोने
चार भाग में बँटे
खेत-खलिहान बिके
बँसवारी मौन हुई।
टोलों में सब कटे,
भाई परदेस गए
बहिनें ससुराल बसीं
गलियाँ सूनी-सूनी
चौखट उदास हुई।

सुप्रसिद्ध कथाकार। 'अरुंधती', 'दंश', 'अग्निपर्व', 'समाधान', 'बाँधो न नाव इस ठाँव', 'शेषगाथा', 'कनिष्ठा उँगली का पाप', 'कितने जनम वैदेही', 'कासों कहों मैं दरदिया' तथा 'मानुस तन' कृतियाँ चर्चित। 'क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ' कृति भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत। इसके अलावा लोकभूषण सम्मान आदि विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित।

साअ
मोराबादी,
राँची-८३४००८
दूरभाष : ९४३११७४३१९

केशर-कश्मीरा

• मुरलीधर वैष्णव

सरदार कश्मीरा सिंह की टैक्सी-कार भरतपुर की ओर दौड़ रही थी। कार में दो सवारी थीं। अधेड़ उम्र के पति-पत्नी। भरतपुर के केवला देवी पक्षी अभियारण्य को देखते हुए उन्हें जयपुर जाना था, वरन् वे सीधे ही हाई वे संख्या ८ से जयपुर शीघ्र पहुँच सकते थे।

"देखा केशू, कितनी तरह की बतखें और चिड़ियाँ हैं। वाह! क्या सीन है!" यह कहते हुए पन्नेसिंह अपने कैमरे से फोटो लेने लगा। वह अपनी पत्नी केशर को केशू ही कहता था और केशू पन्नेसिंह को प्यार से पन्नू।

"जस्ट इनक्रेडिबल! वह तालाब के किनारे टें···टें···करती बतखें और झाड़ियों में बैठी चिड़ियों का कलरव सुन रहे हो, पन्नू! ये आपस में बातचीत कर रही हैं। शायद आपस में यह तय कर रही है कि चलो, तालाब किनारे नहाने चलते हैं।"

"तुम तो कविता करने लगीं!"

"कविता नहीं, कल्पना जरूर कर रही हूँ। मुझे याद है पन्नू, मेरी माँ कहा करती थी कि पक्षी-लोक का रहस्य अद्‌भुत है। पक्षियों को दिया गया दाना-पानी, पता नहीं, आपको कब कैसी मुसीबतों से बचा लेता है। मुझे तो लगता है कि पक्षी इनसान के दिल की निर्मलता, उसमें बसी करुणा व प्रेम को इनसानों से बेहतर समझ लेते हैं। भरोसा करने लगते हैं उन पर। केशु पानी में अठखेलियाँ करती चिड़िया व बतखों के पास गई। उसे यह देखकर खुशी हुई कि उसके पास आने से वे उड़ी नहीं, बल्कि दो-तीन तो अपने गीले पंखों से उस पर फुहार करने लगीं। बतखें भी उसके पास आकर पानी में गोते लगाती रहीं। लेकिन जब पन्नू केशु को बुलाने उसके पास आया, सारे पक्षी तितर-बितर हो गए।

"सुना है कि पक्षियों का झूठा पानी पीने से तुतलाहट बंद हो जाती है और तो और, वह यह भी जान सकता है कि पक्षी आपस में क्या बात कर रहे हैं। हमारे मारवाड़ के लोकदेव हड़बूजी साँखला तो इससे भी एक कदम आगे थे। वे पक्षियों से बातचीत तक कर लेते थे।" केशु ने कार की ओर लौटते हुए पन्नू से कहा।

"यह सब बकवास है। पता नहीं किस पोंगा पंडित से सुन लिया तुमने!" पन्नू ने अजीब सा मुँह बनाते हुए कहा, "फिलहाल तो कार में बैठो। समय पर जयपुर पहुँचना जरूरी है।" केशु को पन्नू की बात अच्छी नहीं लगी। लेकिन वह अपना मूड खराब नहीं करना चाहती थी। वे कार में बैठ गए।

अब तक कहानी-संग्रह 'पीड़ा के स्वर', लघुकथा-संग्रह 'अक्षय तूणीर', 'कितना कारावास', काव्य-संग्रह 'हैलो बसंत', बालकथा-संग्रह, 'पर्यावरण चेतना की बाल कथाएँ', 'चरित्र विकास की बाल-कहानियाँ', 'जल और कमल', 'अबु टॉवर', बालगीत-संग्रह 'चींटी का उपकार'। राजस्थान साहित्य अकादमी का विशिष्ट साहित्यकार सम्मान, सुमित्रानंदन पंत बाल साहित्य सम्मान, 'हिंदी भाषा भूषण सम्मान' सहित करीब एक दर्जन सम्मान।

"पक्षियों के झूठे पानी में कुछ तो है मेम साहब।'' मेरी मौसी भी यही कहती थी। कश्मीरा सिंह ने केशु का समर्थन किया।

"फिर वही बात! अरे यह सब बकवास है। और कुछ हो न हो उनका झूठा पानी पीने से इंफेक्सन होने का खतरा तो होता ही है। हाँ, दाना-पानी तो उन्हें डालना ही चाहिए।'' पन्नूसिंह ने चालक को कार स्टार्ट करने का इशारा किया।

"अच्छा, यह तुम्हारी एक टाँग में मैंने कुछ लड़खड़ाहट देखी है, क्या हुआ था मिस्टर···क्या नाम है तुम्हारा?।" पन्नू ने पूछा।

"सर, कश्मीरा सिंह।"

"हाँ-हाँ कश्मीरा सिंह, क्या हो गया था?''

"सर, पहले मैं फौज में था। कश्मीर सीमा पर मेरी काफी लंबी पोस्टिंग रही। एक बार आतंकवादियों से हुई मुठभेड़ में मैंने व मेरे एक साथी ने घुसपैठ कर रहे पाँच आतंकवादियों को मार दिया था। लेकिन दो गोलियाँ मेरे बाएँ पैर पर घुटने के नीचे लगी, जिससे एक लंबे अरसे तक मैं सैनिक अस्पताल में भरती रहा। बाद में मुझे मेडिकल ग्राउंड पर सेना से डिस्चार्ज लेना पड़ा।

"ओह! बहुत बहादुर हो तुम।" केशु बोली।

"थैंक्स मेम साहब!" कहते हुए कश्मीरा सिंह ने कार जयपुर की ओर दौड़ा दी।

"मैं मीटिंग में जा रहा हूँ। ग्यारह बजे तो वह शुरू हो जाएगी। मुझे दो-तीन घंटे लग जाएँगे। तब तक तुम जयपुर घूम लो। मेरे तो यहाँ सब देखा हुआ है।'' पन्नू को जयपुर में ऑल इंडिया होजरी उद्योग संघ की मीटिंग में जाना था।

"ठीक है, लेकिन लंच साथ ही करेंगे। तीन बजे तक तो आ ही जाना।"

"ओ, स्योर।"

"वैसे तो जयपुर मेरे भी देखा हुआ है। लेकिन दस-बारह साल हो गए। तुम तो कहीं ऐसी जगह ले चलो, जहाँ शांति और सुकून हो। हाँ, याद आया, आज बुधवार है। गढ़-गणेश चलते हैं कश्मीरा सिंहजी।'' धार्मिक स्वभाव की प्रकृति व एकांत पसंद केशु बोली।

"आप मेरे नाम के आगे जी नहीं लगाएँ, मेम साहब। बस 'कश्मीरा' ही काफी है।"

"नहीं, नहीं, आप मुझ से उम्र में बड़े हो। चलो, थोड़ा छोटा कर देती हूँ। 'कश्मीराजी' चलेगा न!"

जवाब में कश्मीरा सिंह केवल मुसकरा दिया।

गाड़ी नीचे पार्किंग में रखकर दोनों गढ़-गणेश पहुँचे। वहाँ मंगल-मूर्ति के दर्शन कर केशु एक चट्टान पर बैठकर वहाँ से नाहर गढ़ पर्वत व जयपुर शहर के नजारे का आनंद लेने लगी।

"आप भी बैठ जाओ, कश्मीराजी।" केशु कश्मीरा को प्रसाद का लड्डू देते हुए बोली।

"परिवार में तुम्हारे कौन-कौन है?" केशु ने कश्मीरा से पूछा।

कश्मीरा इस सवाल के लिए तैयार नहीं था। वह एकदम उदास हो गया, मानो उसके घाव खुरचने लगे हो।

"क्या करना है मेम साहब, छोड़िए न।"

"कोई खास दिक्कत न हो तो आप हमें अपना समझकर ही बता दीजिए।"

"थे कभी मेम साहब। सभी थे। पत्नी, इकलौता बेटा, बहू और एक प्यारी सी पोती। लेकिन आज तो मैं बिल्कुल अकेला हूँ। आगे-पीछे कोई नहीं।"

"हुआ क्या था कश्मीराजी?"

"यह उन दिनों की बात है मेम साहब, जब पंजाब में खलिस्तानियों व भिंडरावाला का बोलबाला था। एक दिन मेरी बीबी सुखवंत कौर, मेरा इकलौता बेटा मनदीप सिंह, उसकी बहू पम्मी व एक प्यारी सी पोती सिमरन पटियाला के हमारे घर में ही थे।" यह कहते-कहते कश्मीरा की आँखें भर आईं।

"कश्मीराजी, आप तो बहादुर हो। हिम्मत रखो।" केशु ने उसे सांत्वना दी। कुछ देर बाद उसकी उत्सुकता कश्मीरा के प्रति संवेदना पर भारी पड़ने लगी।

"फिर क्या हुआ कश्मीराजी।" केशु ने न चाहते हुए भी उससे पूछ ही लिया।

"होना क्या था मेम साहब। उग्रवादियों ने घर में घुसकर सभी को गोलियों से भून दिया। उन्हें शक था कि मेरा बेटा पुलिस का मुखबिर था, जबकि ऐसा कतई नहीं था। उधर श्रीनगर के सैनिक अस्पताल में पैर में लगी गोलियों के कारण मैं बेहोश पड़ा था। दो दिन बाद जब मुझे कुछ होश आया तो मेरे पूरे परिवार के सफाए की मुझे खबर मिली। और तो और मैं उनके अंतिम दर्शन तक नहीं कर सका मेम साहब। रब दी मर्जी···!'' यह कहते हुए कश्मीरा ने आकाश की ओर अपने हाथ उठाए। उसके चेहरे पर दु:ख और गहरा गया था। कश्मीरा की दास्तान सुनकर केशु अत्यंत क्षोभ से भर गई।

"टैक्सी से ठीक-ठाक कमाई हो जाती होगी?" केशु ने कुछ सोचकर विषय परिवर्तन किया।

"जी मेम साहब। कुछ टैक्सी से तो कुछ आर्मी की पेंशन से मिल जाता है। मेरा ज्यादा कोई खर्चा नहीं है। जो पैसा बचता है उसे दिल्ली के 'गुरु गोविंद सिंह खालसा लंगर' में दे देता हूँ। अपनी टैक्सी भी मैंने उन्हीं के नाम कर रखी है। वैसे भी मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। पता है मेम साहब, रोजाना एक हजार से भी ज्यादा गरीब वहाँ मुफ्त खाना खाते हैं।'' कुछ संयत होने के बाद वह यह कह सका। केशु को यह सुनकर अच्छा लगा।

केशु के जीवन में भी कम त्रासदी नहीं हुई थी। उसके पिता का दिल्ली में होजरी का थोक का अच्छा व्यापार था। केशु अपने माता-पिता की इकलौती संतान थी। एक दिन दिल्ली में एक ट्रक ने उनकी कार के टक्कर मार दी, जिसमें उसके माता-पिता चल बसे। पिता ने अपनी संपत्ति की वसीयत पहले से ही केशु के नाम कर दी थी। वह तब से ही उदास और एकांत पसंद रहने लगी थी। थायराइड और अस्थमा जैसे रोग अलग लग गए थे उसे।

समय बीतता गया और एक दिन युवा केशु ने अपने थोक व्यापार प्रतिष्ठान के मैनेजर पन्नेसिंह के प्रति आकर्षित होकर उससे शादी कर ली। केशु को जब भी अस्थमा का अटैक होता था, तब उसे लगता था कि वह अब गई कि अब गई। आठ साल हो गए उसका पेट भी नहीं मढ़ा। डॉक्टरों ने इसकी संभावना से भी इनकार कर दिया था। इसी कारण से उसने अपनी

जायदाद की वसीयत पन्नेसिंह के नाम कर रखी थी। लेकिन उसके भीतर कहीं गहराई में एक अजीब सा भय दबा हुआ था, जिसका कारण स्वयं उसे भी मालूम नहीं था।

"अच्छा तुम्हारा नाम कश्मीरा सिंह कैसे पड़ा?'' केशु कश्मीरा की बहादुरी और निर्मल छवि भाने लगी थी।

"जी मेम साहब, बात यह है कि मेरे पिता भी फौज में थे और मेरा जन्म जब हुआ तब मेरे पिता की तैनाती भी कश्मीर बॉर्डर पर ही थी। बस बेटा होने का समाचार मिलते ही वे उछल पड़े। खुशी के मारे उन्होंने शराब के दो पेग और चढ़ा लिए। फिर बोले कि बेटे का नाम कश्मीरा सिंह रखूँगा।'' कश्मीरा सिंह के जवाब के लहजे से केशु को लगा कि वह अपने दु:ख को भूलकर सामान्य होने लगा है।

"तुम तो पंजाबी हो फिर भी हिंदी ठीक-ठाक बोल लेते हो।''

"जी, कश्मीर में मेरी कंपनी में यूपी व बिहार के भी जवान थे। बस उनसे बतियाते हुए।''

दिन के २ बज चुके थे। शीघ्र ही जंतर-मंतर देखकर वे अपने होटल पर पहुँचे। पन्नू अभी तक आया नहीं था।

"तुम भी चाय पी लो।'' केशु ने दो चाय का आर्डर देते हुए कश्मीरा से कहा।

"अरे हाँ, तुमने यह तो बताया ही नहीं कि वे हत्यारे उग्रवादी पकड़े गए या नहीं?'' केशु ने न चाहते हुए भी कश्मीरा से पूछ ही लिया।

"मुझे मालूम तो पड़ गया कि हत्यारे उग्रवादी कौन थे? मैंने उनसे बदला लेने की ठान भी ली थी। मेरे पास कई सालों से लाइसेंस शुदा पिस्तौल है, जो मैं हर समय अपने साथ रखता हूँ। लेकिन इससे पहले कि मैं कुछ कर पाता, पुलिस ने उन उग्रवादी हत्यारों का एनकाउंटर कर दिया था।'' कश्मीरा ने काफी देर बाद संतोष की साँस ली।

कश्मीरा सिंह हरदम अपने पास पिस्तौल रखता है, यह जानकर केशु कुछ घबरा सी गई। लेकिन इसी के साथ उसे पूरा विश्वास होने लगा था कि यह आदमी भला लगता है।

"सॉरी आईएम लिटल लेट, कैसी रही तुम्हारी साईट सींग!" पन्नू ने होटल के वेटिंग हॉल में प्रवेश करते हुए वहाँ बैठी केशु से पूछा।

"अच्छी रही।'' केशु ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया। उसका मूड ठीक नहीं था। खाना खाने के बाद उन्होंने शाम पाँच बजे होटल से चैक आउट किया।

"चलो अब दिल्ली चलते हैं। मैं थक गई हूँ।'' केशु ने पन्नू से कहा।

"लेकिन तुम तो आज करौली मदनमोहनजी मंदिर की महाआरती के दर्शन करना चाहती थी। चाहो तो चलो। थोड़ा चक्कर तो लगेगा। लेट हो गए तो भरतपुर नाइट-हॉल्ट कर लेंगे।'' पन्नू ने केशु को याद दिलाया।

"ओह, अच्छा किया, आपने याद दिला दिया। मैं तो भूल ही गई थी। थैंक्स।'' केशु धार्मिक विचारों की पढ़ी-लिखी महिला थी। कृष्ण का ईष्ट था उसे।

वे लोग शाम करीब साढ़े सात बजे तक करौली पहुँच गए। वहाँ केशु ने महाआरती का आनंद लिया। पन्नू को इसमें रुचि नहीं थी सो वह मंदिर के बाहर ही रुक गया। खाना प्रसाद लेते-लेते रात के करीब दस बज गए थे। सभी ने भरतपुर में ही रात्रि विश्राम करना तय किया। पन्नू सिंह एक तरफ दूर जाकर मोबाइल पर बातें कर रहा था। केशु ने सोचा कि वह भरतपुर में होटल रूम बुकिंग के लिए फोन कर रहा है।

करौली से रवाना होते ही केशु को थकानवश आराम करने का जी कर रहा था, लेकिन पता नहीं आज क्यों, उसके भीतर एक अजीब सी हलचल थी। सड़क पर पोल लाइट्स भी नहीं थी। घुप्प अँधेरे में कार बयाना से कुछ आगे पहुँची ही थी कि कश्मीरा ने सड़क पर पत्थर व काँटे बिछे देखे। लगता था किसी ने जानबूझकर रास्ते में रुकावट पैदा की है। कार हलके से झटके के साथ रुकी ही थी कि पास ही झाड़ियों में छुपे चार-पाँच बदमाश, काले कपड़े से अपने मुँह को आधा ढके हुए सामने आए। उनके सरगना ने देशी कट्टे को कार की ओर तानते हुए तीनों को कार के बाहर आने का इशारा किया। उन बदमाशों में दो के हाथ में देशी कट्टे व शेष के हाथों में चाकू-सरिए थे।

केशु और कश्मीरा भारी दु:ख और आश्चर्य से अवाक् रह गए, जब उन्होंने कार की लाइट में देखा कि पन्नू दौड़कर उन युवकों के सरगना के पास गया। उसने एक लिफाफेनुमा पैकेट उसे पकड़ाया और वहाँ से गायब हो गया।

कश्मीरा को यह देखकर विश्वास नहीं हुआ कि स्वयं पन्नेसिंह ने किराए के बदमाशों को सुपारी देकर यह जाल बिछाया था। लेकिन केशु की आँखों को तो कतई विश्वास नहीं हुआ कि उसे हमेशा प्यार जताने व उसकी देखभाल करने वाला पन्नू उसके साथ ऐसी घातक दगाबाजी कर सकता है। उसे समझ नहीं आ रहा था कि इतने सालों में वह उसका असली चेहरा क्यों नहीं पहचान सकी? एक बात तो उसके सामने साफ थी कि उसने वसीयत में अपनी समस्त जायदाद पन्नू के नाम लिख रखी थी। वह उसे शीघ्रताशीघ्र पाना चाहता था। उसके लिए उसे रास्ते से हटाना जरूरी था। इसी वास्ते उसने ऐसी घिनौनी हरकत की।

"तुम दोनों बाहर आओ।'' सरगना दहाड़ा। उसने कश्मीरा से कार की चाबी छीनी और अपने एक गुर्गे से कार व उन दोनों को पास ही साइड के कच्चे रास्ते पर ले गया।

"देखो यारो, जो कुछ रुपया-पैसा लेना हो वह हमसे ले लो और हमें जाने दो।'' कश्मीरा ने सरगना और उनके सभी बदमाशों से गुहार की। वह किसी तरह केशु की जान बचाने की कोशिश कर रहा था।

"पैसे तो हमारे पास पहले से ही काफी हैं।'' यह कहते हुए सरगना ने अपने कट्टे से दो गोलियाँ केशु को मारी जो उसके पेट में लगी। केशु, खून से लथपथ होकर जमीन पर गिर पड़ी।

कश्मीरा ने फौज में ऐसे कई एम्बुशों का सामना कर रखा था।

उसका खून खौल उठा। उसने तुरंत अपनी कमर में दबाई पिस्तौल से उस सरगना के सिर में दो गोलियाँ मारी, जिससे वह वहीं ढेर हो गया। तभी एक बदमाश ने मौका पाकर अपने कट्टे से कश्मीरा पर दो गोलियाँ दाग दीं। कश्मीरा भी खून से लथपथ हो गया। लेकिन उस हालत में भी उसने उन दो बदमाशों को गोलियों से भूनकर ढेर कर दिया। शेष बदमाश वहाँ से भाग गए।

अब वह तुरंत केशु के पास पहुँचा। उसने अपनी पगड़ी उतारकर उसे फाड़ा और केशु के पेट से लपेटकर बह रहे उसके खून को रोका। केशु बेहोश थी। उसने पेट से बह रहे खून को भी पगड़ी की पट्टी बनाकर रोका। किसी तरह उसने केशु को कार की पिछली सीट पर लेटाया और खुद कार चलाने लगा। उसके भी पेट से खून बह जाने के कारण उसे लग रहा था कि वह ज्यादा देर होश में नहीं रह सकेगा। उसने एकाध किलोमीटर ही कार चलाई थी कि इतने में उसे सामने से एक पुलिस वेन आती दिखाई दी। शायद गश्ती दल की गाड़ी थी। उसने अपने हाथ व कार लाइट से उन्हें रुकने का इशारा किया। वेन के रुकते ही उसमें एक पुलिस निरीक्षक व तीन-चार सिपाही नीचे उतरे। कश्मीरा ने उन्हें क्षीण हो रही अपनी आवाज से सारी दास्तान बतलाई और उन्हें तुरंत भरतपुर अस्पताल ले जाने की प्रार्थना की। राम सिंह ने दो सिपाहियों को घटनास्थल को सुरक्षित रखने के लिए वेन से रवाना कर स्वयं ने कार का स्टियरिंग सँभाल लिया। शीघ्र ही वे भरतपुर सरकारी अस्पताल पहुँच गए। सिपाहियों ने पुलिस कंट्रोल रूम को सारी सूचना दे दी थी, सो अस्पताल में डॉक्टर आदि पहुँच गए थे। वे ऑपरेशन की तैयारी में पहले से ही जुट गए थे।

इस बीच कश्मीरा भी बेहोश हो चुका था। उसके एक गोली पेट में लेकिन दूसरी गोली दिल के ठीक नीचे लगी थी। उधर केशु भी अभी तक बेहोश थी। लेकिन कश्मीरा की हालत एकदम गंभीर हो गई। उसे ऑपरेशन टेबल तक ले जाया जाता, उसके पहले ही उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे।

डॉक्टर्स ने केशु का ऑपरेशन कर उसके पेट में धँसी दोनों गोलियाँ निकाल दीं। गोलियों से फटी उसकी आँतों का भी ऑपरेशन किया गया। करीब दो घंटे बाद केशु को होश आ गया। कोई पंद्रह-बीस मिनट उसे कुछ सामान्य होने में लग गए।

कुछ क्षणों में उसके सामने अपने जीवन की रील रिविंड होने लगी। उसका बचपन, माता पिता का प्यार, कॉलेज समय की मस्ती, एक आदर्श पति मिलने का सपना और फिर पन्नू के छद्म प्यार में छुपा लोभ व दगाबाजी के जहर के दृश्य साफ नजर आने लगे। सबसे सुखद याद तो कश्मीरा के शौर्य और चरित्र की थी जो उसे सुकून दे रही थी।

केशु के पूछने पर एक नर्स ने उसे बता दिया कि कश्मीराजी की हालत बहुत गंभीर थी। डॉक्टर उन्हें नहीं बचा पाए। यह सुनकर केशु को भारी सदमा हुआ। वह अर्ध बेहोशी की हालत में चली गई।

डॉक्टर के अनुसार केशु अभी खतरे से बाहर नहीं थी। पुलिस केशु का बयान लेने अस्पताल आ चुकी थी। पुलिस को लगा कि शायद केशु भी न बचे इसलिए मृत्यु-पूर्व बयान दर्ज करने के लिए वे मजिस्ट्रेट को भी साथ लेकर आए थे। करीब आधे घंटे के इंतजार के बाद केशु को ठीक से होश आया।

मजिस्ट्रेट ने अपना परिचय देकर उससे कुछ सवालात पूछे। केशु ने अटकते-अटकते बताया कि बयाना के पास सड़क पर हत्यारों ने उनका रास्ता रोका। उन्हें वह नहीं जानती। उनके सरगना ने उसके पेट में गोलियाँ मारीं। यह सब उसके पति पन्नेसिंह के षड्यंत्र से हुआ। कुछ और बातों के अलावा उसने यह भी बताया कि उसने अपनी जायदाद की वसीयत पन्नेसिंह के नाम कर रखी है।

"आप···मुझे···पेन-कागज दीजिए।" केशु ने मजिस्ट्रेट से निवेदन किया।

"मैं पन्नेसिंह के पक्ष में लिखी अपनी पहली वसीयत कैंसिल करती हूँ। आज मैं अपनी समस्त चल-अचल जायदाद पुरानी दिल्ली के गुरु गोविंद साहब खालसा लंगर खाने के नाम करती हूँ। और हाँ, कश्मीराजी ने अपनी टैक्सी-कार आदि भी उक्त लंगर के नाम कर रखी है।" उसने बमुश्किल धीरे-धीरे लिखकर अपने दस्तखत किए। मजिस्ट्रेट ने समस्त कानूनी औपचारिकताएँ पूरी कीं।

मेरी एक आखिरी इच्छा और है मजिस्ट्रेट साहब। मैं जानती हूँ कि मेरे पास समय कम है। मेरा इस संसार में आगे-पीछे कोई नहीं है। मुझे मालूम है कि कश्मीरा सिंहजी के भी आगे-पीछे कोई नहीं है। फिर यह कोरोना काल है। अगर संभव हो तो हम दोनों का एक ही चिता पर दाह-संस्कार कर देना।

आधी रात में केशु की साँसें तेज होने लगीं। शायद उसमें अब जीने की इच्छा-शक्ति भी बिल्कुल नहीं रही थी। भोर होते-होते आखिर वह नहीं रही। वहाँ मौजूद सभी अधिकारी गण के लिए केशु उर्फ केशर व कश्मीरा सिंह बिल्कुल अनजान व्यक्ति थे, लेकिन उनका एक ही चिता पर दाह-संस्कार करते हुए सभी की आँखें नम थीं।

ए-७७, रामेश्वर नगर,
बासनी प्रथम, जोधपुर-३४२००५
दूरभाष : ९४६०७७६१००

आज भी सिरमौर है प्रेमचंद का साहित्य

● प्रकाश मनु

प्रेमचंद पर लिखने बैठा हूँ, तो सबसे पहले जो बात मन में आती है और कागज पर उतरना चाहती है, वह यह कि प्रेमचंद से मेरी दोस्ती बचपन से ही हो गई थी। मैं शायद छठी कक्षा में था, तभी से। तभी पहले-पहल जाना था कि कक्षा में जो पाठ्य-पुस्तकें हम पढ़ते हैं, उनके अलावा भी पुस्तक होती हैं, और इतनी दिलचस्प कि आप सबकुछ भूलकर घंटों उनमें डूबे रह सकते हैं। और छुट्टीवाले दिन तो आप दिन भर उनसे बतिया सकते हैं।

यह मेरे लिए 'खुल जा सिमसिम' की तरह किसी नई और अचरज भरी दुनिया के द्वार खुलने से कम न था, जिसने मुझे लगभग बावला बना दिया था। कहीं से भी कोई अच्छी पुस्तक मिले और मैं पढ़ूँ, इससे बड़ा आनंद मेरे जीवन में कुछ और न था। घर में बहन और भाइयों की ऊँची कक्षा की जो किताबें नजर आईं, उन्हें मैं चाट चुका था। तो अब क्या पढ़ा जाए? उन दिनों घर की सारी चीजें अखबारी लिफाफों में आती थीं। मैं खाली लिफाफों को खोलकर सीधा करता और पढ़ता। किसी-किसी में कोई आधी-अधूरी कहानी भी नजर आ जाती। कभी उसका बीच का हिस्सा होता, कभी एकदम शुरू या बाद का। मैं उतना ही पढ़ लेता, और कहानी का बाकी हिस्सा, जो उसमें न होता, उसे बिल्कुल अपने ही ढंग से अपनी कल्पना से पूरा करता, और विचित्र रोमांच से भर जाता।

मुझमें पढ़ने-लिखने की रुचि देखी तो श्याम भैया मेरे लिए चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह और सुभाषचंद्र बोस की जीवनियाँ ले आए। मैंने उन्हें पढ़ा तो मन में एक अलग सी भावना पैदा हुई। जीवन में कुछ कर गुजरने की भावना। और यह भी कि कोई बड़ा उद्देश्य सामने हो तो आप अपना पूरा जीवन हँसकर दे देते हैं, देवता के चरणों में रखे गए किसी फूल की तरह। और जब आप अपने को समूचा दे देते हैं, तो आप बड़े भी हो जाते हैं। एक महत्तर दुनिया का अंश। यह कितने आनंद की बात है। सचमुच, कितनी बड़ी बात!...

फिर एक दिन श्याम भाईसाहब मेरे लिए वे जो पुस्तक लाए, उसने तो मेरी जिंदगी ही बदल दी। वह प्रेमचंद की कहानियों की पुस्तक थी। पुस्तक का नाम था, 'प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियाँ'। उसमें 'ईदगाह', 'दो बैलों की कथा' समेत कई कहानियाँ बड़ी रुचि और आनंद से पढ़ गया। पर जब 'बड़े भाईसाहब' कहानी पढ़ी तो मैं हक्का-बक्का। सचमुच अवाक्! मैंने अपने आप से कहा, "अरे, यह तो हू-ब-हू मेरे श्याम भैया की कहानी है। भला प्रेमचंद को कैसे पता चली?"

श्याम भैया भी प्रेमचंद के बड़े भाईसाहब की तरह मुझ पर रोब जताने का कोई मौका नहीं छोड़ते थे। पढ़ाई के बड़े लंबे-चौड़े नियम-कायदे वे बनाते थे, और खूब जबरदस्त टाइम टेबल। जबकि मेरे साथ तो ऐसा कुछ भी नहीं था। बस, जब भी पढ़ता, खूब डूबकर पढ़ता। फिर भी मैं अपनी कक्षा में फर्स्ट आता और वे मुश्किल से पास होते...या कभी-कभी तो उसी क्लास में लुढ़के होते। हालाँकि वे बड़े थे और अपने बड़प्पन का रोब जरा भी कम न होने देते। पर आखिर यह जादू हुआ कैसे? मेरे श्याम भैया प्रेमचंद के बड़े भाईसाहब में कैसे समा गए?

यह कोई आसान उलझन या पहेली न थी। पर इसे सुलझाते-सुलझाते मैं कहानी-कला का एक बड़ा जादू समझ गया। कहानीकार कोई कहानी लिखता है तो वह कहानी तो किसी एक की होती है, पर कहानी के विचित्र जादू से वह मात्र एक की नहीं, बल्कि हर किसी की कहानी हो जाती है। यह है किसी कहानी की असली ताकत, जिससे एक की लिखी कहानी किसी जादू-मंतर से सबकी कहानी हो जाती है। एक के दिल में कुछ उमड़ता हो और वह उसे वैसे ही जिंदा और दमदार शब्दों में ढाल दे, तो जितने भी लोग उसे पढ़ते हैं, सबके दिल में वही घुमड़ता है। मुझे लगा, "अरे, यह तो दुनिया का सबसे बड़ा जादू है। महान् करिश्मा! और यह साहित्य में घटित होता है कहानी में। वाह, कैसा कमाल है?"

कुछ और बड़ा हुआ और साहित्य की दो-चार सीढ़ियाँ चढ़ीं, तो समझ में आया कि कहानी-कला के इस जादू को साधारणीकरण कहते हैं, जिससे लेखक की कहानी हर किसी की अपनी कहानी हो जाती है और उसके नायक का सुख-दुःख हर किसी को अपना सुख-दुःख जान पड़ता है। उसके रोने के साथ सब रोते और उसके हँसने के साथ सब हँसते हैं। उसकी उदासी हर किसी को उदास कर जाती है।

मगर फिर धीरे-धीरे यह भी साफ होता गया कि यह करिश्मा प्रेमचंद सरीखे दिग्गज लेखक के यहाँ जितने अनोखे और नायाब ढंग से होता है, वैसा दूसरे लेखकों के यहाँ नहीं। यानी यह सच है कि कहानी में एक बड़ा जादू छिपा है, कहानी की ताकत बड़ी ताकत है, पर हर्फ-हर्फ में कहानी के इस जादू को जगाना और पूरे निखार के साथ पेश करना,

कहानी की ताकत का पूरा इस्तेमाल करना और उसे बेधक और मर्मस्पर्शी बना देना, यह करिश्मा तब होता है, जब उसे लिखनेवाला प्रेमचंद सरीखा कोई महान् कथाकार होता है।

□

प्रेमचंद हिंदी के सबसे बड़े कथाकार क्यों हैं, और उनका कथा साहित्य इतनी उत्कटता के साथ हमें खींचता क्यों है कि एक बार उनके निकट जाने पर हम हमेशा-हमेशा के लिए प्रेमचंद के हो जाते हैं, उनकी लिखी रचनाओं के साथ सुध-बुध खोकर बहते हैं, और उनकी मर्मस्पर्शी रचनाओं को पढ़ने के बाद हम वही नहीं रह जाते, जो पहले थे। बल्कि उनकी लिखी रचनाओं को पढ़ने के बाद खुद हमारा भी कायांतरण होता है। हम ठीक-ठीक वही नहीं रह जाते, जो पहले थे।

एक लेखक की यह शक्ति कोई छोटी शक्ति नहीं है, और वह प्रेमचंद सरीखे दुनिया के सिरमौर लेखकों के यहाँ ही मिलती है। यों एक वाक्य में कहूँ, तो प्रेमचंद का बड़प्पन क्या है और क्यों वे सहज ही हिंदी के सबसे बड़े लेखक हैं, यह मैं बिना किसी के बताए, अपने किशोरपन में स्वत: ही समझ गया था। और आश्चर्य, किशोरावस्था का यह मार्मिक अनुभव और निर्मल अहसास जीवनभर मेरे साथ रहा और मेरे आगे साहित्य एवं जीवन के नए-नए रास्ते खोलता चला गया।

बाद में प्रेमचंद की और कहानियाँ पढ़ीं तो पूरा एक हलचलों भरा जीता-जागता संसार उनमें नजर आया। इनमें से 'पूस की रात', 'सवा सेर गेहूँ', 'सद्गति' सरीखी कहानियों में देश की गरीबी, बेगार और शोषण की ऐसी अकथ कथाएँ हैं कि पढ़ते हुए आँखों से टप-टप आँसू बहते थे। इसी तरह प्रेमचंद की 'गिल्ली-डंडा' कहानी मुझे कभी नहीं भूलती। इसमें वह बचपन है, जो ऊँच-नीच नहीं देखता और न किसी के पैसे, पद आदि के रोब में नहीं आता। अगर दो बच्चे गिल्ली-डंडा खेल रहे हैं तो जिसके हाथों में कला है, वह जीतता है और जो अनाड़ी है, वह पिदता है। इसमें कहीं छोटे-बड़े और ऊँच-नीच का फर्क नहीं है। लेकिन बड़े होने पर कहानी के उन्हीं किरदारों के भीतर ऊँच-नीच और पैसे, पद वगैरह का आतंक सा घर कर लेता है कि खेल खेल नहीं रह जाता और अपनी स्वाभाविक प्रभा एवं रौनक खो देता है।

यही कारण है कि कहानी का कथावाचक जो बचपन में खेल में पिदता था, बाद में बड़ा अफसर होकर उसी गाँव में आया और पुरानी यादों को ताजा करने के लिए बचपन के मित्र गया के साथ गिल्ली-डंडा खेलता है, तो दृश्य कुछ अलग ही दिखाई पड़ता है। बचपन में उसे खूब पिदाने वाला गया अब ठीक से खेल ही नहीं पाता और खेल में बिल्कुल आनंद नहीं आता। इसलिए कि बचपन की खेल भावना अब वहाँ नहीं है, और उसकी जगह एक सांसारिक व्यवहार बुद्धि ने ले ली है। बचपन का मित्र गया, जो कि एक मामूली साईस है, उसके साथ खेलता नहीं है, बल्कि तरस खाकर उसे ही खेलने देता है और खेल में किए गए सारे अन्याय, सारी ज्यादतियाँ सह लेता है। कहानी का अंत होते-होते कथावाचक को समझ में आ जाता है कि असल में यही उसकी हार है।

प्रेमचंद इतनी खूबसूरती से 'गुल्ली-डंडा' में दोनों स्थितियों का फर्क दिखाते हैं कि पढ़ते हुए एक धक्का सा लगता है। सच पूछिए तो यही वे दरशाना भी चाहते थे, और यही उनकी कहानी कला का सच्चा सौंदर्य है।

वरिष्ठ कवि-कथाकार। 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यास चर्चित हुए। 'एक और प्रार्थना', 'छूटता हुआ घर' कविता-संग्रह तथा 'अंकल को विश नहीं करोगे', 'अरुंधती उदास है' समेत ग्यारह कहानी-संग्रह प्रकाशित। शिखर साहित्यकारों से मुलाकात, संस्मरणों और आलोचना की कई पुस्तकें प्रकाशित। 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' विशेष उल्लेखनीय कृति। साहित्य अकादेमी के पहले बाल-साहित्य पुरस्कार, उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'बाल-साहित्य भारती पुरस्कार' तथा हिंदी अकादेमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित।

फिर प्रेमचंद की कहानियों में विषय और शिल्प की जैसी विविधता है, वह भी कम लेखकों के कथा-संसार में नजर आती है। उनकी बहुचर्चित कहानी 'नमक का दारोगा' अपने कर्तव्य, स्वामिभक्ति, ईमानदारी और आदर्शों के लिए बड़े-से-बड़े प्रलोभन को ठुकरा देने वाले दारोगा वंशीधर की नैतिक दृढ़ता की कहानी है तो 'ठाकुर का कुआँ', 'कफन', 'सद्गति' जात-पाँत के भीषण कुचक्र, उच्च वर्ग के उत्पीड़न और दलित समाज के करुण यथार्थ को उकेरने वाली ऐसी कहानियाँ, जिन्हें पढ़ते हुए आज भी भीतर दर्द की एक लहर सी व्याप जाती है। सच तो यह है कि समाज में फैली ऊँच-नीच और जमींदारी प्रथा के शोषण की दिल दहला देने वाली जैसी यादगार कहानियाँ प्रेमचंद ने लिखीं, दलित लेखन के घटाटोप के बावजूद वैसी सच्ची और निर्मम कहानियाँ आज भी उँगलियों पर गिनने लायक ही हैं।

इसी तरह प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर', 'आत्माराम', 'बड़े घर की बेटी', 'गुल्ली-डंडा', 'ईदगाह', 'मंत्र', 'परीक्षा', 'बूढ़ी काकी', 'चोरी', 'कजाकी', 'दो बैलों की कथा' सरीखी कहानियाँ पढ़कर लगा कि ये मेरे भीतर छप गई हैं और इनका प्रभाव कभी धुँधला न होगा। कहना न होगा कि सच्चे अर्थों में भारतीय सभ्यता या हिंदुस्तानियत की कहानियाँ हैं, जिनमें परंपरा का रस है, उसके प्रति सम्मान का भाव भी। हालाँकि बीच-बीच में परंपरा के प्रति प्रेमचंद का आलोचनात्मक नजरिया भी सामने आता है और वे उसे एक नए कलेवर में ढालते हैं।

एक खास बात यह भी है कि प्रेमचंद के यहाँ प्रगति और परंपरा में विरोध नहीं, बल्कि वे दोस्ताना ढंग से एक-दूसरे के साथ आगे बढ़ते हैं। हाँ, परंपरा और रूढ़िवाद दोनों एक ही चीज नहीं है और प्रेमचंद दोनों में फर्क करते थे। वे रूढ़ियों को पसंद नहीं करते थे और अपनी कहानी, उपन्यास और लेखों में उन पर खूब कसकर प्रहार करते थे। पर दूसरी ओर वे परंपरा के साथ थे और हिंदुस्तानी परंपराओं की खिल्ली उड़ानेवालों को पसंद नहीं करते थे।

प्रेमचंद की कई कहानियों में देशराग और स्वाधीनता संग्राम की रोमांचित करनेवाली जोशीली दास्तानें हैं। 'जुलूस', 'यही मेरा वतन है', 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', 'शेख मखमूर', 'सांसारिक प्रेम और देशप्रेम', 'समर-यात्रा', 'आहुति', 'होली का उपहार' सरीखी उनकी कहानियों मन में बड़ी तेज उथल-पुथल मचा देती हैं। उन्हें पढ़ने के बाद मन में देश के लिए कुछ करने की तड़प पैदा न हो, ऐसा हो नहीं सकता। 'जुलूस', 'होली का उपहार', 'आहुति' और 'समर-यात्रा' इस लिहाज से प्रेमचंद की बहुत भावनात्मक कहानियाँ हैं। ऐसे ही 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' कहानी का आखिरी वाक्य है, 'खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।' कहानी पढ़ने के बाद यह हर पाठक के दिल में इतनी गहराई से दर्ज हो जाता है, कि जिंदगी भर इसके आखर कभी धुँधलाते नहीं है।

अपने देश के लिए कुछ कर गुजरने की प्रेमचंद की बेचैनी और भावनात्मक द्वंद्व कई जगह दिखाई पड़ता है। उनके जीवन में भी, और लेखन में भी। 'जमाना' के संपादक दयानारायण निगम को प्रेमचंद ने एक पत्र में बहुत भावुक होकर लिखा था—"एक ख्वाहिश है कि देश की आजादी की लड़ाई मैं लेखन द्वारा लड़ूँ।" और प्रेमचंद ने वाकई यह करके दिखाया। उनकी लिखी दर्जनों कहानियों में आजादी की लड़ाई का ऐसा जोश और ललकार है कि उन्हें पढ़ते हुए लगता है कि प्रेमचंद केवल कहानियाँ नहीं लिख रहे, बल्कि अपनी कलम से खुद भी स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहे हैं।

प्रेमचंद की देशराग की कुछ कहानियों में स्त्रियाँ विदेशी वस्त्रों आदि की दुकानों के आगे पिकेटिंग करती हैं, धरना देती हैं और जुलूस में 'वंदेमातरम्' और 'भारतमाता की जय' के नारे लगाते हुए आगे-आगे चलती हैं तो अंग्रेजी सत्ता हक्की-बक्की रह जाती है। पुलिस लाठियाँ चलाए तो किस पर? इस लिहाज से 'जुलूस' प्रेमचंद की सबसे मार्मिक कहानी हैं, जिसमें पत्नी मिट्ठन बाई जुलूस में शामिल है और उसका पति बीरबल सिंह लाठियाँ चलानेवाली पुलिस में दरोगा है, जिसका दूर-दूर तक आतंक है। निहत्थी जनता पर पुलिस की लाठियों की मार से कितने ही लोग घायल होते हैं, कितनों के सिर फूटते हैं, पर दरोगा को इसका जरा भी अफसोस नहीं है। पर पत्नी की आँखों में उसे अपने लिए ऐसा तिरस्कार दिखाई देता है कि वह अपराध-बोध और पश्चात्ताप से भर जाता है, और शहीद इब्राहिम अली के घर जाकर अपनी करनी के लिए माफी माँगता है।

सच पूछिए तो प्रेमचंद की ये कहानियाँ गांधीजी की स्वाधीनता की पुकार के साथ-साथ स्वर में स्वर मिलाती कहानियाँ हैं, जिन्हें पढ़कर स्वाधीनता संगाम की एक मुकम्मल तसवीर आँखों के आगे आ जाती है।

□

कहानियों के बाद मैं एक दुर्निवार आकर्षण और उत्सुकता से प्रेमचंद के उपन्यासों की ओर मुड़ा, जो न जाने कबसे मुझे हाथ उठाकर बुला रहे थे। मैं उनके आकर्षण को शायद समझ नहीं पा रहा था। पर एक बार प्रेमचंद के उपन्यासों की दुनिया में आया, तो कभी उससे बाहर आने का मन ही नहीं हुआ। सच पूछिए तो आज तक नहीं आ सका।

मुझे याद है, यह सिलसिला 'निर्मला' और 'वरदान' से शुरू हुआ था। इसके बाद 'गबन', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि', 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'कायाकल्प' उपन्यास पढ़े, 'गोदान' पढ़ा, तो एक नई दुनिया मेरे आगे खुलती चली गई। भावनाओं का एक इतना बड़ा संसार, जिसमें इस महादेश की जनता का दु:ख-दर्द ही नहीं, पूरा इतिहास, समाजशास्त्र और संस्कृति के हलचल भरे प्रश्न, सब-के-सब चले आते थे और पुकार-पुकारकर उत्तर माँगते थे। इनमें से कुछ उपन्यास तो मैंने किशोरावस्था में ही पढ़े और इस कदर कि पुस्तक हाथ से छूटती ही न थी। लगता था, एक ही साँस में पूरा पढ़ लूँ। 'निर्मला', 'वरदान', 'गबन' ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें से हर उपन्यास मैंने शायद दो या तीन दिन में पूरा पढ़ लिया था।

उस समय, जाहिर है, मेरे पास शब्दों का कोई बड़ा भंडार न था। छठी-सातवीं कक्षा के बच्चे के पास भाषा की सामर्थ्य ही कितनी रही होगी, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। पर प्रेमचंद को पढ़ने या उनकी भावधारा से जुड़ने में जरा भी मुश्किल आई हो, याद नहीं पड़ता। एक बड़ा लेखक सचमुच ऐसी ही होता है, जिसका मन पर आतंक नहीं पड़ता, और उससे दोस्ती के लिए परम विद्वान होना जरूरी नहीं, बल्कि एक मामूली इनसान और एक बच्चे से भी उसकी गहरी दोस्ती हो सकती है। यों प्रेमचंद को पढ़ने के बाद एक बड़े लेखक की बिल्कुल अलग सी तसवीर मेरे जेहन में बनी, और मुझे आज तक इसे बदलने की जरूरत नहीं पड़ी।

अलबत्ता, अब मन में प्रेमचंद की रचनाओं के लिए ऐसी बेचैनी और प्यास जाग गई कि लगता था, प्रेमचंद का कुछ भी मिले और मैं पढ़ूँ। प्रेमचंद नहीं थे। वे तो सन् १९३६ में ही जा चुके थे, पर प्रेमचंद अपनी कहानियों और उपन्यासों के जरिए अपने निधन से कोई दो दशकों बाद फिर से मेरे भीतर जिंदा हो गए थे और मैं खुद को पूरी तरह प्रेमचंदमय पा रहा था।

मेरे जीवन का यह अनोखा प्रसंग है, जिसने मुझे भीतर-बाहर से बदल दिया।

प्रेमचंद के उपन्यासों में बीच-बीच में मनुष्य के भावनात्मक संबंधों के इतने करुण प्रसंग थे कि बिना रोए मैं पढ़ ही नहीं सकता था। हालाँकि कुछ समझ में आता था, कुछ नहीं। पर जो समझ में आता था, उसके सहारे जो चीज नहीं समझ में आती थी, उसके भी अर्थ खुलते जाते थे। और हाथ में किताब लिये मैं जान लेना चाहता था कि आगे क्या हुआ, आगे क्या, आगे क्या··· ?

कई बार तो पढ़ते-पढ़ते ऐसे करुण प्रसंग आ जाते कि आँखों से लगातार गंगा-जमुना बहती। हिचकियाँ तक बँध जातीं। एक हाथ में किताब पकड़े, दूसरे से मैं आँसू पोंछता जाता और आगे पढ़ता जाता। पढ़ते-पढ़ते कई बार जोर से रोना छूट जाता, पर तब भी किताब के पन्ने पलटता जाता, क्योंकि यह जाने बिना निस्तार न था कि आगे क्या हुआ, आगे··· ?

याद पड़ता है, उनकी 'निर्मला' ने मुझे बहुत रुलाया है, 'वरदान' ने भी। मैंने करीब-करीब रोते-रोते ही इन कृतियों को पढ़ा है। इनमें 'निर्मला' बड़ी उम्र के दूल्हे के साथ ब्याही गई लड़की के दु:ख और आँसुओं

की कहानी है, तो 'वरदान' किशोरावस्था के प्रेम की चरम व्याप्ति। इसी तरह प्रेमचंद के 'गबन' उपन्यास ने मेरे भीतर लंबे समय तक बहुत बेचैनी भरी दस्तकें दीं। 'गबन' असल में एक स्त्री के गहनों के आकर्षण के कारण एक घर के उजड़ने की कहानी है। उसमें जालपा के आँसुओं की लंबी कथा है, तो साथ ही पत्नी के लिए गहने खरीदने, उसके लिए नाजायज ढंग से पैसा कमाने और फिर गबन के आरोप में तमाम मुश्किलों में फँसे रमानाथ के भटकाव की अविस्मरणीय मर्मकथा भी। हालाँकि अंत तक आते-आते प्रेमचंद जालपा को राष्ट्रीय भावनाओं से जोड़कर जिस ऊँचाई पर खड़ा कर देते हैं, वह भी चकित करनेवाला अनुभव है।

सच तो यह है कि हिंदी में छपे अपने पहले उपन्यास 'सेवासदन' से ही प्रेमचंद ने एक अलग लकीर पकड़ ली थी, जो प्रचलित उपन्यासों की रूमानियत को छिन्न-भिन्न करके अपनी एक अलग अस्मिता कायम करती थी। 'सेवासदन' में 'परपज का काठिन्य' है। उसमें समाज-सुधार की गहरी चिंता और तड़प है, पर वह इस कदर किस्सागोई की लय में ढलकर आती है कि प्रेमचंद उपदेशक नहीं, बड़े किस्सागो ही लगते हैं। कथावस्तु के बीच-बीच में प्रेमचंद अपने विचारों की बेबाक अभिव्यक्ति की छूट लेते हैं। पर उनके विचार कथा-प्रवाह में इस कदर लिपटे हुए आते हैं कि इससे उलटे उपन्यास को बल मिलता है और अपने विचार-दर्शन से वह एक ऊँचाई पर अवस्थित नजर आता है।

कुल मिलाकर प्रेमचंद अपनी पहली ही औपन्यासिक कृति 'सेवासदन' में उपन्यास का जो ढाँचा खड़ा करते हैं, वही उनके बाकी उपन्यासों से होता हुआ, 'गोदान' तक जाता है। यह दीगर बात है कि प्रेमचंद जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, उनका कथा-लाघव कहीं अधिक कलात्मक और निखरे हुए रूप में सामने आता है और 'गोदान' तक आते-आते वह अपने शीर्ष तक पहुँच जाता है। यों प्रेमचंद सिर्फ एक लेखक ही नहीं, वे पूरे युग को एक मोड़ देनेवाले युगांतकारी लेखक बन गए। उनकी कलम सबकी स्पृहा का कारण बन गई, जिससे एक के बाद एक ऐसी असाधारण कृतियाँ सामने आ रही थीं कि लगता था, उनकी यह वेगवती कलम कभी रुकेगी ही नहीं। संस्कृत के 'कथा सरित्सागर' के बाद प्रेमचंद हिंदी में अपना एक नया और विलक्षण कथा सरित्सागर रच रहे थे, और उसकी धमक दिशाओं में व्याप्त हो रही थी।

प्रेमचंद के उपन्यासों में 'रंगभूमि' का मिजाज कुछ अलग ही है, जिसमें स्वाधीनता की लड़ाई की बेचैनी भरी झाँइयाँ हैं। उपन्यास का एक अलग सा पात्र सूरदास मानो पांडेपुर के कथाफलक पर एक नया ही गांधी बनकर सामने आ जाता है। सूरदास की न्याय की जिद के कारण एक के बाद एक तमाम जमीनी सच्चाइयाँ सामने आ जाती हैं। जिधर अन्याय है, उधर बड़े-बड़े मुखौटों वाले शक्तिशाली लोग हैं। दूसरी ओर न्याय के पक्ष में अकेला सूरदास खड़ा दिखाई पड़ता है, जो एकदम साधनहीन और अकिंचन है। पर वह किसी से नहीं डरता, किसी की परवाह भी नहीं करता और अपनी नैतिक शक्ति व आत्मबल से अपनी लड़ाई जारी रखता है। धीरे-धीरे सूरदास लोगों की इस कदर सहानुभूति अर्जित कर लेता है कि वह एक सच्चा जननायक बनकर उभरता है।

सच पूछिए तो 'रंगभूमि' की ताकत ही यही है कि वहाँ जनता के बीच से निकला कोई अंधा सूरदास अपनी कड़ी जिद से आखिर एक शक्तिशाली अन्यायी सत्ता की जड़ें हिला देता है। बेशक गांधीजी के असहयोग आंदोलन की छाप 'रंगभूमि' के सूरदास पर है, पर प्रेमचंद उसे कहीं और यथार्थपरक ढंग से अपनी जमीन और लोगों से जोड़ देते हैं। 'रंगभूमि' पढ़ते हुए लगता है कि सूरदास में प्रेमचंद ने अपने आप को समूचा उड़ेल दिया है। सूरदास की काया चाहे अलग हो, पर उसमें आत्मा प्रेमचंद की ही है।

कुल मिलाकर प्रेमचंद अपनी पहली ही औपन्यासिक कृति 'सेवासदन' में उपन्यास का जो ढाँचा खड़ा करते हैं, वही उनके बाकी उपन्यासों से होता हुआ, 'गोदान' तक जाता है। यह दीगर बात है कि प्रेमचंद जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, उनका कथा-लाघव कहीं अधिक कलात्मक और निखरे हुए रूप में सामने आता है और 'गोदान' तक आते-आते वह अपने शीर्ष तक पहुँच जाता है। यों प्रेमचंद सिर्फ एक लेखक ही नहीं, वे पूरे युग को एक मोड़ देनेवाले युगांतकारी लेखक बन गए।

अब जरा 'गोदान' की बात की जाए, जो प्रेमचंद की रचनाओं में सबसे ऊँचा शिखर रचता नजर आता है। सच कहूँ तो अपनी किशोरावस्था में जब मैंने गोदान को पहली बार पढ़ा था, तभी से यह मेरा पीछा कर रहा है। तब से 'गोदान' को कई बार पढ़ा। घटनाएँ पता थीं। यानी कथा-विन्यास परिचित, पात्रों से तो पहले ही मिल चुका था। मगर हर बार 'गोदान' को पहले से अधिक अर्थमय, पहले से अधिक व्यंजक, कशिश भरा और असरदार पाया। कुछ और अपनत्व और तेजी से अपनी ओर खींचता हुआ। यहाँ तक कि अभी इकहत्तर बरस की उम्र में मैंने एक बार फिर 'गोदान' को पढ़कर खत्म किया, तब उसकी तासीर, उसकी गहरी-गहरी सी करुणा और मर्म को छूती कथावस्तु को कहीं अधिक गहरा-गहरा होकर जाना।

और तभी यह जाना कि 'गोदान' की यह खासियत—उसकी हमेशा वैसी ही बनी रहने वाली तासीर उसे महज एक उपन्यास नहीं रहने देती। उपन्यास एक-दो बार पढ़ने के बाद बासी लगने लगता है, लेकिन 'गोदान' नहीं। वह उससे कहीं अधिक है, बल्कि शायद उससे बहुत अधिक। और सच ही वह हमारे आधुनिक समाज का महाकाव्य है, जिसमें समूचा हिंदुस्तानी समाज अपनी शक्ति, मनोरथ, सपनों और कमजोरियों के साथ प्रतिबिंबित हुआ है। 'गोदान' इतना बड़ा उपन्यास है कि उसमें हिंदुस्तानी समाज के जो अक्स आए, उनमें खुद-ब-खुद इतिहास से कहीं अधिक सच्चा इतिहास चला आया।...और यों उपन्यास, इतिहास और भारतीय समाज की सच्ची छटपटाहट और सपनों ने मिलकर 'गोदान' को एक ऐसे 'संपूर्ण' महाकाव्य में बदल दिया, जो जितना यथार्थ के स्तर पर सही उतरता है, उतना ही रूपक के स्तर पर भी।

होरी और धनिया ने कोई महान् युद्ध भले ही न लड़ा हो, पर वे करोड़ों हिंदुस्तानी स्त्री-पुरुषों की वेदना, टीस और आहत अभिमान को अपने भीतर समोए साधारण पात्र हैं, तो यह साधारणता भी क्या छोटी चीज है? सच तो यह है कि साधारण होकर भी वे हर क्षण इतने अद्‌भुत और असाधारण लगते हैं कि जब वे सामने होते हैं तो उनकी एक-एक बात, एक-एक शब्द, एक-एक करुण टिप्पणी हमारे सीने में नक्श हो जाती है।

शायद यही वजह है कि 'गोदान' पढ़ें, तो हमें पता ही नहीं चलता, हम खुद कब साथ बहते हुए 'गोदान' का एक हिस्सा हो चुके होते हैं। 'गोदान' में धनिया और गोबर की लड़ाइयाँ तथा मजबूरियाँ खुद हमारी लड़ाइयाँ और मजबूरियाँ बन जाती हैं।

प्रेमचंद क्यों इतने बड़े हैं और आज तक कोई और उस ऊँचाई तक क्यों नहीं पहुँच पाया, इसका राज शायद यही है।

□

मैंने प्रेमचंद की इन विलक्षण कृतियों को पढ़ा, तब समझ में आया कि किसी कहानी या उपन्यास में सचमुच हजारों पाठकों को अपने साथ बहा ले जाने का जादू होता है। मगर उपन्यास के शब्दों में यह जादू तब जागता है, जब उसे लिखनेवाला प्रेमचंद सरीखा कोई बड़ा कथाकार, बड़ा साहित्यकार होता है, जिसके पास विश्वदृष्टि हो और जिसकी संवेदना का आयतन बहुत बड़ा हो। प्रेमचंद जनता के लेखक थे। पूरे भारतीय जनता के दु:ख-दर्द और अंतर्वेदना से जुड़े लेखक थे, इसीलिए उनकी कृतियों को पढ़कर लगता है कि पूरी हिंदुस्तानी जनता का दु:ख-दर्द इनमें उमड़ पड़ा है।

महाभारत के बारे में एक बड़ी प्रसिद्ध उक्ति है कि 'जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं नहीं है।' यही बात कुछ भिन्न ढंग से प्रेमचंद के बारे में भी कही जा सकती है। भारत के इतिहास और सामाजिक, सांस्कृतिक पटल पर बीसवीं शताब्दी के शुरू के तीन-साढ़े तीन दशकों में जो कुछ भी घटा, वह सब प्रेमचंद के साहित्य में किसी-न-किसी रूप में मौजूद है। इस लिहाज से प्रेमचंद भारतीय जनमानस में उमड़ती भावनाओं के महासागर हैं, और जो उनमें नहीं है, वह कहीं नहीं है।

और आश्चर्य, अपने किशोर काल में प्रेमचंद के द्वार पर दस्तक लगाते ही मुझे यह भी समझ में आया कि प्रेमचंद सहज ही हिंदी के सबसे बड़े साहित्यकार क्यों हैं, और बाकी सब अपनी खास कहानी-कला और तमाम दूसरी चीजों के होते हुए भी क्यों प्रेमचंद के आगे छोटे लगते हैं।

मजे की बात यह कि प्रेमचंद अपने बड़प्पन की छाप छोड़ने के लिए कोई खास जतन नहीं करते। इसीलिए वे सहज ही इतने बड़े हो जाते हैं कि करोड़ों भारतीयों के दिलों पर राज करने लगते हैं। हिंदी कथा साहित्य में उनकी कलाहीनता की कला आखिर सारी कलाओं से बड़ी साबित होती है और उनकी सादा भाषा पाठकों के दिल में इस तरह उतरती जाती है कि पूरी कहानी और पात्र तक दिल में छप जाते हैं। जिस लेखक की तसवीर करोड़ों भारतीयों के दिल में बसी हो, भला इससे बड़ा और कौन लेखक हो सकता है?

□

एक बात और कहे बिना नहीं रहा जाता कि जब अपनी किशोरावस्था में मैंने प्रेमचंद को पढ़ा, तब न मैं गरीबी की पीड़ा को जानता था, न ऊँच-नीच का दर्द, और न जीवन की दूसरी समस्याओं से ही परिचित था। संयोग से मैं एक संपन्न परिवार में जनमा था, और ये सब चीजें मैंने नहीं देखी थीं। पर प्रेमचंद मेरे लिए सिर्फ एक लेखक ही नहीं, बल्कि मेरी जिंदगी के असली गुरु और बड़े अच्छे मास्टर साहब बन गए। उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिए मुझे गरीबी की पीड़ा की ऐसी मर्मांतक कथाओं से रूबरू कराया कि पढ़कर आँसुओं से पूरा चेहरा भीग जाता था। इसी तरह समाज में ऊँच-नीच की भद्‌दी दीवारें, जातिगत भेदभाव की विडंबनाएँ और कदम-कदम पर ग्रसनेवाले शोषण और अन्याय के ऐसे करुण चित्र प्रेमचंद के यहाँ देखने को मिले कि मैं भीतर से हिल गया।

हमारे इस जीवन में कितनी तकलीफें, कितना शोषण और अन्याय, कितना उत्पीड़न, आँसू और कराहें हैं, और इसके बीच ही प्रेम है, करुणा है और उनके कारण यह जीवन बचा हुआ है, यह पहली बार मैंने प्रेमचंद को पढ़कर जाना। थोड़ा आगे चलकर वास्तविक जीवन में भी वही दु:ख, समस्याएँ, शोषण और अन्याय का चक्र मैंने देखा और खुद झेला भी। गरीबी और बेरोजगारी की अकथनीय तकलीफें झेलीं, यहाँ तक कि कदम-कदम पर अपमान और उत्पीड़न भी झेलना पड़ा। पर इन्हें पहलेपहल मैंने प्रेमचंद के साहित्य को पढ़कर ही जाना, और वास्तविक जीवन में ये करुण सच्चाइयाँ बाद में झेलीं और जानीं। तब समझ में आया कि प्रेमचंद को पढ़ना सिर्फ साहित्य पढ़ना ही नहीं है, बल्कि जीवन को अपनी समग्रता में देखना है, उसकी कुरूपता और कठोर सच्चाइयों के साथ।

शायद यही वजह है कि कुछ आगे चलकर जिंदगी में मैंने बहुत सी करुण, कठोर सच्चाइयाँ देखीं और उनका गवाह बना, बहुत सी चीजें खुद भी झेलीं और भीतर तक मर्माहत हुआ, तब जिन लेखकों ने मेरा सबसे ज्यादा साथ दिया, वे प्रेमचंद ही थे। उनकी कृतियाँ मेरी दोस्त थीं। उनकी दिखाई हुई दुनिया ने, जो मैंने खाली पुस्तकों के जरिए ही जानी, हर दुख और मुश्किलों में मेरा साथ दिया। जब भी कुछ ऐसा मेरे साथ बीतता कि मर्म पर गहरी चोट पड़ती, तो प्रेमचंद की याद आती कि देखो प्रकाश मनु, प्रेमचंद ने लिखा तो है ऐसी स्थितियों के बारे में, फलाँ उपन्यास या कहानी में। या कुछ दारुण मेरे साथ घटित होता तो अंदर से आवाज आती कि अरे, यह तो ठीक वैसा ही है, जैसा प्रेमचंद अपनी अमुक कृति में लिख गए हैं!

यों प्रेमचंद अपने समय के ही नहीं, मेरे समय के भी नायक हैं और आनेवाले समय के भी नायक रहेंगे···और शायद आगे भी यह सिलसिला चलता रहेगा। हर युग में उनकी प्रासंगिकता एक नए ही ढंग से सामने आएगी। हर युग में अपने खास प्रेमचंदीय अंदाज और देसी ठसके के साथ वे एक बड़े पारिवारिक मुखिया की तरह हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। साअ

५४५ सेक्टर-२९, फरीदाबाद-१२१००८ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८१०६०२३२७

कविताएँ

● जनार्दन द्विवेदी

बच्चा मन

यह बच्चा मन!
जिसे लोग बुढ़ापा कहते हैं
उस समय तक वैसा ही है!
उछलता है,
मचलता है,
सहमता है,
सँभलता है,
तनता है,
मनता है,
सुनता है,
गुनता है,
खिलता है,
मुरझाता है,
उदास होता है,
रोता है, रुलाता है,
झगड़ता है,
सुलझता-सुलझाता भी है!
मन भर खेल न पाने का
अफसोस करता है,
फिर भी बढ़ने की कोशिश करता है,
रुक जाता है,
थक जाता है,
बैठ जाता है,
उठ जाता है,
चल देता है
और चलता रहता है,
यही इसकी प्रकृति है,
यही इसकी गति है!
मुझे इसकी यही सहजता भाती है,
और हँसी भी आती है,
जबकि अक्सर यह खूब पीड़ा दे जाती है,
मगर भाती तो है!
सहज जो है!
इसीलिए सुखद हो या न हो
दु:ख को सहने की शक्ति देती है
और यह मन,
फिर वैसे का वैसा हो जाता है!
वाह रे बच्चे!
जैसे हो वैसे ही बने रहो,
जब तक तुम हो,
तभी तक मैं हूँ,
वरना मैं क्या करूँगा यहाँ?
कठिन समय में तो तुम्हारे जैसे बच्चों की
सख्त जरूरत होती है
और आमतौर से हर समय।
बस, आगे भी,
सीधे-सीधे चलना,
कभी ज्यादा चालाकी मत दिखाना,
वरना बच्चे नहीं रह पाओगे,
स्वयं शून्य हो जाओगे और,
मुझ जैसों को भी शून्य कर जाओगे,
और देखो!
अति से हमेशा बचना,
अति में ही तो प्रलय है!

आजकल

अंतस् में हलचल है,
बाह्य उच्छृंखल है,
आजकल!

कोई कुछ कहता है,
कोई कुछ सुनता है,
अजब सी विफलता है,
आजकल!

गांधीवादी दर्शन और समाजवादी मूल्य प्रणाली के लिए प्रतिबद्ध व्यक्ति रहे हैं। १९६०-६१ तक छात्र, युवा और समाजवादी आंदोलनों में गहराई से शामिल रहे। भारतीय भाषाओं को सही जगह दिलाने के लिए संघर्ष किया। दिल्ली में पहली बार सर्वभाषा सम्मेलन का आयोजन किया और हिंदी भाषा तथा साहित्य के प्रचार के लिए कई कदम उठाए। जनवरी, १९६८ से जनवरी १९९३ तक दिल्ली विश्वविद्यालय में लैक्चरर और रीडर रहे। कालांतर में राजनीति में सक्रिय भागीदारी की, परंतु राजनीतिक व्यस्तताओं में भी एक कवि को सदैव अपने अंदर जीवित रखा और काव्य-सृजन में अभी भी सक्रिय।

जो भी साधारण है,
न कारक, न कारण है,
उसकी परवशता है,
आजकल!

कब क्या हो जाए?
कौन कब बदल जाए?
गजब की विकलता है,
आजकल!

समस्या विकट,
और समाधान निकट नहीं,
कैसी विवशता है?
आजकल!

७०४, आदीश्वर अपार्टमेंट्स
३४, फिरोजशाह रोड
नई दिल्ली-११०००१

निर्मला आंटी

• मीना पाठक

इस वर्ष भी सर्दी की छुट्टियों में जब मायके आई तब हमेशा की तरह सबसे पहले माँ से निर्मला आंटी के बारे में ही पूछ लिया।

"अभी माँ से ठीक से मिली भी नहीं और तुझे निर्मला आंटी की याद आ गई!" माँ ने हँसते हुए उलाहना दिया।

"माँ!" मैं लड़ियाते हुए उनसे लिपट गई।

"रहने दे, रहने दे, अब ज्यादा लाड़ मत दिखा।" माँ ने रूठने का अभिनय किया, फिर बताया कि वे भी बहुत दिनों से उनके घर नहीं जा पाई हैं। मैं जाने को तैयार हुई तो माँ ने रोक दिया।

"थकी है, कल चली जाना।" थकान तो थी ही, सो मैं भी कल जाने की सोचकर वहीं दीवान पर लेट गई।

निर्मला आंटी का घर मेरे घर के पास ही है। माँ और आंटी बहुत अच्छी सखियाँ हैं। इसलिए दोनों घरों में बहुत ही घरेलू संबंध है। बचपन में एक बार माँ को मियादी बुखार चढ़ गया था। उसी दौरान मुझे चेचक भी निकल आई। माँ बुरी तरह कमजोर हो गई थीं और मुश्किल से कुछ कर पा रही थीं। उस समय पापा सरकारी दौरे पर थे। आंटी को यह सब जैसे ही पता चला, वह दौड़ी आईं और इस बात की परवाह किए बगैर कि चेचक छुआछूत का रोग है, उन्होंने मेरी दवा से लेकर पथ्य तक का ध्यान रखा। मैं पीड़ा से कराहती तो वे मेरा माथा सहलाते हुए दिलासा देतीं, 'जल्दी ठीक हो जाएगी बेटा!' उसके बाद तो जैसे निर्मला आंटी के रूप में मुझे एक और माँ मिल गई थी।

बचपन में मैं हमेशा आंटी के घर जाने के लिए बहाने तलाशती रहती थी। आंटी का बड़ा बेटा उमेश और मैं हमउम्र हैं। महेश हमसे दो साल छोटा। हम तीनों अकसर खेल में लड़ जाते और हंगामा खड़ा कर देते; पर डाँट हमेशा उमेश को ही पड़ती, उसकी गलती हो या न हो। क्योंकि मुझे लड़की होने का विशेषाधिकार प्राप्त होता और महेश छोटे में गिना जाता।

पता ही नहीं चला कि खेलते-कूदते हम कब बड़े हुए और अपनी-अपनी गृहस्थी में उलझ गए। रक्षाबंधन पर अब भी जब हमसब मिलते हैं, तब फिर से वही हंगामा शुरू हो जाता है। पर ऐसे मौके कम ही मिल पाते हैं। सोचते-सोचते न जाने कब मेरी आँख लग गई।

सुपरिचित लेखिका। अब तक 'घुरिया' (कथा-संग्रह) तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। रेडियो 'बोल हरियाणा' पर कहानियाँ प्रसारित व सम्मानित। संप्रति अध्यापन एवं स्वतंत्र लेखन।

□

अगले दिन आंटी के घर पहुँची तो वे अपने कमरे में लेटी थीं। मुझे देखते ही उनका चेहरा खिल उठा।

"अरे उर्मी बेटा! कब आई?" कहते हुए उठकर आंटी ने अपनी बाँहें पसार दीं।

"कल ही आई हूँ आंटी।" उनके गले लगकर बोली मैं।

"घर में सब कैसे हैं? तेरी सासू माँ कैसी हैं? तुझे अब ज्यादा तंग तो नहीं करतीं न!"

"अरे नहीं आंटीजी! अब तो वे भी आप की तरह ही मुझे बहुत स्नेह करती हैं।" मैंने हँसकर जवाब दिया। सुनकर वे मुसकरा दीं।

"आपकी तबीयत को क्या हो गया? माँ बता रही थीं कि आप अकसर बीमार रहने लगी हैं।" इस बार मैं गंभीर थी।

"कुछ नहीं रे! तेरी माँ तो बस यों ही मेरे लिए परेशान रहती है। तू अपने बारे में बता।" आंटी ने बात टाल दी थी।

तभी गेट खटका। आंटी जाने को हुईं, पर मैंने उन्हें रोक दिया और स्वयं जाकर गेट खोल दिया। अंकलजी थे। मैंने उन्हें प्रणाम किया, वे भी मुझे देखकर हल्के से मुसकराए। मैं फिर से आंटी के पास आकर बैठ गई।

"हाउस टैक्स की फाइल कहाँ है?" तभी एक रूखी, कर्कश आवाज कमरे में गूँज गई। आंटी मेरा मुँह देखते हुए कुछ सोचने लगीं। जैसे कुछ याद कर रही हों। कमरे में सन्नाटा पसर गया। थोड़ी ही देर

बाद उस सन्नाटे को रौंदती हुई उसी आवाज के साथ अंकलजी भी प्रकट हो गए।

"सुनाई नहीं दिया क्या?" उनके चेहरे पर सख्ती थी और वाणी तो जैसे कानों के रास्ते आत्मा तक को झुलसा दे। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि अंकलजी मेरी परवाह किए बिना आंटी के साथ बदसलूकी से पेश आ रहे थे।

"मुझे याद नहीं कि फाइल कहाँ रखी है।"

"रात-दिन पड़ी रहती हो, पर कौन सी चीज कहाँ रखी है, इससे तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं। इस घर के प्रति तुम्हारी कोई जिम्मेदारी ही नहीं है तो यहाँ कर क्या रही हो, बोलो?" अंकलजी न जाने क्या-क्या बोले जा रहे थे।

आंटी की आँखें धीरे-धीरे पनीली हुईं, फिर छलक पड़ीं। उनके आँसू देखकर मेरा मन भीग उठा। तब तक अंकलजी ने जोर से आलमारी का दरवाजा खोला और फाइल ढूँढ़ना शुरू कर दिया। थोड़ी देर में फाइल मिल गई थी शायद, वे पैर पटकते हुए चले गए।

आंटी अपने आँसू पोंछ रही थीं और मैं चुपचाप उन्हें देख रही थी। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या बोलूँ।

"सच्च उर्मी! मैंने फाइल कहाँ रख दी थी, तनिक भी याद नहीं। आज-कल कुछ भी याद नहीं रहता। कोई भी चीज कहीं भी रखकर भूल जाती हूँ।" लगा, जैसे आंटी की आवाज गहरे कुएँ से आ रही हो। मुझे देखते ही उनके चेहरे पर जो फुलझड़ियाँ सी फूटी थीं, अब वहाँ छोभ पसरा था।

"ये तो मुझसे भी हो जाता है आंटी! कई बार चीजें रखकर भूल जाती हूँ। इसमें इतना मायूस होने की कोई बात नहीं है।" बात बदलने की गरज से मैंने उनसे कहा, पर मैं जानती थी कि अंकलजी के व्यवहार से वे आहत हुई थीं। अंकलजी अब भी वैसे ही थे, तनिक नहीं बदले थे। थोड़ी देर बाद आंटी से फिर आने को कहकर मैं घर आ गई।

मैंने माँ को सारी बात बताई। सुनकर माँ के चेहरे का रंग बदल गया था। "स्त्री को पति अच्छा मिल जाए तो उसका जीवन सुखमय, नहीं तो नर्क से भी बदतर! भाई साहब ने उस निर्दोष के साथ कौन-कौन सा अत्याचार नहीं किया। बच्चे भी नालायक ही निकले। पत्नियों के साथ आराम से रह रहे हैं, पर उन्हें माँ का तनिक भी खयाल नहीं। पिता के इस कु-कृत्य का विरोध भी नहीं करते। और भाई साहब···! हुँह, निर्मला की जगह मैं होती न, तब उन्हें पता चलता; पर यह निर्मला भी जाने किस मिट्टी की बनी है, चुपचाप सहती रहती है।" कहकर माँ गुस्से में दाँत पीसती हुई रसोई में चली गईं।

माँ से कितनी बार सुन चुकी थी कि उन दोनों की गृहस्थी एक साथ ही शुरू हुई थी; पर दोनों में बहुत अंतर था। माँ-पापा में कभी लड़ाई नहीं होती और कभी होती भी तो हम दोनों भाई-बहन उनकी लड़ाई के मजे लेते। ऐसा लगता, जैसे बचपन के दो मित्र किसी खिलौने के लिए या खेल में हार-जीत को लेकर आपस में झगड़ रहे हों और थोड़ी देर बाद ही सुलह; पर आंटी-अंकलजी को मैंने कभी हँसते-बोलते नहीं देखा। अंकलजी तो आंटी से सहूलियत से कभी बात भी नहीं करते थे! हर वक्त आदेशात्मक लहजा होता उनका। भाषा में अपशब्द, तीखापन, कटाक्ष और व्यंग्य घुला रहता। आंटी तो उनसे इतना डरती थीं कि अंकलजी के मुँह से आवाज निकलते ही हरकत में आ जाती थीं। एक मिनट की भी देरी आंटी की शामत ला देती थी।

बचपन में जब मैं उनके घर खेलने जाती तो कभी उनके चेहरे पर तो कभी बाँह, पेट, पीठ पर काला निशान देखती। उस समय मैं इन बातों को समझ नहीं पाती थी; पर जैसे-जैसे बड़ी होती गई, धीरे-धीरे सब समझ में आने लगा था। घर के बाहर दूसरों के लिए अंकलजी का व्यवहार जितना मधुर था, आंटी के साथ उतना ही क्रूर और कटु।

पिछली बार जब मैं कानपुर आई थी, तब मुझे आंटी का व्यवहार कुछ बदला हुआ सा महसूस हुआ था। चीजों पर गुस्सा उतारना, बात-बात पर झुँझलाना और कुछ कहते-कहते रुक जाना। चेहरे पर अचानक आई ढेरों झुर्रियाँ और अस्त-व्यस्तता! ऐसी तो नहीं थीं वे।

'क्या हुआ आंटी? आपकी तबीयत तो ठीक है?' एक दिन उनसे पूछ लिया था मैंने।

'मुझे क्या होगा रे! पत्थर की जान है, गलनेवाली नहीं।' कहते हुए एक अजीब सी हँसी उनके चहरे पर थी।

'कुछ तो है आंटी! भले ही आप न बताएँ।'

सुनकर वे कुछ कहते-कहते रुक गई थीं। उनके चेहरे से लग रहा था, जैसे बहुत कुछ कहना चाहकर भी कुछ कह नहीं पा रही थीं। फिर बोलीं, 'तू नहीं समझेगी।' उन्हें क्या पता कि मैं सब समझ रही थी।

उस बार वापस जाकर मैंने उमेश को फोन पर कहा था, 'आंटी की हालत मुझे कुछ ठीक नहीं लग रही, उमेश! उनका ध्यान नहीं रख रहे हो तुम लोग और अंकलजी को तो तुम दोनों मुझसे बेहतर जानते हो। कुछ कहते क्यों नहीं उन्हें?'

'तू ही बता उर्मी! मैं क्या करूँ? कई बार समझा चुका हूँ। अब इस उम्र में पापा तो सुधरने से रहे। माँ भी घर छोड़कर मेरे पास नहीं आएँगी।' उमेश ने कहा था।

मैं निरुत्तर हो गई थी। तब से अब आई हूँ तो आंटी को बिस्तर पर देख रही हूँ और अंकलजी तो जैसे कुत्ते की दुम! जो कभी सीधी ही नहीं होती।

□

"उठ जा उर्मी! चाय पी ले।" माँ की आवाज सुनकर मैं चौंककर उठ बैठी।

"क्या सोच रही है?" माँ ने चाय की प्याली थमाते हुए पूछा।

"आंटी के बारे में सोच रही हूँ। अंकलजी आज तक नहीं सुधरे!"

"क्या कहूँ! डरती हूँ कि उसके भीतर की घुटन, बेबसी और क्रोध, कहीं उसे ही न लील ले।" कहते हुए माँ की आँखें भीग गईं।

"उसने तो निर्मला का जीवन ही तबाह कर दिया। मैंने निर्मला से कितनी बार कहा कि उस आदमी को उसकी सही जगह दिखा; पर नहीं, वह करवा चौथ पर आरती उतारती रही। तीज का निर्जला व्रत रखती रही। उसके लिए, जिसने कभी उसकी भावनाओं की कद्र नहीं की। न ही वह सम्मान दिया, जो उसे मिलना चाहिए। यहाँ तक कि निर्मला को कभी इनसान तक नहीं समझा उस आदमी ने।" कहकर माँ अपने आँसू पोंछने लगीं।

अगले दिन जब मैं उनके घर पहुँची, तब उन्हें काम करते देख बोल पड़ी—"तबीयत ठीक नहीं आपकी और आप काम में लगी हैं!"

"आज शाम को तुझे यहीं खाना। हरी मटर की पूड़ी और खीर तुझे बहुत पसंद है न! उसी की तैयारी कर रही हूँ।"

"बिल्कुल नहीं, आज आप दोनों का डिनर माँ बना रही हैं।" वही कहने आई हूँ। आप कुछ नहीं करेंगी।" मैं उनके सामने से मटर की फलियाँ समेटते हुए बोली।

"ससुराल से आई है, एक दिन तो खा मेरे हाथ का!"

"मैं आपके हाथ का खाऊँ या माँ के हाथ का, एक ही बात है आंटी! वैसे कुछ दिन के लिए आप किसी बहू को बुला क्यों नहीं लेतीं?" कहते हुए सारी मटर डलिया में भरकर मैं आँगन में रख आई।

"वे दोनों भी अपने बच्चों की पढ़ाई से बँधी हैं रे! छुट्टी में ही आ पाती हैं। उसमें भी उन्हें मायके में रहना ज्यादा सुहाता है।" कहकर वे एक उदास हँसी हँस दी थीं।

"तो आप ही चली जाइए उनके पास। वहीं रहिए अब।"

"मैं···!" प्रश्नवाचक निगाहों से देखा उन्होंने मेरी तरफ। मैंने भी सिर हिलाकर हामी भर दी।

न जाने क्या सोचकर वे चुप रह गईं।

मैं वापस शिमला लौट आई और घरेलू दायित्वों में ऐसी उलझी कि बहुत समय तक कानपुर जाने का मौका ही नहीं मिला।

□

समय की रेत झरती रही। मैं जब भी माँ के पास फोन करती, तब आंटी की खोज-खबर जरूर लेती और माँ को भी बोलती कि वे आंटी के पास चली जाया करें। उन्हें अच्छा लगेगा, पर माँ को भी कम ही समय मिलता था। वह और पापा भी अकेले ही रहते थे, परंतु वे दोनों एक-दूसरे के पूरक थे, इसलिए मुझे माँ की चिंता कभी नहीं हुई। मैं जानती थी कि माँ के सिर में दर्द भी हुआ तो पापा उन्हें बिस्तर से उठने नहीं देंगे। घर का सारा काम वे स्वयं ही कर लेंगे। पापा एक पति के साथ मित्र और गुरु का दायित्व भी निभाते थे। कभी जब माँ से कोई काम बिगड़ जाता तो वे कितने स्नेह से उन्हें समझा दिया करते थे! मैं देखती ही रह जाती थी। मैं माँ को बोलती भी थी, "मेरे लिए भी पापा जैसा पति क्यों नहीं ढूँढ़ा?" तो माँ मुसकरा देतीं।

मृदुल बहुत अच्छे हैं, पर पापा जैसे नहीं। कभी-कभी उनके भीतर का पुरुषोचित दंभ जाग जाता है, लेकिन वह क्षणिक ही होता है; पर अंकलजी को भगवान् ने न जाने किस मिट्टी से गढ़ा है! उनके लिए उनकी पत्नी एक मशीन थी, जिससे वह जब चाहें जैसे चाहें काम लें, उसे प्रताड़ित करें और वह आह भी न करे! किस्मत के धनी थे कि आंटी जैसी पत्नी पाए हैं, जो धरती की तरह सिर्फ सहना ही जानती हैं। कभी विरोध के स्वर नहीं फूटे उनकी जिह्वा से।

□

धीरे-धीरे दो वर्ष बीत गए। सासू माँ की बीमारी और बेटियों की पढ़ाई के कारण मैं मायके जा ही नहीं पाई। 'आज काम खत्म करके घर फोन करूँगी।' मन में सोच ही रही थी कि अचानक ही फोन की घंटी बज उठी।

"हेल्लो"

"उर्मी···!" बोलते हुए माँ की आवाज काँप रही थी।

"हाँ माँ! क्या हुआ? सब ठीक न?" मैंने घबराकर पूछा।

"हेल्लो! क्या हुआ माँ! कुछ बोलो तो! चुप क्यों हो आप?" आशंका से मेरा दिल धड़क उठा था।

"उर्मी!"

"हाँ माँ!"

"निर्मला नहीं रही।" कहकर उधर माँ सिसकने लगी थीं।

"अरे! कब? कैसे?" मैं हतप्रभ थी। उधर माँ ने सिसकियों के बीच क्या कहा, समझ नहीं आया। आँखों से आँसू झरने लगे।

"क्या हुआ बहू? सब ठीक तो है?" मेरी हालत देखकर सासू माँ भी घबरा गईं।

उनको बताते हुए मेरी रुलाई फूट पड़ी। आंटी के बारे में मैं अकसर बातें किया करती थी। घर में सब लोग उनके प्रति मेरे लगाव को जानते थे।

"ईश्वर उन्हें सद्गति दें।" कहते हुए वे मुझे सांत्वना देने लगीं।

आंटी की एक-एक बात मुझे याद आ रही थी। उनका प्यार-दुलार, उनका रोना-कराहना, उनके शरीर के काले-नीले निशान! मेरे लिए दुःख की बात यह थी कि मैं आखिरी बार उनसे मिल भी न पाई।

शाम को मृदुल घर आए तो उनको मैंने सारी बात बताई और कानपुर जाने की इच्छा व्यक्त की। माँ-पापा से मिले भी बहुत दिन हो गए थे। मृदुल ने मेरी अकेले की आने-जाने की टिकट करा दी। क्योंकि न तो उन्हें इतनी जल्दी छुट्टी मिल सकती थी, न बेटियों को।

कानपुर सेंट्रल से पापा के साथ मैं अपने घर न जाकर सीधे आंटी के घर पहुँची। पापा मेरा सामान लेकर घर चले गए। अंकलजी को बाहर तख्त पर बैठे देखकर पहली बार मुझे उनसे घृणा हुई थी। उनको नजरअंदाज कर मैं भीतर चली गई। हॉल में बैठे उमेश-महेश पर नजर पड़ते ही मेरी रुलाई फूट पड़ी। हम तीनों आपस में लिपटकर फूट-फूटकर रो पड़े। माँ भी आ गई थीं। थोड़ी देर के बाद वे मुझे घर लिवा लाईं। एक तो मैं सफर की थकी थी, ऊपर से रोने के कारण मेरा सिर दर्द से फटा जा रहा था। फ्रेश होकर आई तो माँ ने चाय-नाश्ता लगा दिया। उसके बाद

सिरदर्द की दवा खाकर मैं लेटी तो सो गई। शाम को उठी तो माँ ने फिर से चाय थमा दी।

"आंटी को क्या हुआ था माँ?"

मेरे पूछने पर माँ की आँखें छलक पड़ीं। अपने पल्लू से आँसू पोंछते हुए वे बताने लगीं, "उस दिन निर्मला की पड़ोसन घर आई थी। बातों-बातों में ही उसने बताया कि कल निर्मला के घर से तेज-तेज आवाजें आ रही थीं। सुनकर मेरा दिल धड़क उठा था। उसके जाने के बाद मैं भागती गई तो निर्मला की हालत देखकर सब समझ गई। मुझे देखकर वह बिलखकर रो पड़ी थी।" इतना कहकर माँ सिसक पड़ीं। मैं भी अपने आँसू नहीं रोक पाई।

थोड़ी देर बाद माँ ने फिर से कहना शुरू किया—"उसे रोता देखकर मैं अपने ऊपर संयम नहीं रख पाई थी, उर्मी! और भाई साहब के पास जाकर बिफर पड़ी थी, 'इस उम्र में निर्मला पर हाथ उठाते हुए आपको शर्म नहीं आती? आखिर ऐसा क्या कर देती है वह कि हमेशा आपका हाथ उठ जाता है?'

'इस बार उसने जो गलती की है न! वह अक्षम्य है, मैंने एक चाँटा क्या मार दिया, मुझपर झपट पड़ी। उसने मेरे ऊपर हाथ उठाने की कोशिश की है।' वे अकड़ कर बोले।

'हाँ, तो क्या गलत किया उसने? यह जो उसने आज किया न, उसे बहुत पहले करना चाहिए था।' मेरी बात सुनकर वह तिलमिला उठे थे।

'आप अपना काम कीजिए, ये मेरे घर का मामला है!' मुझे उनसे किसी अच्छे व्यवहार की उम्मीद तो थी नहीं, सो वही हुआ।

कुछ और कहती कि निर्मला आकर मुझे खींच ले गई। मैं बहुत गुस्से में थी, सो उसी पर फट पड़ी, 'अगर तूने हाथ उठाया ही था तो इस जल्लाद का मुँह क्यों नहीं नोच लिया, ताकि यह भी मुँह छुपाता फिरता। अरे छोड़ क्यों नहीं देती इस आदमी को! क्यों सहती है इतना!' मैं उसपर चीख पड़ी थी।

'सहने के सिवा कोई रास्ता भी तो नहीं मेरे पास। कहाँ जाऊँ इस उम्र में?' उसके फटे होंठ हिले थे।

'उठ, अभी के अभी चल तू मेरे साथ।'

'मुझे मेरे हाल पर छोड़ दे। तू जा यहाँ से।'

'तो मर इसी नर्क में! अरे एक जानवर को भी अगर बार-बार मारा जाए तो वह मारनेवाले को सींग दिखता है या रस्सी तोड़कर भागने की चेष्टा करता है, पर तू तो इनसान है! उसके साथ-साथ तूने भी खुद को प्रताड़ित किया है, समझी! और कुछ गलत नहीं किया तूने। अपने बेटों को बता यह सब। लानत है ऐसे बेटों पर, जिनके होते हुए माँ इस तरह से घुट-घुटकर जी रही है। मैं उसे रोता-सिसकता छोड़कर चली आई। जब उम्मीद के सारे रास्ते बंद हो जाएँ, तो इनसान आखिर कैसे जिए! काश, मैंने उसका हौसला बढ़ाया होता। उसके जख्मों पर मरहम लगाया होता। मैं उस घटिया, दो कौड़ी के आदमी का गुस्सा उस मासूम पर उतार आई थी। दूसरे दिन जाने की सोच ही रही थी कि अचानक उसके न रहने की खबर मिली।" कहकर माँ बिलख-बिलखकर रो पड़ी थीं।

□

आंटी की तेरहवीं को दो दिन हो गए थे। मुझे वापस जाना था। सोचा, एक बार आंटी के घर हो आऊँ, आखिर मैं उन्हीं के लिए तो आई थी। अब उमेश-महेश के प्रति मेरा नजरिया बदल गया था। माँ कुछ भी सीख दे दे; पर पिता का आचरण बेटों को स्वत: ही मिल जाता है!

अपने पिता जैसे ये भी दोहरे व्यक्तित्व के होंगे, मैंने कभी नहीं सोचा था। इच्छा तो नहीं हो रही थी, पर फिर भी एक आखिरी बार मैं गई।

वहाँ पहुँची तो सब सो रहे थे। जैसे बहुत सारे दायित्वों के बोझ से निजात पा गए हों। उमेश की पत्नी निशा ने गेट खोला और मुझसे हुलसकर मिली, फिर मुझे आंटी के कमरे में ले गई।

"ये सब क्या है?" बैठते हुए मैंने वहाँ बिखरा सामान देखकर पूछ लिया।

"मम्मी के बक्से से निकला है।"

अब मैंने ध्यान से देखा, कुछ खिलौने, छोटे-छोटे कपड़े, गहनों के खुले पड़े खाली डिब्बे, बनारसी साड़ियाँ, जिनकी जरी अब काली पड़ चुकी थी और उमेश-महेश के बचपन के कुछ फोटोग्राफ बिखरे पड़े थे। जो शायद इनसब के लिए बेकार थे। तभी मेरी निगाह साड़ियों के बीच से झाँकती डायरी पर अटक गई। मैं चौंकी। इस बीच निशा मेरे लिए पानी लेने चली गई थी। मैंने इधर-उधर देखा। मेरे सिवा वहाँ कोई नहीं था। मैंने झट से डायरी उठाई और अपने कमर में खोंसकर पल्लू से ढक ली। तभी निशा पानी लेकर आ गई। अब वहाँ बैठना मेरे लिए भारी हो रहा था। मैं उठकर चल दी।

"पानी तो पी लेतीं।" निशा बोली।

"बिल्कुल इच्छा नहीं है।"

"अच्छा रुकिए, मैं जगाती हूँ सबको।"

"मेरी ट्रेन का समय हो रहा है; रुक नहीं पाऊँगी, सोने दो उन्हें।" बोलते हुए मैं निकल आई।

□

मना करने के बावजूद माँ ने मेरे लिए खाने का सामान, कपड़े, अचार और भी न जाने क्या-क्या बाँध दिया था। मैंने चुपचाप डायरी अपने बैग में रख ली। चलते समय माँ से गले लगकर खूब रोई। माँ से मिलना भी कम ही होता था और आंटी का दर्द तो था ही, सो आँखें खूब बरसीं। चलते-चलते माँ ने हिदायत दी—"रास्ते का कुछ न खाना, मैंने सबकुछ रख दिया है।"

बच्चे कितने भी बड़े हो जाएँ, माँ के लिए बच्चे ही रहते हैं। वह उन्हें सिखाना कभी नहीं छोड़ती। पापा ने ट्रेन में बैठा दिया और चलते-चलते

उन्होंने भी सावधानी बरतने और पहुँचते ही फोन करने को कहा। ट्रेन धीरे-धीरे रेंगने लगी थी। पापा हाथ हिलाते हुए आँखों से ओझल हो गए और उनसे बिछड़ते हुए मेरी आँखें फिर छलक पड़ीं।

□

रात हो चुकी थी। ट्रेन पूरी रफ्तार से अपने साथ मुझे भी मंजिल की ओर लिये जा रही थी। सभी यात्री सुख की नींद सो रहे थे, पर मेरे सामने की बर्थ पर एक स्त्री अपने छोटे बच्चे के साथ जाग रही थी। मेरी आँखों में भी नींद कहाँ थी! मैंने डायरी निकालकर बैग को विंडो के पास हुक्क पर टाँग दिया और सिरहाने का बल्ब जलाकर सीट पर लेट गई। किसी की डायरी पढ़ना अच्छी बात नहीं होती और चुराना तो बहुत बुरी बात; पर इस डायरी को लेकर मेरे दिल में बहुत उत्सुकता थी। आंटी डायरी लिखती थीं! यह तो मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। मैं धड़कते दिल से डायरी खोलकर उसके पन्ने पलटने लगी।

वर्षों पहले की कोई तारीख थी। लिखा था—"हमेशा सोचती हूँ, क्यों सहती गई एक बीमार मानसिकता को? क्यों कमजोर पड़ जाती हूँ हर बार? विरोध करने का साहस क्यों नहीं जुटा पाती हूँ? क्यों जिए जा रही हूँ यह यातना भरी जिंदगी? मुझमें शक्ति होती तो झोंक देती स्वयं को धधकती ज्वाला में। रोज-रोज जलने से अच्छा कि एक बार में ही स्वाहा हो जाती और छुटकारा पा जाती इस शापित जीवन से; पर जीना ही होगा मुझे, अपने बच्चों के लिए। उनके भविष्य के लिए, मुझे ये सब सहना ही होगा। उनके बड़े होते ही ये दिन भी बदल जाएँगे।" पढ़कर मेरा दिल कराह उठा।

ओह! कितना भरोसा था आंटी को अपने बेटों पर और वही बेटे उनके साथ हो रहे अत्याचार को अपनी मौन सहमति दे रहे थे। वे अकेली हो गई थीं और अपनों के बीच अकेलापन बहुत दुखदायी होता है। आंटी की पीड़ा मेरी आँखों से छलक पड़ी। मैं पन्ने पलटती गई। हर पन्ने पर आंटी की सिसकियाँ, कराह, देह पर लगे चोटों का ब्योरा और अंकलजी की बेशर्मी, अमानुषिकता और अनाचार की कहानी लिखी थी।

एक जगह मैं ठिठक गई। लिखा था—"अब जिया नहीं जाता। दम घुटता है मेरा। मैं इतनी बुरी हूँ··· ! आज जब फोन पर उमेश को बताया कि बेदर्दी से पीट रहे उसके पिता को मैंने जोर से धक्का दे दिया तो वह भी मुझे ही दोषी ठहराने लगा कि 'जैसे भी हों, वे हमारे पिता हैं, उस घर के मुखिया! और ये सुनकर आपकी बहुएँ भी तो यही सीखेंगी।' मैं सन्न रह गई, मुझे विरोध करते देख उनकी पत्नियाँ भी विरोध करना न सीख जाएँ! इसलिए उन सबने मिलकर मेरी आवाज को दबा दिया। अब तक मैं चुपचाप प्रताड़ित होती रही, वह ठीक था? आज मेरे प्रतिवाद से उनके पुरुषार्थ को भी ठेस पहुँची थी। कैसे जीऊँ? अब तो चारों तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा है। हे ईश्वर! अब और साँसें नहीं चाहिए। नहीं जीना चाहती एक पल भी।"

पढ़कर मैं अपनी हिचकियाँ नहीं रोक पाई और साड़ी के पल्लू से मुँह दबाकर रो पड़ी। कुछ देर बाद थोड़ा सामान्य हुई तो बोतल से पानी पीकर आँखें बंद कीं और पीछे टेक लेकर बैठ गई। मन-ही-मन ईश्वर को धन्यवाद दिया, "हे ईश्वर! अच्छा किया जो मुझे बेटियाँ दीं, तेरा लाख-लाख आभार।"

पौ फटने को थी। खिड़की के बाहर का दृश्य अब कुछ-कुछ दिखाई दे रहा था। गाड़ी भी मेरे स्टेशन पर पहुँचने वाली थी। उतरते हुए कुछ छूट न जाए, इसलिए मैंने अपना सामान समेटकर रख लिया। मेरी नजर सामने की बर्थ पर अपने दुधमुहे बेटे की नैपी बदल रही स्त्री पर ठहर गई। उसने गंदी नैपी को अखबार में लपेटकर सीट के नीचे सरका दिया था और दूसरी पहनाकर अपनी छाती से लगा, बच्चे के नर्म मुलायम बालों में स्नेह से उँगलियाँ फेरते हुए ममता से सींच रही थी। उसके चेहरे से वात्सल्य का सोता सा फूट रहा था। ट्रेन की रफ्तार अब धीमी हो चली थी।

साअ

४३७, दामोदर नगर, बर्रा
कानपुर-२०८०८७
दूरभाष : ९१४००४४०२१

बाल-कविता

पानी भरी कटोरी

● **माला श्रीवास्तव**

सूरज देखो आग उगलता
तपती धरती साँय-साँय है लू भी चलती
नन्हे-मुन्नों जल्दी आओ
खिड़की पर अपनी तुम
रख दो पानी भरी बड़ी कटोरी
देखो कैसे
चिड़िया आती, चोंच भिगोती
छप-छप कर वह खूब नहाती
गिलहरी आती फुदक-फुदककर
घूँट-घूँट पीती, प्यास बुझाती
आँखों-आँखों खूब मुसकाती
जाते-जाते कहती जाती
थैंक्यू मुन्ना-मुन्नी तुमको
कल भी रखना
पानी भरी एक कटोरी।

साअ

डी-३६, सीनियर सिटीजन
होम कॉम्प्लेक्स
ग्रेटर नोएडा

चार ग़ज़लें

● **माला कपूर 'गौहर'**

: एक :

आज की शाम ढल न जाए कहीं
दर्द दिल का सँभल न जाए कहीं

तुम तसव्वुर में हो मगर डर है
दिल की हसरत मचल न जाए कहीं

मत छूआ कर तू जलते जख्म मेरे
आग से हाथ जल न जाए कहीं

सोच ले तू उड़ान से पहले
वक़्त तेरा बदल न जाए कहीं

धड़कनो! अपनी सरहदों में रहो
दिल का शीशा पिघल न जाए कहीं

बादलो! तुम बरसना बंद करो
फिर मुलाकात टल न जाए कहीं

बच रही हूँ मैं इसलिए 'गौहर'
वो कोई चाल चल न जाए कहीं

: दो :

वक्त आने पे हम भी देखेंगे
हम तुम्हारी कसम भी देखेंगे

दश्त में जाएँगे तो हम पहले
कोई नक्श-ए-कदम भी देखेंगे

हमने चश्म-ए-करम तो देख लिया
उनकी जुल्फों के खम भी देखेंगे

कल तबस्सुम था उसके होंठों पर
लोग अब चश्म-ए-नम भी देखेंगे

मेरे दुश्मन ने मुझको देख लिया
क्या मुझे अब सनम भी देखेंगे

आ गई हैं महाज तक आँखें
किसमें कितना है दम भी देखेंगे

मन की आँखों पे है चमक जिसकी
ऐसे 'गौहर' को हम भी देखेंगे

: तीन :

ख्वाहिशों का ये जाल है दुनिया
जाने किस का कमाल है दुनिया

आप अपना जवाब होंगे मगर
हर कदम पर सवाल है दुनिया

डूबी रहती है क्यूँ उदासी में
शायद अब हम-खयाल है दुनिया

ईद भी हो गई, दीवाली भी
फिर भी गम से निढाल है दुनिया

जो भी आता है छोड़ जाता है
तुझमें रहना मुहाल है दुनिया

है जरूरत मुहब्बतों की तुझे
खून में क्यूँ उबाल है दुनिया

रेत-पानी है जिंदगी 'गौहर'
तेरे जैसी मिसाल है दुनिया

बहुआयामी व्यक्तित्व की धनी। पठन, गायन, कविता-लेखन, पाक-कला, चित्रकला, ड्राइविंग तथा आतिथ्य-सत्कार में तो दक्ष हैं ही, साथ ही देश-दुनिया की रोमांचकारी यात्राओं में अत्यंत रुचि रखती हैं। एन.सी.ई.आर.टी. से नेशनल अवॉर्ड तथा देश के अनेक संस्थानों द्वारा सम्मानित। १९८७ में स्थापित सिल्वर लाइन प्रेस्टीज स्कूल की संस्थापिका, निर्देशिका एवं प्रधानाचार्या।

: चार :

तुम ही तुम थे मेरे फसानों में
फिर ये आहट है किसकी कानों में

हर जुबाँ में हो एक जैसे तुम
पढ़ लिया तुमको सब जुबानों में

चोट खाने से दर्द मिलता है
दर्द मिलता नहीं दुकानों में

लगने लगता है सच बहाना भी
कितने माहिर थे तुम बहानों में

चाँद तारे जमीं पे उतरे हैं
कोई हलचल है आसमानों में

जेहन उलझा है इक सवाल में अब
धूप क्यूँ आई सायबानों में

देर ही से सही मगर 'गौहर'
आ गए हम भी दास्तानों में

२००१ सनकोर्ट टावर-१, जेपी ग्रीन्स
गोल्फ कोर्स, ग्रेटर नोएडा-२०१३०६ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९९१००९११०९

भगवतीचरण वोहरा का बलिदान

● कल्पना पांडे

भगत सिंह के महत्त्वपूर्ण साथी भगवतीचरण वोहरा का जन्म ४ नवंबर, १९०३ को लाहौर में हुआ था, जो अब पाकिस्तान में है। वे एक गुजराती ब्राह्मण थे। उनके पिता पंडित शिवचरण वोहरा रेलवे में उच्च पदस्थ अधिकारी थे। उन्हें अंग्रेजों द्वारा 'रायसाहब' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया था। चूँकि उस समय टाइपराइटर नहीं था, इसलिए भगवतीचरण के दादाजी आगरा को जीवन निर्वाह के लिए लिखते (किताबत) थे। उनके पूर्वज गुजरात से आगरा और आगरा से लाहौर चले गए। उपनाम वोहरा (संस्कृत मूल: व्यूह) का अर्थ उर्दू में व्यापारी भी है। माना जाता है कि भगवतीचरण के परिवार ने अपना अंतिम नाम खो दिया था, क्योंकि उन्होंने लाहौर के मुस्लिम-बहुल इलाके में ब्राह्मण के रूप में अपनी नौकरी छोड़ दी थी। भगवतीचरण के दादाजी के बारे में एक मजेदार कहानी है। उस समय वे एक रुपया प्रतिदिन कमाते थे, और एक रुपया कमाने के बाद वह काम करना बंद कर दिया करते थे। डेढ़ सौ साल पहले आज की तरह असुरक्षा और लालच नहीं था। १९१८ में जब वह सिर्फ १४ साल के थे, उनके माता-पिता ने उनकी शादी ११ वर्षीय दुर्गावती देवी से कर दी, जिन्होंने ५वीं कक्षा तक पढ़ाई की थी।

विज्ञान विषयों में इंटर करने के बाद भगवतीचरण वोहरा असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। इस आंदोलन में भगतसिंह, सुखदेव आदि भी थे। लेकिन चौरीचौरा हिंसा के बाद गांधीजी ने जिस इकतरफा तरीके से आंदोलन वापस ले लिया, उससे युवाओं मे निराशा का माहौल फेल गया। उसके बाद वोहरा ने लाहौर के नेशनल कॉलेज से बी.ए. किया। वहाँ उनकी मुलाकात भगत सिंह और कई अन्य सहयोगियों से हुई। भगतसिंह और सुखदेव इसके मुख्य सदस्य थे, जिन्होंने 'देश की गुलामी और मुक्ति का सवाल' नामक एक अध्ययन समूह चलाया। 'नौजवान भारत सभा' का गठन १९२३ में भगत सिंह की पहल पर हुआ था। भगवती चरण को उस संगठन का प्रचार सचिव नियुक्त किया गया। नौजवान भारत सभा का कार्य लोगों में क्रांतिकारी विचारों का प्रसार करना था। भगवती चरण, भगत सिंह, सुखदेव, धन्वंतरी, एहसान इलाही, पिंडीदास सोढ़ी बैठक की योजना बनाने से लेकर बैठक तक ले जाने तक सभी काम करते थे। संगठन राजनीतिक व्याख्यानों के अलावा सामाजिक भोज का आयोजन करता था। इसमें सभी धर्मों और जातियों के लोगों को एक साथ बैठकर खिचड़ी जैसा सादा भोजन करने के लिए आमंत्रित किया गया था। नौजवान भारत सभा ने जान-बूझकर वंदे मातरम्, सत-श्री अकाल, अल्लाहु अकबर के नारों के बजाय इनकलाब जिंदाबाद, जय हिंद, हिंदुस्तान जिंदाबाद के व्यापक और धर्मनिरपेक्ष नारों का उपयोग करने का फैसला किया।

भगत सिंह हमेशा अपनी जेब में क्रांतिकारी करतार सिंह सराभा की एक छोटी सी तसवीर रखते थे, जिन्हें १९१४ में गदर आंदोलन के दौरान फाँसी दी गई थी। नौजवान भारत सभा ने एक बार हिम्मत करके लाहौर के ब्रैडली हॉल में सराभा के लिए एक स्मृति कार्यक्रम का आयोजन किया। भगवतीचरण ने अपने पैसे का इस्तेमाल एक छोटी सी तसवीर से बड़ी तसवीर बनाने के लिए किया। तसवीर के ऊपर सफेद खादी का परदा लटका हुआ था। इस समय भगवतीचरण के मुख्य भाषण ने पूरे माहौल को अभिभूत कर दिया। उनकी पत्नी दुर्गावती और सुशीला दीदी नामक एक नौजवान भारत सभा कार्यकर्ता ने उनकी उँगली काटकर, अपने खून के छींटें उस सफेद परदे पर बिखेर दिए और मरने तक स्वतंत्रता के लिए काम करने की शपथ ली।

दुर्गावती हमेशा भगवतीचरण वोहरा के साथ काम करती थीं। क्रांतिकारी आंदोलनों के कारण भगवतीचरण को अकसर भागना पड़ता और भूमिगत रहना पड़ा। इस दौरान उनकी अनुपस्थिति में भी क्रांतिकारी भगवतीचरण के घर आर्थिक और अन्य मदद के लिए आते-जाते थे। जिन लोगों ने इन अजनबियों को आते-जाते देखा, उन्होंने भी दुर्गावती के चरित्र के बारे में अफवाह फैला दी। अपमान के बावजूद दंपती ने

क्रांतिकारियों को भोजन, आश्रय और वित्तीय सहायता के लिए हमेशा अपने दरवाजे खुले रखे। उन दिनों उनके पास लाहौर में तीन घर थे, लाखों की संपत्ति और हजारों बैंक बैलेंस था, लेकिन उन्होंने इन सभी सुख-सुविधाओं से इनकार कर दिया और स्वतंत्रता के लिए कठिनाइयों के साथ क्रांतिकारी रास्ता चुना। जब उनका विवाह हुआ तो भगवतीचरण अपनी पत्नी दुर्गा को एक साधारण ग्रामीण महिला मानते थे। उन्होंने क्रांतिकारी शचींद्रनाथ सान्याल के नाम पर अपने बेटे का नाम शचींद्र रखा। भगत सिंह के साथी यशपाल ने अपनी 'फाँसी के फंदे तक' पुस्तक में इस बारे में जिक्र किया है। भगत सिंह ने दिल्ली और कानपुर में संपर्क स्थापित किया। काकोरी षड्यंत्र में गिरफ्तार क्रांतिकारियों को मुक्त कराने की योजना बनाई जा रही थी। काकोरी की गिरफ्तारी के बाद संगठन कमजोर हो गया था। भगत सिंह पंजाब के बाहर आते-जाते रहते थे और पंजाब का नेतृत्व जयचंद्र को दिया जाता था। वह निष्क्रिय था। यशपाल लिखते हैं कि जयचंद्र बहुत ही डरपोक व्यक्ति थे, वह कभी गोलियाँ भी साथ नहीं रखते थे। पिस्तौल की गोलियाँ भी निकाल लेते थे। वह भगवती को अपनी राह का रोड़ा समझते थे। वह निष्क्रिय थे और उनसे सक्रियता की उम्मीद थी। भगवतीचरण संगठन के लिए बहुत पैसा खर्च करते थे, लेकिन कुछ नहीं होने से वे भी तंग आ गए थे। उन्होंने यह भी कहा कि 'जिन कारणों से काम ठप है, वे कठिनाइयाँ हमें भी पता होनी चाहिए। अगर कुछ नहीं होता है, तो हम कुछ अलग करेंगे।' परिणाम यह हुआ कि जयचंद्र के नेतृत्व को चुनौती देने और सक्रियता के आग्रह के चलते उन्होंने भगवतीचरण को एक बाधा समझना शुरू कर दिया।

भगवती का राजनीतिक प्रभाव बढ़ रहा था। पंजाब के पुराने क्रांतिकारियों से भी उनके संबंध थे। १९२२ के सत्याग्रह के निरर्थक लगने के बाद उन्होंने उस समय पंजाब में गुप्त रूप से बन रही कम्युनिस्ट पार्टी से संपर्क किया। इस कम्युनिस्ट पार्टी के लोगों का बाद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ इतना घनिष्ठ संबंध नहीं रहा। पंजाब से कुछ साहसी लोग जो अफगानिस्तान के रास्ते रूस गए थे, उन्होंने लौटकर इस समूह का गठन किया था। इन लोगों ने गुप्त रूप से रूस और यूरोप से कम्युनिस्ट साहित्य वितरित किया। आंदोलन में व्यवस्था और योजना की कमी के कारण, एकत्र किया गया धन इस तरह खर्च किया गया था। भगवतीचरण के घर पेशावर से पुस्तकें और पैसे आते थे। जब अंग्रेजों ने भगवतीचरण और यशपाल को काकोरी क्रांतिकारियों को मुक्त करने की साजिश रचने के लिए वारंट जारी किया गया तो दोनों फरार हो गए।

इस स्थिति का फायदा उठाकर जयचंद्र ने अफवाह फैला दी कि 'भगवती पुलिस का खबरी है। आंदोलन में जाँच-पड़ताल का समय नहीं मिला। भगवती धनी हैं। उन्हें कहीं भी अच्छी नौकरी मिल जाती। अच्छा व्यापार कर सकते हैं, लेकिन इसकी क्या जरूरत है? वह सी.आई.डी. में कार्यरत है। वह कोई काम नहीं करता, वह हमेशा दरवाजे के पीछे बैठा हुआ कुछ लिखता रहता है। वह इसीलिए राजनीतिक काम कर रहा है, ताकि सभी उत्साही क्रांतिकारियों को एक ही समय में फँसाया जा सके।'

सुपरिचित लेखिका। छात्र जीवन में एस.एफ. आई. नामक छात्र संगठन में सक्रिय रहीं। कई वर्षों से पत्र-पत्रिकाओं मे नियमित लेखन। सर्कस पर पुस्तक लेखनाधीन। संप्रति महाराष्ट्र सरकार के महिला बाल विकास में पर्यवेक्षिका के पद पर सेवारत।

भगवती, भगतसिंह, सुखदेव और यशपाल जैसों कि अनुपस्थिति मे लोगों ने इस अफवाह पर विश्वास किया और भगवती को शक की नजर से देखने लगे। भगवतीचरण के सी.आई.डी. में होने का दुष्प्रचार इतना फैला कि वह नौजवान भारत सभा और कांग्रेस तक पहुँच गया। सभी एक ही बात कहते कि 'विश्वसनीय सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि भगवती अंग्रेजों का खबरी और सी.आई.डी. का आदमी है।'

काकोरी षड्यंत्र में गिरफ्तार क्रांतिकारियों की रिहाई की कोशिशों में पंजाब से कोई मदद नहीं मिल पाने के कारण कोई कदम उठाया नहीं जा रहा था। जयचंद्र पंजाब क्षेत्र में नौजवान सभा के मुखिया थे, लेकिन वे डर के मारे निष्क्रिय थे और कोई-न-कोई कारण सामने रख देते थे। उन्होंने आपसी मनमुटाव को हवा देते हुए भगवतीचरण का लगातार अपमान किया और भगवतीचरण के बारे में झूठा प्रचार करना शुरू कर दिया। अब लाहौर में इस तरह से संगठन को बनाने का फैसला किया गया कि भगवती चरण को उसका कोई अता-पता न रहे। लेकिन बड़ी समस्या यह थी कि भगवतीचरण को संगठन के बारे में बहुत कुछ पता था। इसमें जयचंद्र का व्यवहार यह दिखाना था कि भगवतीचरण एक चालाक और धूर्त व्यक्ति है। जो भी योजना बनती, उसके बनाते समय ही जयचंद्र अपने होंठों पर उँगली रखकर कहते थे कि भगवती को पता चल जाएगा और बात वहीं की वहीं रुक जाती।

इस दौरान भगत सिंह काफी परेशान थे। एक तरफ तो खबर आई कि उसका करीबी भगवती, पुलिस का खबरी बन गया है, वहीं दूसरी तरफ जयचंद्र के आने से संगठन का काम ठप हो गया है। रूसी क्रांति के दौरान, जार के लोगों ने क्रांतिकारियों को पकड़ने के लिए खुद जार के खिलाफ साजिश रची। ऐसा जिक्र रशियन पुस्तकों में हर किसी के पढ़ने में आया था। भगत सिंह दुविधा में थे। एक ओर उन्हें भगवतीचरण पर पूर्ण विश्वास था, लेकिन दूसरी ओर उनकी वजह से उन्हें संगठन के सभी कामों में मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। भगत सिंह नहीं चाहते थे कि व्यक्तिगत मित्रता संगठन के कार्य में आड़े आए। यशपाल लिखते हैं कि फिर भी भगतसिंह को विश्वास नहीं हो रहा था कि भगवतीचरण सी.आई.डी. में है। लेकिन गहरे मंथन के बाद भगत सिंह इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि इस एक आदमी की वजह से सब कुछ बरबाद हो रहा है। भगवतीचरण को मार दिया जाना चाहिए अन्यथा उनके कारण संगठन का काम हमेशा बाधित होता रहेगा।

चूँकि यशपाल और दुर्गा भाभी ने एक साथ प्रभाकर की परीक्षा दी

थी, इसलिए उनके लिए भगवतीचरण के घर जाना आसान था। तो एक दिन भगत सिंह यशपाल से नाराज हो गए और कहा, 'तुम्हारा हमेशा उसके पास आना-जाना है, वह अच्छा खाता-पीता है। गप्पें लड़ाता है, लेकिन तू पता नहीं कर सकता कि वह सी.आई.डी. का आदमी है या नहीं।' यशपाल ने कहा, 'मैंने कोशिश करके देखा, पर कुछ मिला नहीं और अगर हर कोई सोचता है कि वह सी.आई.डी. है, तो मैं कैसे इनकार कर सकता हूँ?' एक दिन भगतसिंह ने यशपाल को एक भरी हुई पिस्तौल दिखाई और गंभीरता से कहा, 'अब मैं उसे गोली मारने जा रहा हूँ।' यशपाल ने कहा कि पूरी जिम्मेदारी तुम्हारी होगी। भगतसिंह चुप हो गए। इसके एक दिन बाद यशपाल ने भगतसिंह को भगवतीचरण के घर तकिए पर लेटे हुए बतियाते देखा, भगवतीचरण बनियान में पेट पर हाथ रखकर बातें कर रहे थे। यशपाल लिखते हैं कि भगत सिंह का चेहरा अंदरूनी अंतर्द्वंद्व से जल रहा था। वे भगवतीचरण की दृढ़ता, सरलता और संगठन के हित में सामंजस्य बैठाने की कोशिश कर रहे थे। उस दिन भगतसिंह ने भगवतीचरण को नहीं मारा।

इसके बाद संगठन में चर्चा चली कि थी कि यशपाल हमेशा उनके घर आ रहा था, इसलिए वही उन्हें मारे। यशपाल के पास 'हाँ' कहने के अलावा कोई चारा न था। एक दिन सुखदेव यशपाल के पास आए और बोले, 'भगवतीचरण का कुछ तो इलाज होना चाहिए।' यशपाल ने पूछा, 'तो क्या किया जाए'। सुखदेव ने कहा कि भगवती को भगतसिंह दूसरे शहर में ले गए हैं। यशपाल साहस करके तुम उनके घर जाकर सभी दस्तावेजों की तलाशी लो और देखो कि कुछ मिलता है क्या। यशपाल हिम्मत बटोरकर भगवती के घर पहुँचा तो दुर्गा भाभी घर पर ही थीं। उसने बहाना बनाया कि बीमार चल रहा है और अपनी जेब में से काफी सारी दवा निकालकर पीसकर देने को कहा। अंदर जाकर यशपाल ने फुर्ती से हर अलमारी की जाँच की। इस बार वह अपने साथ चाबियों का गुच्छा भी लाया था। लेकिन चूँकि कहीं भी ताला नहीं था, इसलिए उनकी जरूरत नहीं पड़ी। कुछ जगहों पर ताले लटके थे, लेकिन खुले थे, कई जगहों पर उनके द्वारा लिखीं टिप्पणियाँ कागजों पर बिखरी पड़ी थीं। भगवतीचरण ने इससे पहले यशपाल को उनका लेख 'रिवोल्यूशन टुडे, द बर्थ राइट ऑफ एवरी स्लेव नेशन' पढ़कर सुनाया था, जो पंजाब में गदर वापसी आंदोलन की प्रशंसा करनेवाला लेख था। जब कुछ हाथ नहीं लगा तो 'जरूरी काम से जा रहा हूँ' कहकर चले गए। उन्होंने सुखदेव को सारी बात बता दी। तब भगवती चरण को मारने का कोई पक्का फैसला नहीं हो पाया। बाद में धीरे-धीरे चर्चा शुरू हुई कि भगवतीचरण के बारे में झूठी अफवाहें फैलाई गई थीं।

नवंबर १९२८ में साइमन कमीशन के विरोध में लाला लाजपत राय के साथ नौजवान भारत सभा के युवा कार्यकर्ता भी बड़ी संख्या में मौजूद थे। लाला लाजपतराय पुलिस की बेरहमी से पिटाई में घायल हो गए और नवंबर १९२८ को शहीद हुए। भारत नौजवान सभा ने उसकी हत्या का बदला लेने का फैसला किया। सांडर्स को गोली मार दी गई और लालाजी की शहादत का बदला लिया गया। इसी के शक में भगत सिंह समेत तमाम कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करने की काररवाई शुरू कर दी गई और कई कार्यकर्ता भूमिगत हो गए। मेरठ मामले में गिरफ्तारी वारंट जारी होने के बाद भगवतीचरण भूमिगत हो गए थे। भगतसिंह की गिरफतारी के लिए लाहौर में पहरा सख्त कर दिया गया। पुलिस से बचने के लिए भगत सिंह को लाहौर से भागना था और इसके लिए उन्होंने एक योजना बनाई।

भगत सिंह ने अपने बाल और दाढ़ी काट ली, लेकिन इससे उनकी शक्ल पर ज्यादा फर्क नहीं पड़ा। फायरिंग करते समय कुछ पुलिसकर्मियों ने उसे देखा और उसके चित्र पुलिस के हाथ में थे, इसलिए बहुत सावधान रहना था। सुखदेव रात आठ बजे अपनी भाभी के पास मदद माँगने गए और कहा कि वह पुलिस से बचाकर एक आदमी को लाहौर से बाहर निकालना है। आप उसकी पत्नी मेम साहब बनकर उसके साथ जाएँगी?

दुर्गावती को तब इस बात का अंदाजा नहीं था कि उनके साथ जानेवाला गुमनाम व्यक्ति उनका क्रांतिकारी मित्र भगतसिंह है। वे एक-दूसरे को 'कामरेड' कहते थे और उनके घर आनेवाले हर सहकर्मी पर इतना भरोसा करते थे कि दुर्गा भाभी द्वारा पकड़े जाने और देशद्रोह की सजा मिलने की भारी संभावना और विचार के बावजूद उन्होंने तुरंत 'हाँ' कर दी। बाद में भगत सिंह भी वहाँ आए और योजना पक्की की गई।

रात को वहीं छुपकर सुबह की मेल से कलकत्ता के लिए रवाना हुए। इस बार भगत सिंह ने अपने कॉलर पर एक लंबा ओवरकोट पहना और अपने चेहरे पर अपनी टोपी खींची और भगवतीचरण के तीन साल के बेटे शचींद्रकुमार को उठाकर सामने पकड़ लिया। दुर्गाभाभी ने भी अपना चेहरा रँगा, ऊँची एड़ी के सैंडल पहने और भगत सिंह के साथ चलीं। राजगुरु उनके नौकर बन गए। भगत सिंह के पास इस समय एक लोडेड पिस्टल भी थी। पुलिस को शक होता तो गोलीबारी होती और अगर ऐसा होता तो नन्हे शचींद्र और दुर्गा भाभी की मौत हो सकती थी। लेकिन फिर भी उन्होंने बिना किसी डर के बड़ी हिम्मत दिखाई। भगवतीचरण कलकत्ता में छिपे थे। जब वह स्टेशन पर भगत सिंह से मिले और उन्होंने अपनी पत्नी और बच्चे को अपने साथ आने में मदद करते देखा, तो उन्होंने उनके कंधे पर हाथ रखा और कहा, "मैंने आज तुम्हें जाना है।" इस साहसी घटना ने दुर्गावती की ओर देखने का सबका नजरिया बदल दिया। यह दुर्गादेवी के जीवन पर स्वतंत्रता आंदोलन में भगवतीचरण के कार्यों के प्रभाव को दरशाता है।

८ अप्रैल, १९२९ को में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दो कानूनों का विरोध करते हुए संसद् कम क्षमतावाले बम फेंके और परचे फेंके। उन्हें बोस्टन जेल में रखा गया था। कुछ दिनों बाद सुखदेव और राजगुरु को भी गिरफ्तार कर लिया गया। इन सभी को जेल से बाहर लाने के लिए भगवतीचरण, चंद्रशेखर आजाद, यशपाल, दुर्गावती सभी ने मिलकर योजना बनानी शुरू कर दी। जब भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त और अन्य को लाहौर जेल से एक साथ अदालत में ले जाना था, तो सेंट्रल जेल के दरवाजे पर अचानक हमला करने और उन्हें रिहा करने का निर्णय लिया गया। इस कार्य के लिए शक्तिशाली बमों की आवश्यकता थी, क्योंकि पहरा काफी कड़ा था। भगवतीचरण बम बनाने की कला जानते थे। ये लोग जेल के पास एक जगह फर्जी नाम से किराए के मकानों में रहने लगे, ताकि बम या अन्य सामग्री लाने में खतरा कम हो।

बम के गोले और रसायनों को इकट्ठा किया गया और अगले कुछ दिनों में बम बना दिया गया। बम को केमिकल से सुखाने और ट्रिगर फिट करने की जिम्मेदारी यशपाल की थी। एक दिन ट्रिगर ढीला रह गया। यशपाल बाहर गए हुए थे। लेकिन उनका उपयोग करने से पहले उनका परीक्षण करने की आवश्यकता थी, इसलिए भगवतीचरण, बच्चन और सुखदेवराज परीक्षण के लिए बम लेकर रावी नदी के तट पर गए। भगवतीचरण ने ट्रिगर देखा और वो ढीला होने के कारण वहीं रख दिया। सुखदेवराज ने मजाक में कहा, 'अगर तुम डरे हुए हो तो मुझे दे दो।' भगवती ने कहा, 'ऐसी कोई बात नहीं है, जो मेरे लिए है, वह तुम्हारे लिए है।' उसने बम वापस फेंकने की लिए खींचा, लेकिन ट्रिगर काम नहीं कर रहा था, इसलिए उसमें विस्फोट हो गया। भगवतीचरण इतनी बुरी तरह घायल हो गए कि उसका एक हाथ उनकी कलाई से अलग हो गया था। दूसरे हाथ की उँगलियाँ पूरी तरह टूट चुकी थीं और चेहरे पर कई जख्म थे। पेट के दाहिने हिस्से में एक छेद से खून बहना शुरू हुआ और बाईं तरफ से आँत बाहर निकल आई। पुलिस की सूचना के बिना रक्तरंजित भगवतीचरण को उठाना संभव नहीं था, तो सुखदेवराज ने बच्चन को पहरे पर रखकर बड़े दु:ख के साथ किराए के घर पहुँचे, जहाँ सभी ठहरे थे। यशपाल छैलबिहारी के साथ टैक्सी से रावी नदी के किनारे पहुँचे और जंगल में गए। तब तक वह जीवित थे। स्काउटिंग में प्रशिक्षित क्रांतिकारियों ने उसे जंगल से बाहर निकालने की कोशिश की।

यशपाल ने अपनी पुस्तक 'फाँसी के फंदे तक' में उल्लेख किया है कि घायल हुए भगवतीचरण ने कहा, 'मुझे दु:ख है कि मैं भगत सिंह की रिहाई में योगदान नहीं दे सका। क्या होता, अगर इस मौत को दो दिन के लिए टाल दिया जाता?' उसने मुझसे कहा, 'बम फट गया। मेरे हाथ होते तो उनमें पिस्तौल देकर पुलिस को बुला लेना चाहिए था। भगतसिंह को छुड़ाने की कोशिशें थमनी नहीं चाहिए। बम का एक टुकड़ा गुरदे में घुस चुका था। पेशाब लगती, पर होती नहीं थी।

रात हो चुकी थी, सुखदेव, यशपाल अपने पास छैलबिहारी और देवराज सेठी और सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन (जिसे बाद में हिंदी साहित्य में 'अज्ञेय' के नाम से जाना जाता है) को ईसाई कॉलेज के छात्रावास में छोड़कर शहर लौट आए। दोनों को साथ लेकर वे फिर से अँधेरे में घने जंगल में पहुँच गए। भगवतीचरण शहीद हो गए थे और छैलबिहारी अँधेरे में डर के मारे भाग गए थे। देखते-ही-देखते सभी के आँसू छलक पड़े। यशपाल ने कहा, 'आइए, हम उन्हें अपने बहादुर नेता के सम्मान में एक आखिरी सलामी देते हैं।' सलामी कहते ही सभी लोग एक मिनट तक सिर के पास हाथ टिकाकर सैल्यूट की मुद्रा में शव के पास खड़े रहे। भगवतीचरण महज २६ साल की उम्र में २८ मई, १९३० को शहीद हो गए थे।

उनके शरीर को चादर से ढककर सभी लोग भरी मन से अपने किराए के बँगले में लौट आए। तब तक चंद्रशेखर आजाद लौट चुके थे। घर पर छैलबिहारी, मदनगोपाल और दुर्गावती को बड़े धैर्य से घटना बताई गई। दुर्गावती अपना मन खोलकर रो भी नहीं सकीं, क्योंकि अगर शोर होता तो लोग इकट्ठा हो जाते और सभी भगोड़े क्रांतिकारियों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती। आजाद ने हमेशा की तरह घर की बत्तियाँ बुझा दीं। ये सभी क्रांतिकारी रातभर जागे। अगले दिन भोर से ठीक पहले चंद्रशेखर ने बाहर निकलने के लिए कहा। इन क्रांतिकारियों के साथ साइकिल पर दुर्गावती क्रांतिकारियों की सभाओं में आती-जाती थीं, इसलिए लोग चर्चा करने लगे थे। लोगों का ध्यान न खिंचे, इस सावधानी के चलते दुर्गावती इस समय अँधेरे में उनके साथ बाहर नहीं जा सकती थीं। अंत में यशपाल, चंद्रशेखर और बच्चन जंगल के लिए निकल पड़े। शव के पास कोई जंगली जानवर नहीं पहुँचा, लेकिन खून में बड़ी-बड़ी चींटियाँ जमा हो गईं। उनके पास फावड़ा या कुदाल नहीं था, इसलिए शव को खोदकर दफन भी नहीं कर सकते थे। शव जलाते तो धुएँ और दुर्गंध से पुलिस के आने का खतरा है। कुछ बाल काटकर स्मृति के रूप में रख लिये गए। अंत में कोई रास्ता न देख लाश को एक चादर में बाँधकर नदी में बहा दिया गया।

इस घटना को लेकर यशपाल आजन्म खुद को ही दोषी ठहराते रहे। भगवतीचरण की मृत्यु पर चंद्रशेखर आजाद ने कहा कि उनका दाहिना हाथ कट गया है। इसके बाद इन क्रांतिकारियों ने कई दिनों तक जेल परिसर का अध्ययन किया और योजना को पुख्ता बनाया। कुछ दिनों बाद सभी बोर्स्टल जेल के बाहर तैयार हो गए, लेकिन भगत सिंह की ओर से भागने की तैयारी नहीं दिखाई पड़ी, और उनको लेकर पुलिस की गाड़ी चली गई। चंद्रशेखर आजाद की शहादत के बाद भगत सिंह ने कहा, "हमारा तुच्छ बलिदान उस जंजीर की कड़ी है, जिसका सौंदर्य कामरेड भगवतीचरण वोहरा के दुखद लेकिन गौरवपूर्ण बलिदान और हमारे प्रिय योद्धा आजाद की गरिमामयी मृत्यु से निखरा हुआ है।"

६०३, हरिछाया सी.एच.एस.एल., राई गाँव
उत्तन रोड, भायंदर (प.), ठाणे-४०११०१
दूरभाष : ९०८२५७४३१५

यदि जीवन में

• बी.एल. गौड़

बची-खुची खुशी

जब हम बड़े हुए
याद नहीं
किस कक्षा में पास हुए
तब देखी
माँ के चेहरे पर अजब खुशी।

जब हम जवाँ हुए
जाँबाज बने
घर लौटे जोड़े से
माँ फूली नहीं समाई
लगा कि जैसे
आँधी खुशियों की आई

घर-आँगन, भीतर-बाहर
सब-के-सब, महके-महके
भैया-भाभी, चाचा-चाची
बहना-बुआ, बच्चे-कच्चे
सब-के-सब, चहके-चहके
जब कंगना की रस्म हुई
तब देखी
माँ के चेहरे पर गजब खुशी।

जब हम काल-काज में फँसे
गुणा-भाग में धँसे
अंबार लगे धन के
पर थोड़े से अंतराल में
सारी उमर गई
प्रखर धूप जीवन की
जाने कब सुरमई हुई
फिर धीरे-धीरे चुपके-चुपके
उतरी आँगन साँझ
अंतर कलह पी गई रौनक
खुशियाँ हो गईं बाँझ

आनन-फानन
चौड़े आँगन
होने लगी चिनाई
सूनी आँखें अम्मा ताके
जबरन रोक रुलाई
कटे वृक्ष से घर के मुखिया
बैठे द्वार अकेले
ताक रहे सूने अंबर में
विगत काल के मेले
एक आस में अब तक जीवित
नहीं पता कब आते-जाते
किसी राह में

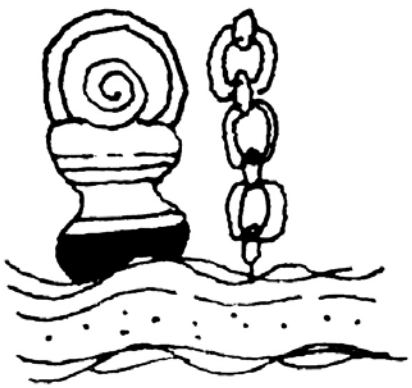

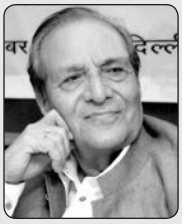

भारतीय रेल में इंजीनियरिंग विभाग से स्वैच्छिक सेवा-निवृत्ति के बाद अपनी कंपनी गौड़संस इंडिया लिमिटेड खड़ी की। संपादक, पाक्षिक समाचार-पत्र 'गौड़संस टाइम्स'। आजीवन सदस्य, अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद्; प्रेस क्लब ऑफ इंडिया, ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया, इंडियन सोसाइटी ऑफ ऑथर्स। मानद सदस्य हिंदी सलाहकार समिति, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, हिंदी अकादमी दिल्ली कार्यकारिणी सदस्य रहे। तीन लाइफ टाइम एचीवमेंट के साथ अनेक सम्मानों से सम्मानित।

फिर मिल जाए
बची-खुची बेसबब खुशी।

फिर

फिर तो फिर होती है
उसकी सुबह कहाँ होती है।

उसने कहा था
फिर मिलेंगे
क्या फिर कभी मिले?
दुनिया भर के व्यवधान
पर्वत बन आ बीच खड़े

'इंतजार' बेचारा
सुबक सुबककर सो गया
और इस तरह

पहला अध्याय
लिखे जाने से पहले ही
समय के सागर में
विलीन हो गया।

चलिए छोड़िए
जो बीत गया सो बीत गया
अब फिर से
बातों की बात करें

'बातें' जो पहले पहाड़ थीं
अंतराल में
टूट-टूटकर गंगा में बहीं
और अब बन गई हैं रेत
जिसे कितना भी उलटो-पलटो
या मुट्ठी में भींचो
पर नहीं लौटेंगी वे बातें
जो पहाड़ से रेत में तब्दील हो गईं।

इसीलिए कहता हूँ
यदि जीवन में
कभी मिले अवसर
बातें करने का
तो मत छोड़ना आधी-अधूरी
कोमा, अल्पविराम भी नहीं
पूर्णविराम लगाकर ही छोड़ना
नहीं तो
आधी-अधूरी बातें
कचोटती रहेंगी जीवनभर
यादों की थाती बनकर।

अपनी राम कहानी

आओ बैठो पास कि हम तुम
कर लें बात पुरानी
चंद बरस में बीत गई ये
छोटी सी जिंदगानी।

बचपन से पचपन तक बीती
आधी उमर सदी की
सागर ने कब समझी पीड़ा
प्यासी किसी नदी की
आओ मिलकर फिर दोहराएँ
भूली हुई कहानी।

क्यों तुम ऐसी बातें करते
जिनका अर्थ न कोई
तुम क्या जानो बिना चकवा के
चकवी कितना रोई
अब तो बीती है अनबीती
अपनी राम कहानी

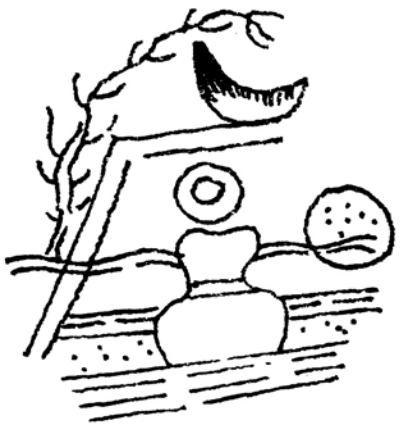

पिता दर पिता

पिता पिता होता है
अपने बच्चों का तो
वह परमपिता होता है।
जब उँगली पकड़ पिता की
चलता है बच्चा
तो पिता की उँगली
केवल उँगली नहीं
बच्चे का आत्मविश्वास होता है।

अंतराल में जब वक्त करवट बदलता है
तो बच्चा
बनता है पिता।

जैसे-जैसे
वक्त की रफ्तार बढ़ती है
वैसे-वैसे
पिता की उमर ढलती है
और पिता बनने वाले की बढ़ती है
तब अंतराल में
खो देता है पिता
सारे अधिकार पिता होने के

तब वह
भरे पूरे घर में
एक फालतू सामान होता है।
पिता करता है बड़ी भूल
जबरन पिता बने रहने की
सोच की नदी में डूबकर

सोचता है
कभी वह
घर का मुखिया था
स्वाभिमान से लबालब
कर्मयोगी था
इस तरह के तमाम भ्रम
पालता रहता है।

नहीं जुटा पाता हिम्मत
बूढ़ा पिता
ठोकर मारने की
स्वयं के निर्मित
झूठे संसार को।

पिता-दर-पिता
यह सिलसिला
अपवादों को छोड़
निरंतर
यों ही चलता रहता है।

साअ
१, बाराखंभा रोड
नई दिल्ली-११०००१
दूरभाष : ९८१०१७३६१०

गणेश शंकर विद्यार्थी

गणेशशंकर विद्यार्थी एक निडर और निष्पक्ष पत्रकार तो थे ही, एक समाज-सेवी, स्वतंत्रता सेनानी और कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। स्वाधीनता-संग्राम में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

गणेशशंकर का जन्म ६ नवंबर, १८९० को इलाहाबाद के अतरसुइया मुहल्ले में स्थित उनके ननिहाल में हुआ था। उनके पिता मुंशी जयनारायण लाल श्रीवास्तव फतेहपुर (उ.प्र.) के निवासी थे। उस समय वह ग्वालियर (मध्य प्रदेश) रियासत में गुना जनपद के मुँगावली कस्बे में एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल में प्रधानाध्यापक के रूप में कार्यरत थे। उनकी माता गोमती देवी अत्यंत धार्मिक विचारोंवाली महिला थीं।

एंट्रेंस परीक्षा पास करके वह उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। अत: वह इलाहाबाद के कायस्थ कॉलेज में दाखिल हुए। लेकिन उन दिनों उनके परिवार की परिस्थितियाँ अच्छी नहीं थीं, इसीलिए उन्हें कुछ समय बाद पढ़ाई छोड़नी पड़ी। वह उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके, किंतु उनके विचार सदा उच्च रहे। वह इस संसार को एक विश्वविद्यालय और स्वयं को उसका एक विद्यार्थी मानने लगे। यही कारण था कि उन्होंने अपने नाम के साथ जातिसूचक शब्द के स्थान पर 'विद्यार्थी' शब्द जोड़ लिया था। इसी बीच ४ जून, १९०९ को उनका विवाह हो गया।

उन्हीं दिनों उनका ध्यान पत्रकारिता की ओर गया। वह इलाहाबाद से निकलनेवाले अखबार 'कर्मयोगी' को नियमित पढ़ा करते थे। वह हिंदी का क्रांतिकारी व विदेशी अखबार समझा जाता था। विद्यार्थीजी उस अखबार से काफी प्रभावित थे।

इलाहाबाद के अखबार 'कर्मयोगी' ने विद्यार्थी जैसे हजारों नौजवानों को आजादी का दीवाना बना दिया था। विद्यार्थीजी पहले से ही 'कर्मयोगी' से प्रेरित थे। इलाहाबाद आकर वह पं. सुंदरलालजी से मिले, जो यह अखबार निकालते थे। उनसे मिलकर विद्यार्थीजी ने अखबार से संबंधित कई विषयों पर बातचीत की। पंडितजी विद्यार्थीजी के सुझावों से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने विद्यार्थीजी के समक्ष 'कर्मयोगी' में लेख लिखने का प्रस्ताव रखा। विद्यार्थीजी की इच्छा पूरी हो गई। उन्होंने उर्दू अखबार 'स्वराज' के लिए भी कई लेख लिखे। यहीं से उनकी पत्रकारिता की यात्रा प्रारंभ हुई।

कानपुर में बहुत से देशभक्त युवक जल्दी ही उनके मिशन से जुड़ते चले गए। 'कर्मयोगी' की आवाज बुलंद हो चुकी थी; किंतु वह दस महीने बाद ही बंद हो गया। 'स्वराज' भी एक साल पूरा नहीं कर सका। वह अंग्रेजों के कोप का शिकार हो गया। उसके आठ संपादकों को जेल भेजा जा चुका था। किंतु तब तक विद्यार्थीजी एक लोकप्रिय पत्रकार, निबंध-लेखक और नेता के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे।

विद्यार्थीजी ने कलकत्ता से निकलनेवाले पत्र 'हितवार्ता' के लिए भी लेखन-कार्य किया। उन्होंने इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाली 'सरस्वती' नामक पत्रिका के लिए भी अपनी कलम चलाई।

उन्होंने स्वयं 'प्रताप' नामक एक अखबार निकालने का निश्चय किया। उनके मन की बात पं. सुंदरलालजी तक पहुँची तो उन्होंने पत्र द्वारा विद्यार्थीजी को सँभलकर अखबार निकालने की सलाह दी। नवंबर १९१३ में कानपुर में पीली कोठी से 'प्रताप' का प्रकाशन शुरू हुआ। गणेशजी ने इसका नामकरण महाराणा प्रताप व प्रताप नारायण मिश्र की स्मृति में किया था।

इस दौरान कांग्रेस का प्रभाव देश भर में बढ़ने लगा था। सन् १९१६ में कांग्रेस ने लखनऊ में अपना अधिवेशन किया। उसमें कांग्रेस के गरम दल व नरम दल के नेता शामिल हुए। गांधीजी और बालगंगाधर तिलक भी विशेष तौर पर वहाँ आए थे। विद्यार्थीजी ने उनसे मुलाकात की और कानपुर आने का आग्रह किया।

एक दिन 'देश' पत्र के संपादक बटुकदेव शर्मा का एक पत्र विद्यार्थीजी को मिला। वह एक क्रांतिकारी थे और गिरफ्तारी से बचकर बेगूसराय में रह रहे थे। विद्यार्थीजी ने उन्हें बुलाने के लिए 'प्रताप' में ही गुप्त संदेश प्रकाशित करवा दिया। परिणामस्वरूप बटुकदेव कानपुर आकर विद्यार्थीजी से मिले।

विद्यार्थीजी तब तक आंदोलन के रंग में पूरी तरह रँग चुके थे। खादी का धोती-कुरता, सिर पर गांधी टोपी, गले में दुपट्टा और आँखों पर मोटे शीशे का चश्मा आदि उनकी पहचान बन चुके थे। उन्होंने उत्तर प्रदेश में किसानों को न्याय दिलाने के लिए जमींदारों के विरुद्ध संघर्ष किया। इस दौरान उन्हें जेल भी जाना पड़ा।

एक बार सरदार भगत सिंह भारत से जापान जाना चाहते थे और कानपुर में 'प्रताप' प्रेस में आकर ठहरे थे। भगत सिंह ने 'प्रताप' में 'खून की होली' शीर्षक एक जोशपूर्ण लेख लिखा।

विद्यार्थीजी ने 'काकोरी के शहीद' नामक पुस्तक लिखी, जो हाथोहाथ बिक गई। प्राय: 'प्रताप' के माध्यम से विद्यार्थीजी सरकारी

कुशासन की आलोचना किया करते थे। इसलिए कई बार 'प्रताप' व विद्यार्थीजी को अंग्रेजों का कोपभाजन बनना पड़ा। अपने निर्भीक लेखों के कारण उन्हें पाँच बार जेल जाना पड़ा था। कई बार 'प्रताप' से जमानत भी माँगी गई थी। अपने जेल-जीवन में ही उन्होंने विक्टर ह्यूगो के दो उपन्यासों 'ला मिसरेबिल्स' तथा 'नाइंटी थ्री' का अनुवाद भी किया था।

एक बार विद्यार्थीजी पर राजद्रोह का आरोप लगा और उन्हें जेल भेज दिया गया। वहाँ उन्हें 'सी' श्रेणी की कैद में रखा गया तथा एक कुरता, कच्छा, लँगोट, लोटा व एक कंबल दिया गया। जब वे कुरता व कच्छा धोते थे तब लँगोट पहनते थे। एक बार वे लँगोट पहने बैठे थे और 'प्रताप' पढ़ रहे थे, तभी अचानक बैरक में जेल सुपरिंटेंडेंट आ गया। विद्यार्थीजी ने तुरंत 'प्रताप' को लँगोट में खोंसा और कंबल ओढ़कर खड़े हो गए। तलाशी लेने पर भी पुलिस को 'प्रताप' नहीं मिला।

सन् १९२४ में विद्यार्थीजी ने संयुक्त प्रांत में काउंसिल की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ा, जिसमें वह विजयी भी हुए। सन् १९२९ में जब कांग्रेस ने काउंसिल सदस्यता छोड़ने का फैसला कर लिया तो सदस्यता से त्यागपत्र देनेवाले पहले व्यक्ति विद्यार्थीजी ही थे।

सन् १९३० में विद्यार्थीजी को सविनय अवज्ञा आंदोलन में प्रांत का प्रथम सत्याग्रह डिक्टेटर बनाया गया। उनके उत्तेजक भाषणों के कारण उन्हें गिरफ्तार कर एक साल के लिए हरदोई जेल में बंद कर दिया गया। ९ मार्च, १९३१ को उन्हें जेल से रिहा किया गया। २३ मार्च, १९३१ को देश के तीन सपूतों—भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव—को अंग्रेजों ने फाँसी पर चढ़ा दिया।

२३ मार्च, १९३१ के दिन भी वह दो मुसलिम कार्यकर्ताओं के बुलाने पर दौड़े चले गए। वह मुसलमानों के मुहल्ले से होकर महावीर की मठिया तक पहुँचे और वहाँ मुसलमानों को शांत किया। वहाँ उन्होंने कई हिंदू परिवारों को बचाया। तभी पीछे से मुसलिम दंगाइयों का शोर सुनाई दिया। उनमें से एक चिल्लाया, 'यही है गणेशशंकर विद्यार्थी।'

दंगाइयों ने दोनों मुसलिम स्वयंसेवकों को पहले ही मार डाला था, जो विद्यार्थीजी के साथ शांति स्थापित करने का कार्य कर रहे थे। बाद में वे विद्यार्थीजी की ओर दौड़े। विद्यार्थीजी पीठ दिखाकर नहीं भागे, बल्कि निडरतापूर्वक बोले, ''अगर मेरे खून से आपको शांति मिलती है तो···''

चंद्रशेखर आजाद

भारत के महान् क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद का जन्म २३ जुलाई, १९०६ को मध्य प्रदेश के अलीराजपुर रियासत के भावरा नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री सीताराम तिवारी और माता का नाम श्रीमती जगरानी देवी था। आजाद से पूर्व उनके तीन और भाई हुए थे, परंतु उनमें से एक भाई सुखदेव को छोड़कर शेष दोनों अकाल मृत्यु के ग्रास बन गए थे। आजाद के जन्म के समय उनके माता-पिता अत्यंत प्रसन्न हुए, परंतु साथ ही उन्हें काफी चिंता भी हो रही थी; क्योंकि जन्म के समय आजाद का वजन बहुत कम था।

चंद्रशेखर का विद्यार्थी जीवन ५-६ वर्ष की अवस्था से आरंभ हुआ। वे अपने बड़े भाई सुखदेव के साथ विद्यालय जाने लगे। पं. सीतारामजी ने पुत्रों की पढ़ाई पर अपनी सामर्थ्य के अनुसार धन खर्च किया। उन्हें कभी किसी प्रकार की कमी नहीं होने दी।

चौदह वर्ष की अवस्था में एक दिन चंद्रशेखर ने अपने माता-पिता से काशी जाकर संस्कृत पढ़ने की अनुमति माँगी। लाड़ली संतान होने के कारण माता-पिता उन्हें स्वयं से दूर नहीं रखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने काशी जाने की अनुमति नहीं दी। चंद्रशेखर भी अपनी धुन के पक्के थे। जो बात उन्होंने अपने मन में एक बार ठान ली, सो ठान ली। माता-पिता से अनुमति न मिलने पर भी उनके निश्चय में कोई बदलाव नहीं आया। अंततः एक दिन वे घर से भाग निकले और लौटकर फिर वापस नहीं आए। स्वजनों का प्रेम भी उनके पाँव की बेड़ी नहीं बन पाया।

उस समय पूरा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। देश अपना था, परंतु शासन विदेशियों का था। उनका अत्याचार दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा था। भारतीय जनता का वजूद उनकी नजर में कीड़े-मकोड़े से ज्यादा नहीं था, जिसे कुचलने का वे कोई-न-कोई अवसर तलाशते ही रहते थे। सन् १९१९ में पास हुआ रोलेट ऐक्ट भी इसी बर्बरता की एक कड़ी था, जिसके द्वारा भारतीयों के मौलिक अधिकारों का हनन किया जा रहा था। पूरे भारत में इसपर तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

किशोर चंद्रशेखर यह सब देखकर छटपटाहट का अनुभव कर रहा था। स्वयं को अधिक समय तक देशसेवा से दूर रख पाना अब उसके लिए असंभव था। शीघ्र ही उसे उचित अवसर भी प्राप्त हो गया।

चंद्रशेखर आजाद अब क्रांति के पथ पर अग्रसर हो चले थे। फरवरी १९२२ का समय था। पूरे देश में असहयोग आंदोलन जोरों पर था, जो कि गांधीजी ने शुरू किया था। पूरा आंदोलन पूर्णतः अहिंसात्मक ढंग से चल रहा था। 'अहिंसा' यह शब्द सुनने में जितना सरल लगता है, इसका पालन उतना ही दुष्कर है। इस आंदोलन को दबाने के लिए पुलिस तो पूरी तरह कमर कसे बैठी थी। गोरखपुर के चौरीचौरा नामक स्थान पर कुछ आंदोलनकारियों ने हिंसा का जवाब हिंसा से देकर अपना धैर्य खो दिया। १२ फरवरी, १९२२ को कुछ आंदोलनकारियों ने बर्बर पुलिसकर्मियों को पुलिस स्टेशन के अंदर ही बंद करके बाहर से आग लगा दी, जिसमें उस थाने का दरोगा और २१ सिपाही जल मरे।

इस प्रकार बीच में ही आंदोलन वापस ले लेने पर युवावर्ग में रोष फैल गया और अंग्रेजों के समक्ष इसे नैतिक पराजय के रूप में देखा गया। इसी रोष ने जन्म दिया 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' को। संगठित क्रांति प्राप्त करना, नागरिकों को मताधिकार प्राप्त कराना और समाज के शोषित वर्ग का उत्थान करना आदि इस संगठन के मुख्य उद्देश्य थे। आजाद इस संगठन के एक सक्रिय कार्यकर्ता बने। आगे चलकर इसी संगठन में आजाद ने रामप्रसाद बिस्मिल, सुखदेव, राजगुरु और भगत सिंह जैसे सूरमाओं को अपना नेतृत्व प्रदान किया। यह उनके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय था।

देशभक्ति के रंग में वे कुछ इस तरह रँग गए थे कि देश की आजादी का ही सपना हर समय देखा करते थे। इसी बीच चंद्रशेखर के पिता का देहांत हो चुका था। इधर आजाद अपना अधिकांश समय घर से बाहर रहकर देश की सेवा किया करते थे। घर में माँ जगरानी देवी बिलकुल अकेली पड़ गई थीं। चंद्रशेखर कभी चार तो कभी आठ-आठ दिन के बाद माँ से मिलने के लिए घर जाते थे।

हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन में भले ही ऐसे कार्यकर्ताओं का कोई अभाव नहीं था, जो देश के लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान देने में पीछे नहीं हटते थे; परंतु फिर भी कुछ आर्थिक कठिनाइयाँ थीं, जिनके कारण संगठन की गतिविधियाँ प्रभावित हो रही थीं। आजाद और अन्य कार्यकर्ता इस समस्या के कारण काफी परेशान थे। उन्ही दिनों उन्हें पता चला कि फतेहपुर के पासवाले गाँव के सेठ ने लोगों का खून चूस-चूसकर काफी धन जमा कर लिया है। बस फिर क्या था, इससे अच्छा अवसर और सेठ से बढ़कर उपयुक्त पात्र भला और क्या हो सकता था, तुरंत धावा बोल दिया गया। आजाद और उनके साथी धन बटोरने में लग गए, तभी आजाद की नजर अपने एक साथी पर पड़ी, जो उस घर की नवयुवती को छेड़ रहा था। युवती भय से काँप रही थी। यह देखकर आजाद का खून खौल उठा। उन्होंने दो गोलियाँ अपने उस साथी के सीने में दागकर उसे हमेशा के लिए शांत कर दिया। ऐसा उज्ज्वल था उस अखंड ब्रह्मचारी का चरित्र!

चंद्रशेखर आजाद वेश बदलने में अत्यंत निपुण थे। रास्ते में चलते-चलते ही वे अपना वेश बदल लिया करते थे। पुलिस का मुखबिर उन्हें देखकर जितनी देर में पुलिस को सूचना देता, उतनी देर में चंद्रशेखर आजाद अपना वेश बदल चुके होते थे। पुलिस हाथ मलती रह जाती थी।

एक बार चंद्रशेखर आजाद कानपुर से दिल्ली जाने के लिए स्टेशन जा रहे थे। मुखबिर ने पुलिस को सूचना दी कि चंद्रशेखर माल रोड से होकर स्टेशन की ओर जा रहे हैं। सूचना मिलते ही पुलिस दल उनकी खोज में पहुँच गया। पुलिसवाले चंद्रशेखर के नजदीक से ही होकर गुजरे, लेकिन बदले हुए वेश के कारण कोई उन्हें पहचान नहीं सका। पुलिस को चकमा देकर वे बदले हुए वेश में स्टेशन पर पहुँचे थे। पुलिस निराश होकर लौट गई।

अब तक देश के अधिकतर क्रांतिकारी चुन-चुनकर पकड़े जा चुके थे। चंद्रशेखर आजाद 'आजाद' ही थे। पूरे उत्तरी भारत में इस अकेले व्यक्ति के लिए सी.आई.डी. का जाल बिछा हुआ था। लाख प्रयासों के बावजूद पुलिस आजाद को पकड़ पाने में असमर्थ थी।

अंग्रेज सरकार के बड़े-बड़े अफसरों पर आजाद का आतंक छाया हुआ था। उन्हें सपने में भी आजाद ही दिखाई देते थे। अंग्रेज अफसरों को डर था कि न जाने कब और कौन सा अंग्रेज आजाद की गोली का शिकार हो जाए, इसलिए ब्रिटिश सरकार हर हाल में आजाद को पकड़ना चाहती थी; लेकिन आजाद तो बस आजाद ही थे, उन्हें भला कौन पकड़ सकता था!

सन् १९२८ में जब 'साइमन कमीशन' भारत आया तो उसके विरोध में चारों ओर प्रदर्शन होने लगे। लाहौर में साइमन कमीशन का विरोध करने पर लाला लाजपतराय को अंग्रेज अफसर सांडर्स ने इतना पीटा कि बाद में उनकी मृत्यु हो गई। तब आजाद, भगत सिंह और राजगुरु ने उनकी मृत्यु का बदला लेने की सौगंध खाई। सभी क्रांतिकारियों ने इस हत्या का बदला लेने के लिए एक योजना बनाई। आजाद, भगतसिंह, सुखदेव आदि क्रांतिकारियों ने बड़ी चतुराई से इस काम को अंजाम दिया। सांडर्स को गोलियों से उड़ाकर सभी क्रांतिकारी फरार हो गए।

चंद्रशेखर आजाद कुशल संगठनकर्ता और क्रांतिकारियों के श्रेष्ठ नायक थे। अपने संगठन पर उनकी पूरी धाक थी। उनकी शक्ति और अचूक निशाने से ब्रिटिश सरकार भी काँपती थी।

१७ जनवरी, १९३१ को सुबह के समय आजाद और उनका एक विश्वासघाती साथी वीरभद्र तिवारी इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में घुसे। उस दिन आजाद रेलगाड़ी से बंबई जानेवाले थे। दोनों वहीं पार्क में थोड़ी देर तक बातें करते रहे। अचानक चंद्रशेखर आजाद ने देखा कि सामने कुछ दूरी पर अनगिनत पुलिसकर्मियों ने घेरा डाल दिया था।

दरअसल, विश्वासघाती वीरभद्र तिवारी ने ही लालच में आकर आजाद को पकड़वाने की योजना बनाई थी। आजाद ने जैसे-तैसे अपने साथी को तो निकाल दिया, परंतु अब उनके भागने का कोई रास्ता नहीं था। आजाद ने जिधर देखा उधर पुलिस-ही-पुलिस थी। पुलिस ने सीधे ही गोलियों की बौछार शुरू कर दी। पुलिस सुपरिंटेंडेंट नाटबाथर ने आगे बढ़ते हुए कहा, ''हैंड्स अप।'' जवाब में आजाद की गोली उसके हाथ में लगी और वह बुरी तरह घायल हो गया। अपने अफसर को घायल होता देख पुलिस अंधाधुंध गोलियाँ बरसाने लगी। आजाद एक पेड़ की आड़ में आ गए और गोलियों का जवाब गोलियों से देने लगे। आजाद की गोलियों से पुलिस के कई अफसर और सिपाही घायल हो गए। लगभग बीस मिनट तक दोनों ओर से गोलियाँ चलती रहीं।

आखिर आजाद अकेले इतने सारे सिपाहियों का मुकाबला कब तक करते। लड़ते-लड़ते आजाद की गोलियाँ समाप्त होने को आ गईं। वे समझ गए कि बच निकलना मुश्किल है, लेकिन वे किसी दुश्मन के हाथों मरना नहीं चाहते थे। जब उनकी पिस्तौल में अंतिम गोली बची, तो उन्होंने अंतिम बार मातृभूमि को चूमकर उसे प्रणाम किया और पिस्तौल अपनी कनपटी से लगाकर गोली चला दी।

इस प्रकार आजाद 'आजाद' ही रहे। वे जिए भी 'आजाद' और मरे भी 'आजाद'।

प्रणाम और संवाद

● **जीतसिंह चौहान**

मैं जब से सोशल मीडिया से जुड़ा, तब से नियमित अपने करीबी मित्रों, परिजनों आदि को सुबह-सुबह प्रतिदिन प्रणाम करने और सुप्रभात कहने का सिलसिला नियमित जारी रखे हुए हूँ। अच्छा लगता है मुझे उन लोगों से सुबह का अभिवादन करना, जो मेरे समक्ष न होते हुए भी मेरे हृदय के बहुत पास होने का एहसास दिलाते हैं। प्रात:कालीन अभिवादन दिनचर्या की औपचारिकता नहीं, अपितु रिश्तों के प्रति आदर की अभिव्यक्ति है।

प्रणाम का अर्थ है नम्र होना, विनीत होना। 'ऋग्वेद' में उल्लेखित है कि 'नमस्कार सबसे बड़ी वस्तु है, इसलिए मैं वेदों को नमस्कार करता हूँ। देवता लोग भी नमस्कार के वशीभूत हैं, इसलिए मैं नमस्कार द्वारा किए हुए पापों का प्रायश्चित्त करता हूँ।'

प्रख्यात कवि-लेखक अज्ञात कहते हैं, 'नमस्ते स्वीकार करने से नमस्ते करनेवाले को यह संतोष हो जाता है कि आपने उसके सम्मान को स्वीकार कर लिया है। नमस्ते प्रशंसा का एक हलका सा स्वरूप है, अत: उत्तम प्रभाव डालने के लिए वह एक महज उपाय है।'

प्रणाम प्रेम है। प्रणाम अनुशासन है। प्रणाम शीतलता है। प्रणाम आदर सिखाता है। प्रणाम क्रोध मिटाता है। प्रणाम आँसू धो देता है। प्रणाम से सुविचार आते हैं। प्रणाम झुकना सिखाता है। प्रणाम अहंकार को मिटाता है। प्रणाम हमारा सम्मान बढ़ाता है।

प्रणाम और सुप्रभात प्रभात फेरी की तरह है। प्रभात फेरी का अर्थ सुबह के समय से है। सुबह के चार बजे के बाद का जो समय है, वह प्रभात का है। फेरी का अर्थ है—आसपास घूमना। धार्मिक रूप से प्रभात फेरी को प्रार्थना से जोड़ा जाता है, जिसके अनुसार प्रभात फेरी के दौरान आसपास के क्षेत्र में घूमते हुए परमात्मा को स्मरण किया जाता है। लोग समूह में भजन-कीर्तन करते हुए चलते हैं। प्रभात फेरी का उद्देश्य सुबह के समय जगाना भी है, जो किसी-न-किसी रूप में भगवान् तथा अपनों को भूल चुके हैं।

संत कबीर भी यही कहते हैं—

उठ जाग मुसाफिर भोर भई,
अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो सोवत है सो खोवत है,
जो जागत है सोई पावत है।
टुक नींद से अँखियाँ खोल जरा,
और अपने प्रभु में ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं,
रब जागत है तू सोवत है।

सुपरिचित लेखक व संपादक। हिंदी व गुजराती पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न रचनाएँ प्रकाशित और आकाशवाणी मुंबई व विविध भारती से वार्त्ताओं का प्रसारण। संप्रति साहित्य-संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका 'आदिज्ञान' का संपादन कार्य।

संत मीराबाई तो अपने साँवरे को ही जगा रही हैं—

जागो बंसीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे,
रजनी बीती भोर भयो, घर-घर खुले किवारे।

यह बात अलग है कि आज हम लोगों को भोर में जगाने के बजाय दिन चढ़े जगाते हैं। प्रणाम और सुप्रभात के माध्यम से हम अपनों से संवाद भी करते हैं। जब दो या दो अधिक व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं, उसे संवाद कहते हैं। संवाद दो शब्दों से मिलकर बना है—व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं, उसे संवाद कहते हैं। संवाद दो शब्दों से मिलकर बना है—सम् तथा वाद। इस प्रकार संवाद का शाब्दिक अर्थ है समान रूप से विचारों का आदान-प्रदान। संवाद के माध्यम से हम एक-दूसरे को खुले मन से समझने का प्रयास करते हैं। संवाद से दोनों के संबंध मजबूत होते हैं, एक-दूसरे को समझने का अवसर प्रदान करते हैं और अगर कुछ गलतफहमियाँ हैं, तो उनको दूर करने का सबसे सरल-सहज मार्ग है। संवाद एक मित्रता है, जो एक-दूसरे का साथ देने और मदद करना सिखाता है।

संवाद को उपकरणों तक न समेटें। वक्त रहते सोशल मीडिया से सीमित दूरी बनाना आवश्यक है, वरना हम भयानक अकेलेपन के शिकार हो जाएँगे। इसलिए जरूरी है कि अपने परिवार, मित्रों और रिश्तेदारों आदि से मिलने तथा बातचीत करना जारी रखें। यह हमें न केवल एक नई ऊर्जा देता है, बल्कि तनाव और निराशा से मुक्त कर आत्मविश्वास भी बढ़ाता है।

संपर्क नियमित रूप से बनाए रखना चाहिए, क्योंकि अजनबियों के शोर से ज्यादा अपनों की चुप्पी परेशान करती है, तो देर किस बात की है। अभी उठाइए फोन और अपने परिवार, मित्र या परिचित से बात कीजिए। और हाँ, कभी-कभार पत्र भी लिखिए, इससे यादगार बनी रहेगी। संयुक्त परिवार की तरह कहीं रिश्ते-नाते भी मुट्ठी से रेत की तरह निकल जाएँ, उससे पहले अपनों से संवाद शुरू कीजिए।

३-ए/१८०६, एट्रिया, जे.पी. नॉर्थ गार्डन सिटी
विनय नगर, मीरा रोड (पूर्व), मुंबई-४०११०७
दूरभाष : ९८१९००३७०७

मच्छर की महत्ता

• गोपाल चतुर्वेदी

हमारे एक मित्र हैं। वह स्वयं को बुद्धिजीवी समझते हैं। यों देखने में आया है कि ऐसा मुगालता हर विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय के प्राध्यापक को होता है, विषेशकर, यदि वह हिंदी के विषय से जुड़ा हो। ऐसे यह एक सामान्य सा, सीधा-साधा सा मुगालता है। इसमें न कोई आपराधिक तत्त्व है, न किसी की हानि है। रहे-बचे ऐसो के छात्र। इस किस्म के अजूबे, इन पर अपना बौद्धिक प्रभाव डालने का प्रयास भले करें, पर वह बहुधा असफल सिद्ध होते हैं। यह एक ऐसी आयु है जब इनसान का मूर्ति-भंजक तत्त्व जोर मारता है। वह ज्ञानी के ज्ञान से, भले भड़के, पर स्वयं को उससे कम भी नहीं आँकता है।

इस प्रकार के बुद्धिजीवी दोस्तों की एक ही दिक्कत है। वह मौका मिलते ही दूसरों की क्लास लेने से बाज नहीं आते हैं। हमें कभी-कभी भ्रम होता है कि दोस्तों के बीच भी, वह अपनी ऊँचाई बढ़ाने, अहं की नकली और काल्पनिक 'हील' तो नहीं लगा लेते हैं? तभी तो दर्शन देने के साथ उन्होंने अपनी नई व अनूठी खोज की तर्ज पर नसीहत दी कि 'ऊपरवाले के सृजन के हर जीव का अपना उपयोग व उद्देश्य है।' असल में दोष हमारा ही था। ढाबे की चाय सुड़कते समय गरमी की उस शाम को हम नाक-कान में अनधिकृत प्रवेश करते, मच्छरों से, खासे आक्रांत थे। हमारे ही क्यों, हर शहर के ढाबे गंदगी के केंद्र हैं। यह भी संभव है कि इनमें पारस्परिक प्रतियोगिता हो, गंदगी की राजधानी बनने की? भिनभिनाते मच्छरों से तंग कभी हम अपने ही कान, कभी अपनी ही नाक पर, खुद के ही हाथ से असफल आक्रमण कर रहे थे। हिंसक इरादा, इन आक्रामक मच्छरों को पकड़ने-नेस्तनाबूद करने का था।

शायद, मच्छरों के प्रति यह प्रतिशोध की हिंसात्मक भावना मित्र को रास नहीं आई और उन्होंने हमें अपनी यह नैतिक शोध सुना डाली। हम भी भरे बैठे थे। हमने उनसे जानने की हिमाकत की कि 'बताइए इन मच्छर-मक्खियों का संसार में क्या उपयोग है? सिवाय हमें सताने के, यह करते ही क्या हैं?'

वह तत्काल क्लास लेने के मूड़ में आ गए, 'यह गंदगी के जीव इसीलिए बने हैं कि जिससे आप सफाई की महत्ता से परिचित हो सकें। प्रकृति से पाठ लें, घर-बाहर सफाई रखने का।'

इतना ही नहीं, उन्होंने हमें मच्छर जनित रोगों का विवरण तक सुनाने का मौका भी नहीं चूका, "मलेरिया, चिकनगुनिया, डेंगू जैसे रोगों के होने-फैलाने में मच्छर की अच्छी-खासी भूमिका है। जीवन मलेरिया मुक्त तो हो गया, पर चिकनगुनिया और डेंगू तो अब भी जानलेवा रोगों की श्रेणी में ही आते हैं।" मित्र को पटखनी लगाने का मौका हम भी क्यों गँवाते? "जब मच्छर मानव के लिए इतना घातक व सताऊ जीव है तो आप इसे उपयोगी कैसे कहते हैं?"

जिसकी वाणी ही उसका पेशा हो, उससे बहस में खुद-बखुद उलझना शर्तिया मूर्खता की निशानी है। पर कहते हैं कि मूर्खों के सींग-पूँछ नहीं होते हैं। हमारे भी नहीं हैं। उन्हें जैसे इस प्रश्न की ही प्रतीक्षा थी। वह झट से चहके—"मच्छरों की कान में भिनभिन इसी तथ्य की चेतावनी है कि अपने आस-पास सफाई रखो, वरना रोगग्रस्त होने की आशंका है। डेंगू से कई टें बोले हैं। अपनी साँसों को बचाए रखने के लिए आवश्यक है कि गंदगी से बचो। अपने निजी हित के लिए, सूम-वृत्ति के चलते, ढाबा तजो, और हमें और हमें किसी वातानुकूलित रेस्तराँ में चाय-नाश्ते के लिए ले चलो।"

अच्छा बुद्धिजीवी हमेशा स्वयं के स्वार्थ का सोचता है। दूसरे की जेब पर जो बीते, सो बीते। हमें धीरे-धीरे विश्वास होता जा रहा है कि इस सीमित अर्थ में अपने दोस्त एक सच्चे और सफल बुद्धिजीवी है।

चूँकि भुगतान का दायित्व हमारा था, हम भी ढाबे में जमे रहे। उल्टे हमने ही उन्हें सुझाव दिया कि यदि मच्छर-मक्खी से मुक्ति खतरनाक मर्जों से बचने के लिए अनिवार्य है तो रेस्तराँ का खर्च वही झेलें। अपनी बाबूगीरी की सीमित आय हमें रेस्तराँ जाने की इजाजत नहीं देती है। दीगर है कि हम मूल्यवृद्धि की आकाशीय प्रवृत्ति का रोना नहीं रोते हैं। पर इस सच्चाई से भी इनकार करना कठिन है कि महँगाई-भत्ता, कीमतों के मुकाबले, हमेशा मात खाता है। यही क्या कम है कि 'अपने हम दो और हमारे दो' के परिवार का खर्चा चला रहे हैं और इसके वाबजूद ढाबे जाने में समर्थ हैं।

कुछ व्यक्ति 'रुदाली' या 'सियापा' के विषेशज्ञ हैं। परिस्थिति कैसी भी हो, रोना उनका स्वभाव है। यदि वह कभी मुसकराते-हँसते पाए गए तो यह उनके लिए अपराध-बोध का विषय है। एक बार ठहाका लगाते

हुए कुछ दोस्तों ने पकड़ा तो बतौर सजा, उन्होंने सबको ढाबे में खाना खिलाया था। भोजन के दौरान वह बार-बार भरे गले से यही अनुरोध कर रहे थे कि 'कृपया! ठहाके की सार्वजनिक चर्चा न करें, वरना हमारी कीर्ति पर कलंक लगेगा।'

युग-सत्य यह है कि नमक खाकर निभाना इक्कीसवीं सदी का दस्तूर नहीं है। यों भी संसार में दु:ख, दर्द, पीड़ा का कौन ऐसा अभाव है कि किसी सिट्टई-सियापे की महारतवाले व्यक्ति की जरूरत वक्त की माँग हो? यह तो वैसा ही क्रूर मजाक हुआ कि 'रशियन' आक्रमण के फलस्वरूप यूक्रेन में फँसे भारतीयों को सुरक्षित वापस लाने के 'गंगा मिशन' की कोई आलोचना करे कि 'सरकार ने राहत तो दी, पर छात्रों की वापसी में देर कर दी? दुखी व्यक्ति के परिवारों की पीड़ा से इस पत्थर-दिल सरकार का वास्ता ही क्या है?'

कुछ ऐसे बुद्धि के जीव ऐसे भी हैं, जिनका पूर्णकालीन पेशा ही सरकार को कोसना है। उनकी हार्दिक इच्छा है कि उनकी हमदर्दी प्रगति शील विचारोंवाली सरकार आए जो उन्हें पद, प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्रदान करे। पर दुखद है कि उन पर कृपालु दल इधर वर्षों से सत्ताहीन है। जाहिर है कि उसके नेताओं को आदतन वह भले 'सर' 'सर' करते रहें, पर 'कार' वाला कारगर पद देना अब उनकी सामर्थ्य में नहीं है। लिहाजा, ऐसे निराश बुद्धिजीवियों का कर्तव्य और अधिकार दोनों, उन्हें सरकार की आलोचना को प्रेरित करते हैं। 'ऐसे उपेक्षित, सरकार की खामी नहीं निकालें तो क्या कोरस के समवेत स्वर में उसके गुण गाएँ?'

कुछ ऐसे बुद्धि के जीव ऐसे भी हैं, जिनका पूर्णकालीन पेशा ही सरकार को कोसना है। उनकी हार्दिक इच्छा है कि उनकी हमदर्दी प्रगति शील विचारोंवाली सरकार आए जो उन्हें पद, प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्रदान करे। पर दुखद है कि उन पर कृपालु दल इधर वर्षों से सत्ताहीन है। जाहिर है कि उसके नेताओं को आदतन वह भले 'सर' 'सर' करते रहें, पर 'कार' वाला कारगर पद देना अब उनकी सामर्थ्य में नहीं है। लिहाजा, ऐसे निराश बुद्धिजीवियों का कर्तव्य और अधिकार दोनों, उन्हें सरकार की आलोचना को प्रेरित करते हैं। 'ऐसे उपेक्षित, सरकार की खामी नहीं निकालें तो क्या कोरस के समवेत स्वर में उसके गुण गाएँ?'

हमारे तथाकथित बुद्धिजीवी ने हमें यह भी दिलासा दिया कि मच्छरों का आधिक्य गरमी के दिनों और गंदगी में ही पाया जाता है। हम उन्हें ज्ञान देने का यह अवसर भला क्यों गँवाते? हमने उन्हें यह सूचित करने की धृष्टता की—"क्या इस देश में ग्रीष्म के अलावा और कोई ऋतु भी पधारती है? शीत की ऋतु कतई अल्पकालीन है। बरसात की उमस गरमियों की ही याद दिलाती है।"

इस मौसम की बाढ़ हो या सूखा, सब गंदगी और मच्छर के जनक हैं। बारिश हुई तो नालियाँ ऐसी उफनती हैं कि सड़कें घेरने में समर्थ हैं। देश के कुछ शहर ऐसे भी हैं जहाँ नदी नहीं है, उफनाती नालियों का पानी दिखाकर, माँ-बाप, अपनी लाड़ली संतान को भूगोल की शिक्षा देते हैं—"यह घर के सामने जो तुम्हें बहता हुआ मटमैला पानी दिख रहा है, इसी को नदी कहते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय नदियों की कैसी दुर्दशा है। उनकी सफाई के मिशन का अधिकतर पैसा सरकार के इंजीनियर-प्रशासक-बाबू, ठेकेदार आदि की जेबों की शोभा बढ़ाकर समाजवाद ला रहा है और नदी है कि जस-की-तस है।

इसे भ्रष्टाचार कहना निहायत नाइनसाफी है। यह केवल बेरोजगार मजदूरों-मैसन वगैरह को सतत रोजगार देने की चार पाँच दशक चलनेवाली लाभदायक योजना है। कौन कहे, अपने जीवनकाल तक नदियों का कायाकल्प हो न हो? आदमी नश्वर है और भूख-गरीबी, बीमारी, प्राकृतिक आपदा आदि अजर-अमर। कोरोना-काल के बारे में किसी ने सोचा भी था क्या? हमारे सारे ज्योतिषियों का भविष्य-ज्ञान धरा का धरा रह गया और यह तथाकथित चीनी चमगादड़ जनित-रोग, लाखों का जीवन ले डूबा।

हमारे बुद्धिजीवी मित्र दूसरों की नहीं सुनते हैं। कौन कहे यह बुद्धि के सारे जीवियों की समान सिफत हो? हमारी हर बात अनसुनी करते, उन्होंने एक चाय सुड़ककर, दूसरी का ऑर्डर दिया। जेब से पैकेट निकालकर उन्होंने सिगरेट सुलगाई और धुएँ के छल्ले निकालते, उनके यात्रा-चिंतन में गुम हो गए। कौन कहे, सैकड़ों साल पूर्व शून्य की खोज किसी भारतीय मनीषी ने इसी अंदाज में की हो? यकायक वह अपने छल्ला-मनन से जैसे जागे और कोई नई अवधारणा की शैली में हमें सुनाने लगे, "आपसे चर्चा कर हमें ध्यान आया कि मच्छर बिल्कुल भारत के आम आदमी के समान हैं।" "वह कैसे?" हमने जिज्ञासा प्रगट की।

उनका पूरा कहा तो हमारी क्षीण स्मृति का शिकार हो गया, पर जो कुछ याद है वह इस प्रकार है। आम आदमी से आशय भारत के उस सामान्य व्यक्ति से है, जो मेहनत-मशक्कत कर, बमुश्किल दो जून की रोटी जुटा पाता है। आर.के. लक्ष्मण के कार्टून के समान यह देश का 'कामन मैन' है। भारतीय चुनाव में नेताओं का असली भाग्य-विधाता यही है। इसी के वोट से वह चुनाव जीतते-हारते हैं। हमने उनके साँस लेने के लिए रुकने पर प्रश्न पूछा कि इस गरीब को आम आदमी क्यों कहते हैं? उन्होंने हमें चुप करते हुए कहा कि यह एक गरीब देश का प्रतिनिधि व्यक्ति है। देश निर्धनों की श्रेणी में आता है, क्योंकि यहाँ आम अर्थात् निर्धन व्यक्तियों का बाहुल्य है। टाटा, बिरला, बजाज, मुंजाल, अडानी, अंबानी जैसे व्यक्ति खास हैं। उनके जैसे लोग अपने धंधों, कल-कारखाने, निर्माण आदि के क्षेत्र में, रोजगार देकर, इस धनहीन आदमी की रोजी-रोटी का प्रबन्ध करते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसे धनी व्यक्ति खास हैं और गरीब आम। सरकार भी इन विशेष व्यक्तियों का विशेष खयाल रखती है वरना शासक दल का चुनावी फंड कैसे भरे? देखने में आया है कि धनपति हर दल को नियम से दान-दक्षिणा देते रहते हैं। इसीलिए सरकार किसी भी दल की हो, चलती इन गिने-चुने धनपतियों की ही है। यहाँ भी विरोधाभास है। दलों को जिताने-हराने के जिम्मेदार यही आम आदमी है, सरकार को

सफल-असफल बनाने के धनपति।

मच्छर के समान आम आदमी भी लगातार भिन-भिन करते रहते हैं। कभी व्यवस्था के खिलाफ कभी अपने ठेकेदार के खिलाफ तो कभी गुमशुदा जनप्रतिनिधि के विरुद्ध। उन्हें सबसे शिकायत है। सरकार ने 'पौआ' इतना महँगा कर दिया है, ठेकेदार उन्हें रोजाना काम देने में आनाकानी ही नहीं करता, कभी कभार तो घर भी बिठाल देता है। जनप्रतिनिधि कभी आया भी तो सुरक्षाकर्मी और कभी बिचौलिए कभी 'पूजा', कभी 'मीटिंग' में हैं कहकर उसे टरका देते हैं। उनसे मिलकर वह यही शिकायत करना चाहता है कि चुनाव के पूर्व तो वह फ्री में 'दारू' का अमृत बँटवाते थे, कहाँ ठेके की दारू भी मँहगी कर दी है। कहते हैं कि चुनाव उसके जैसों के वोटों से जीता और उसी के सुकून का इकलौता सहारा भी उससे छीन लिया है। तब तो प्रत्याशी के खास बताते थे कि जिता दो इनको, अगर ठर्रा सस्ता नहीं किया तो नाम बदल देना। नाम तो बदल ही गया, उनके आगे माननीय जो लग गया, पर अब वह कहते हैं कि नशाबंदी लागू करेंगे, देश के हित में, गांधीजी के विचारों के अनुरूप।

सुना है कि विधायक के एक समर्थक 'सस्ता ठर्रा' बनाते हैं। वह तो चाहता है कि विधायकजी उसी का पता बता दें। यही कल्याण करें नेता जी। उसने विधायक के एक बिचौलिए से अपनी साध सुनाई तो उसने शाम को संबद्ध व्यक्ति को झुग्गी-बस्ती में भेजने का वादा किया। वह खुश था और संतुष्ट भी। उसे यकीन हो गया। विधायक मिले-न-मिले, पर उसके मन में कहीं-न-कहीं जन-कल्याण की भावना है। नहीं तो उसकी झुग्गी में बैठे-ठाले दारू का प्रबंध कैसे हो जाता?

जैसे मच्छर गंदगी व गरमी में पनपता है, वैसे ही देश का प्रजातांत्रिक ढाँचा आम आदमी पर। कहने को वह अनपढ़ है, उसे अक्षर-ज्ञान तक नहीं है, फिर भी वह पढ़े-लिखों से अधिक ज्ञानी है। वह जानता है कि उसका और देश का भला कौन सा नेता और दल करने में समर्थ है? वह गाँव में हो या शहर में, बुद्धिजीवियों से अधिक, नमक का हक अदा करने के प्रति सचेत है। किसने महामारी में उसका वाकई साथ निभाया और किसने इस कठिन समय में उससे सिर्फ जुबानी हमदर्दी जताई, वह इस तथ्य को समझता है। उसमें सहज ज्ञान है। बुद्धिजीवी निजी हित में भ्रमित हैं। वही उसका अंतर देश के भले की भावना से ओत-प्रोत है। वह भले जात से प्रभावित हो, पर उसे बोध है कि विकास की कोई जात नहीं है। यदि सड़क बने या पुल, उसका उपयोग सबके लिए है। उसमें जात या संप्रदाय की कोई भूमिका नहीं है। वह इस मूल तथ्य से परिचित है कि भले ही हिंदू-मुसलमान की पूजा-पद्धति अलग हो, दोनों इनसान हैं। इनसानों का भला-बुरा होना मुमकिन है। यह किसी संप्रदाय या जात का एकाधिकार नहीं है।

हम खुश है कि मुसल्सल कोशिशों के बाद ढाबे में अपने बुद्धिजीवी मित्र के साथ, कान में भिनभिन करते मच्छर को अपने हाथ की मुट्ठी में भरकर मारने में हमने सफलता हासिल की। हमें लगा कि निरंतर अभ्यास से हम मच्छर पर विजय प्राप्त करने में कामयाब हों? दूसरे दिन अखबार की खबर हमें थोड़ा उदास कर गई 'मिलावटी शराब से चार झुग्गीवासियों की मृत्यु।' कहीं इनमें वह आम आदमी भी तो नहीं है, जो सस्ती दारू की खोज में विधायक के करीबी की दारू को झुग्गी-बस्ती तक पहुँचने में मददगार था?

९/५, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

कविता

प्रकृति की ओर

• प्रीति कच्छल

व्यवसाय से सनदी लेखाकार (प्रैक्टिसिंग चार्टर्ड अकाउंटेंट), टैक्स गुरु पोर्टल पर कविताएँ व लेख प्रकाशित, इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया की पत्रिका में कविताएँ प्रकाशित, आकाशवाणी दिल्ली में कविता वाचक, विभिन्न विषयों पर अनायास ही लिखने वाली कविताओं की रचयिता।

आओ वापस चलो तुम,
प्रकृति की ओर साथियो।
समय की माँग आज ये,
पर्यावरण स्वच्छ बनाओ॥
आओ वापस चलो तुम···

जिस जगह पैर जाता,
पॉलीथिन प्लास्टिक पड़ी है।
आगे कोई तो आओ,
मिलकर आवाज उठाओ॥

चंदा भी रो पड़ा है,
धरती को क्या हुआ ये?
सँभलो अब तो मनुज तुम,
जागो खुद और जगाओ॥
आओ वापस चलो तुम···

प्रकृति बाहर कुछ नहीं है,
तथ्य तुम जान जाओ।
प्रकृति से रोग निवारण,
करो यह विश्व जागरण॥

प्रकृति निर्मित यह काया,
बाकी बेकार भाया।
अपना बस थोड़ा समय ही,
कर दो प्रकृति के नाम॥
आओ वापस चलो तुम···

वृक्ष तुम रोज लगाओ,
सींचो बगिया जीवन की।
ऑक्सीजन युक्त वातावरण से,
दूर करो बीमारी घर-घर की॥

हाथ पर हाथ धरकर,
बैठे तुम आज क्यों हो?
समय की माँग आज यह,
पर्यावरण स्वच्छ बनाओ॥
आओ वापस चलो तुम···

२१२, विज्ञापन लोक सोसाइटी,
मयूर विहार एक्सटेंशन, दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ९३५००४००००

क्रांति के महान् अग्रदूत : तात्या टोपे

● मनमोहन गुप्ता

क्रांति के महान् अग्रदूत तात्या टोपे का नाम सुनते ही हमारी आँखों के सम्मुख एक पराक्रमी, वीर, साहसी तथा चतुर व्यक्ति की चित्रावली अंकित हो जाती है। जिसके अंदर गुलामी के गहन अंधकार को आशा से आलोकित करने की क्षमता के अंकुर गर्भ में ही निर्मित हो गए थे। इसीलिए तो उस महान् व्यक्तित्व ने अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को इतना ऊर्जावान बना दिया था कि अंग्रेजी सामाज्य का सिंहासन हिलने लगा था। उस महान् क्रांतिकारी वीर ने दो वर्ष के क्रांतिकाल में लगभग डेढ़ सौ मोर्चों पर अंग्रेजी सेना से लोहा लिया था। इससे अंग्रेजी सेनानायिकों के हौसले पस्त हो गए थे।

संग्राम के सम्मुख इन्हें कैसी भी विकट स्थिति का सामना करना पड़ा हो। उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा था। इनका अदम्य साहस हमेशा ही अडिग रहता था। इसीलिए तो एक अंग्रेज लेखक ने इन्हें इटली के स्वातंत्र्य-सेनानी गेरीबाल्डी की उपमा दे डाली थी। मराठी लेखकों ने तो इन्हें 'शिवाजी की परंपरा का अंतिम सेनानी' माना था। इसमें कोई संदेह नहीं है, सन् १८५७ ई. के समरावकाश में वे एक देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में प्रकट हुए थे, जिसमें तात्या टोपे की तेजस्विता अत्यंत प्रभावशाली प्रतिभा के साथ उद्‌भासित हुई थी। मराठों की रणनीति 'गनीमीकावा' अर्थात् छापामार प्रणाली का इस महान् क्रांतिकारी सेनानी ने अत्यंत कुशलता एवं सफलता से उपयोग किया था। इतिहास में तात्या टोपे के सम्मुख छापामार प्रणाली के सभी निपुण पराजित हो गए थे। इस प्रकार तात्या टोपे के सानी का ढूँढ़ निकालना सहज-सुलभ नहीं। अनेक पराजयों का मुँह देखने के उपरांत भी यह वीर हमेशा अजेय रहा था।

तात्या का जन्म अहमदनगर जिले के येवला नामक गाँव में एक देशस्थ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता पांडरंग 'भट' श्रुति और स्मृति के विद्वान् थे। 'भट' शब्द उनके नाम के साथ जोड़ा जाता है, जो महाराष्ट्र में पुरोहित का काम करते हैं। तात्या की जन्मतिथि के संबंध में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है। और न ही कोई ऐसा ऐतिहासिक आधार भी मिलता है, जिसके बल पर तात्या की जन्मतिथि का निश्चय किया जा सके। तत्कालीन कागजात में इधर-उधर से जब कुछ ऐसी बातों का उल्लेख मिल जाता है, जिसके आधार पर उनके जन्म-वर्ष का अनुमान निर्धारित किया जा सकता है। श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर के अनुसार 'नाना साहब और उनके साथियों को गिरफ्तार करने के लिए सन् १८५८ में अंग्रेजों ने क्रांतिकारियों की एक सूची उनके हुलिया के साथ प्रकाशित की थी। जिसमें तात्या की आयु ४२ वर्ष की लिखी गई थी। उसके आधार पर तात्या का जन्म सन् १८१६ में होना चाहिए।

'तात्या' शब्द के संदर्भ में उल्लेख है कि मराठी भाषा में 'तात्या' अपने से बड़ों और श्रद्धास्पद व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया जाता है।

तात्या की माँ का नाम रुकमाबाई था। तात्या इनके ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका वास्तविक नाम रामचंद्र था। इनसे दो वर्ष छोटे गंगाधर थे। गंगाधर ही रामचंद्र को अपने बड़े भाई होने के कारण उन्हें 'तात्या' कहकर संबोधित करते थे। बस तभी से यह रामचंद्र के स्थान पर 'तात्या' के नाम से विख्यात हो गए थे। जब बाजीराव पेशवा पूना का राज्य अंग्रेजों को सौंपकर ब्रह्मावर्त आए तो अनेक आश्रित कुटुंब भी उनके साथ आए थे। उनमें तात्या का परिवार भी था। बाजीराव ने ब्रह्मावर्त आते ही तात्या के पिता को अपनी यज्ञशाला तथा धार्मिक विभाग का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया था।

तात्या अपने पिता के साथ बाजीराव पेशवा के महल में जाते थे। बाजीराव के अपना कोई पुत्र नहीं होने के कारण वह बच्चों को बहुत प्यार करते थे। तात्या इसी कारण उनके अधिक लाड़ले हो गए थे। बाजीराव ने नानासाहब को गोद ले रखा था। वह तात्या से दस वर्ष बड़े थे। पर उन दोनों में अधिक घनिष्ठता हो गई थी। इसीलिए आपस में बालसखा के रूप में एक-दूसरे के और नजदीक हो गए थे। साथ-साथ अध्ययन करना और खेलना उनकी दिनचर्या बन गई थी। जब मोरोपंत तांबे अपने स्वामी चिमाजी अप्पा की मृत्यु के बाद काशी से ब्रह्मावर्त आए तो अपनी पुत्री मनू को भी साथ लाए थे। मनू भी बाजीराव पेशवा की लाड़ली

छबीली बिटिया बन गई थी। उसका भी लालन-पालन ब्रह्मावर्त के महल में नानासाहब उनके भाइयों और तात्या के साथ-साथ ही हुआ था। यही मनू आगे चलकर इतिहास में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में प्रेरणा की स्रोत बनकर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई कहलाई थी।

सन् १८५७ की प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की अग्रणी पंक्ति में ये तीनों महान् क्रांतिकारी ही थे। उनमें नानासाहब, तात्या और महारानी लक्ष्मीबाई के नाम बड़ी श्रद्धा और सम्मान से लिये जाते हैं।

तात्या के कुटुंब का नाम 'टोपे' कैसे पड़ा? इस संबंध में श्रीनिवास बालाजी हार्डीकर ने अपनी पुस्तक 'तात्या टोपे के प्रारंभिक जीवन-प्रसंग' में पृष्ठ-६ पर इस प्रकार किया है—'बिठूर स्थित टोपे कुटुंब का कहना है कि उनके कुल का यह कोई परंपरागत नाम नहीं है। उससे पूर्व इस कुटुंब को 'येवलेकर' के नाम से जाना जाता था। बाजीराव के शासन काल में ही इसे 'टोपे' नाम दिया गया था।'

एक बार बाजीराव तात्या के किसी वीरता तथा साहसपूर्ण कार्य से अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे अनेक रत्नों से जड़ित एक टोपी बनवाई थी। वह इनाम के तौर पर उन्होंने तात्या को दी थी। यह टोपी बिल्कुल अप्रचलित नवीन ढंग की टोपी थी। तात्या के प्राचीन चित्र में यही टोपी उनके सिर पर दिखाई देती है।

जब तात्या ने यह रत्नजड़ित टोपी पहनी तो बाजीराव बहुत प्रसन्न हुए थे। उन्होंने उसे 'टोपी' कहकर पुकारा था। तभी तात्या का कुटुंब 'टोपी' के नाम से जाना जाने लगा था। अंग्रेजी लेखकों ने सरकारी कागजात में उसका उल्लेख 'तातिया टोपी' के नाम से ही किया है। विष्णु पंत गोड, जिन्होंने सन् १८५७ की क्रांति की अनेक घटनाओं को ग्वालियर, झाँसी, कालपी आदि स्थानों में प्रत्यक्ष देखा था, अपने ग्रंथ 'माझा-प्रवास' में उन्हें तात्या टोपी ही लिखा है। ठीक इसी तरह, मराठी के सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो. नारायण केशव बेहरे ने सन् १९२७ में प्रकाशित होनेवाले अपने ग्रंथ 'सन् १८५७' में भी तात्या टोपी ही लिखा है। इनका कुटुंब अपने आपको 'टोपे' ही कहता था। इस प्रकार 'टोपी' से 'टोपे' हो जाना काल की गति के अनुसार परिवर्तित हो गया था।

पेशवा बाजीराव के परिवार से तात्या टोपे की इतनी घनिष्टता हो गई थी कि यह पेशवा कुटुंब के ही एक सदस्य बन गए थे। बाजीराव पेशवा उनसे बहुत स्नेह रखते थे। इसीलिए तात्या टोपे भी उन्हें अपने पिता के समान मानते थे। कहा जाता है कि बाजीराव पेशवा के परलोक गमन के शोक से पीड़ित होकर तात्या टोपे ने एक बार तो आत्महत्या करने का प्रयास भी गंगा में कूदकर किया था। लेकिन ईश्वर के यहाँ से आमंत्रण नहीं था, इसलिए रुग्ण शय्या पर पड़े रहकर उन्होंने अपनी अंतिम साँस ली थी।

तात्या टोपे की मृत्यु के संदर्भ में इतिहासकार लिखते हैं कि अंग्रेजों ने वास्तविक साक्ष्य मिटा दिए। तात्या टोपे ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में जोरदारी से भाग लेकर सच्ची देशभक्ति का परिचय दिया था। अंग्रेजों के दस्तावेजों के अनुसार ७ अप्रैल, १८५८ ई. को तात्या टोपे को गिरफ्तार किया गया। उस समय इनके पास एक घोड़ा, एक तलवार, एक खुखरी सोने के तीन कड़े तथा ११८ सोने की मुहरें थीं। इनमें से २१ मोहरें उन

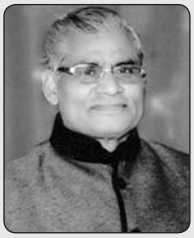

सपरिचित कहानीकार, कवि एवं समीक्षक। दो कहानी-संग्रह, दो कविता-संग्रह तथा राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ निरंतर प्रकाशित। राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी जयपुर तथा हिंदी की अग्रणी संस्था साहित्य मंडल श्रीनाथद्वारा (राजसमंद) से 'ब्रजभाषा काव्य विभूषण' उपाधि से सम्मानित।

सिपाहियों को इनाम के बतौर दी गई थीं, जो उनकी गिरफ्तारी के समय उपस्थित थे।

अंग्रेजों के दस्तावेजों के अनुसार १८ अप्रैल को सायंकाल ७ बजे 'तात्या' को फाँसी के मैदान में लाया गया। फाँसी के चबूतरे के चारों ओर अंग्रेजी सेना खड़ी थी। अंग्रेज अफसर मीड ने आरोपों को पढ़ा तथा दंड सुनाया। इसके बाद उनकी बेड़ियाँ काट दी गईं। वीरता के साथ दृढ़तापूर्वक कदम आगे बढ़ाते हुए वे फाँसी के तख्ते की सीढ़ियों पर चढ़े थे। उन्होंने स्वेच्छा से फाँसी का फंदा गले में डाला था। नीचे का तख्ता खिंचने पर थोड़ी सी तड़फन के पश्चात् इस देशभक्त वीर के शरीर से आत्मा परलोक गमन कर गई थी। निर्जीव शरीर फाँसी पर लटकता रहा। तात्या टोपे ने अत्यंत वीरता और साहस से मृत्यु का आलिंगन कर लिया था। अनेक अंग्रेज महिलाएँ भी फाँसी के मैदान में उपस्थित थीं। इस वीर-पुरुष की मृत्यु से उनकी आँखों में भी आँसू आ गए थे। यहाँ तक कि कुछ महिलाओं ने तो इनके बाल काटकर स्मृति-चिह्न के रूप में अपने पास ही रख लिये थे।

सेना के हटते ही उपस्थित जनसमूह उस देशभक्त की चरण रज लेने को उमड़ पड़ा था। कहा जाता है कि फाँसी के समय जो उन्होंने वस्त्र पहन रखे थे, वे आज भी ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में सुरक्षित हैं। उनके परिचय में लिखा है, "भारतीय विद्रोह के नेता तात्या टोपे का कोट, इसे १८ अप्रैल, १८५९ ई. को फाँसी दी गई।"

एक नए रहस्य का उल्लेख और मिलता है कि स्वयं तात्या टोपे के वशंज कहते हैं कि १८ अप्रैल, १८५६ ई. को शिवपुरी में जिसे फाँसी के तख्ते पर लटकाया गया था, वह तात्या टोपे नहीं था। कोई दूसरा ही देशभक्त था। इनके वंशज आज भी ग्वालियर और ब्रह्मावर्त में रहते हैं। उनके भतीजे श्री नारायण लक्ष्मण टोपे तथा भतीजी गंगूबाई का कहना है कि हम बचपन से ही कुटुंबियों से सुनते आए हैं कि कथित तात्या टोपे को फाँसी चढ़ जाने के बाद भी तात्या अकसर विभिन्न वेश में आकर अपने परिवारीजनों से मिलते रहे।

प्रमाण के तौर पर श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर अपनी पुस्तक 'तात्या टोपे', प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली के प्राक्कथन, पृष्ठ ९ के दूसरे गद्यांश में लिखते हैं—"लेखक को अपने बाल्यकाल में इस क्रांति की जन्मभूमि ब्रह्मावर्त (बिठूर) में उन वृद्धजनों से बातें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो उस क्रांतिकाल में जीवित थे तथा उनके स्मृति-पटल पर इससे संबंधित घटनाएँ अंकित थीं। तात्या टोपे के बड़े भाई विनायक

पांडुरंग टोपे तथा सदाशिव पांडुरंग टोपे के दर्शन का सौभाग्य लेखक को बचपन में मिला था।"

श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर ने लिखा है—"तात्या के पिता पांडरंग कथित तात्या के फाँसी चढ़ जाने के ४ महीने ७१ दिनों बाद, अर्थात् २७ अगस्त, १८५९ ई. को ग्वालियर के किले से, जब नजरबंदी के बाद मुक्त हुए तो आर्थिक स्थिति अत्यधिक खराब थी। टोपे के परिवारी जनों के अनुसार इस संकटकाल में तात्या वेश बदलकर अपने पिता से मिलने आए थे। उन्हें आर्थिक सहयोग देकर भी गए थे। जिससे उनके पिता ने रहने के लिए कच्चा मकान बनवाया था।"

सन् १८६१ ई. में दुर्गा बहिन की शादी पर तथा कुछ ही माह पश्चात् माता-पिता के निधन पर वे संन्यासी के वेश में उपस्थित हुए थे। ग्वालियर में निवास करनेवाले श्रीशंकर लक्ष्मण टोपे का कहना है कि जब वह १३ वर्ष के थे तो एक बार उनके पिता लक्ष्मण, जो विमाता के पुत्र थे, रुग्णावस्था में उनसे मिलने साधु के वेश में आए थे। तब उनके पिता ने मुझ से कहा था—"यह तात्या है, इन्हें नमस्कार करो।" उस समय श्रीशंकर की अवस्था ७५ वर्ष की थी। उनके कथनानुसार यह घटना सन् १८९५ ई. के आस-पास की है। अर्थात् कथित तात्या टोपे की फाँसी के ३६ वर्ष बाद की।"

तात्या टोपे फाँसी के तख्ते पर नहीं चढ़े थे। इसका समर्थन महारानी लक्ष्मीबाई के सैनिक अफसर एवं विश्वसनीय सहयोगी लालू बक्षी ने भी किया था। बख्शी के स्थान पर बक्षी लिखा जाना इसलिए उपयुक्त है, क्योंकि यह परिवार इसी तरह लिखता है।

वास्तविक तात्या टोपे को १८ अप्रैल, १९५९ ई. को सायंकाल ७ बजे के पश्चात् फाँसी पर शिवपुरी में लटकाया गया था या नहीं—इस संदर्भ में अनेक तथ्य हैं, उन्हें सीमित शब्दों की सीमा में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की क्रांति के महान् अग्रदूत अजेय तात्या टोपे को और उनके जीवन के आदर्श एवं देशभक्ति के गुणों को हम सभी अंगीकार करें। तभी राष्ट्रीय स्तर पर इस महान् क्रांतिकारी को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

गुप्ता सदन
एस.बी.के. गर्ल्स हायर सेकेंडरी स्कूल
के पास मंडी अटलबंद
भरतपुर-३२१००१
दूरभाष : ६३७८२६२३२५

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

प्रभात

नए प्रकाशन

- **परिवर्तनशील विश्व में भारत की रणनीति** एस. जयशंकर 600.00
- **जोखिम भरे हस्तक्षेप** हरदीप सिंह पुरी 500.00
- **पदचिह्न बुलाते हैं** देवेंद्र स्वरूप 600.00
- **नेपाल का संवैधानिक विकास** डॉ. राकेश कुमार मीणा 600.00
- **मेरा रंग दे बसंती चोला** मलविंदर जीत सिंह वड़ैच 600.00
- **कांग्रेस मुक्त भारत** अमित बगड़िया 600.00
- **नेहरू की 125 ऐतिहासिक गलतियाँ** रजनीकांत पुराणिक 900.00
- **स्वामी विवेकानंद का युवा जागरण** किशोर मकवाणा 600.00
- **गांधी और इस्लाम** अब्दुलनबी अलशोला 500.00
- **POK भारत में वापस** अमित बगड़िया 400.00
- **हिंदू धर्म की धरोहर : भारतीय संस्कृति** संजय राय 'शेरपुरिया' 500.00
- **आधी रात कोई दस्तक दे रहा है** के.आर. मल्कानी 300.00
- **भारतीय संविधान : अनकही कहानी** रामबहादुर राय 1100.00
- **नक्सलियों के बीच मेरे बीते दिनों की रोमांचक गाथा** अल्पा शाह 700.00
- **खालिस्तान षड्यंत्र की इनसाइड स्टोरी** जी.बी.एस. सिद्धू 500.00
- **वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु के महान् विचार** सावन कुमार बाग/मेहेर वान 300.00
- **आपका सबसे अच्छा दिन आज ही है** अनुपम खेर 500.00
- **माइंड मास्टर** विश्वनाथन आनंद, सूज़न नैनन 700.00
- **लोकतंत्र, राजनीति और धर्म** ए. सूर्य प्रकाश 400.00
- **मोपला कांड** विनायक दामोदर सावरकर 250.00
- **नेपोलियन हिल के महान् भाषण** नेपोलियन हिल 250.00
- **ध्येय यात्रा (2 खंड)** सं. मनोजकांत/प्रदीप राव/उमेंद्र दत्त 999.00
- **चलते-चलते** सुरेश चव्हाणके 600.00
- **मनु की दृष्टि से हिंदू समाज** चित्रा अवस्थी 300.00
- **भारत-चीन रिश्ते : ड्रैगन ने हाथी को क्यों डसा** रंजीत कुमार 500.00
- **नेहरू की 127 ऐतिहासिक गलतियाँ** रजनीकांत पुराणिक 750.00
- **काले पानी की कलंक कथा** एस.के. नारंग 300.00
- **विनाशपर्व** प्रशांत पोल 250.00
- **अग्निपथ से न्यायपथ** देवकी नंदन गौतम 500.00

- **राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भारतीयता का पुनरुत्थान** सं. अतुल कोठारी 400.00
- **नए भारत की नींव : राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020** अवनीश कुमार सिंह 450.00
- **आचार्य चतुरसेन की लोकप्रिय कहानियाँ** आचार्य चतुरसेन 400.00
- **जैनेंद्र कुमार की लोकप्रिय कहानियाँ** जैनेंद्र कुमार 400.00
- **पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की लोकप्रिय कहानियाँ** पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' 400.00
- **सुभद्रा कुमारी चौहान की लोकप्रिय कहानियाँ** सुभद्रा कुमारी चौहान 400.00
- **कमलेश्वर की लोकप्रिय कहानियाँ** कमलेश्वर 400.00
- **मन्नू भंडारी की लोकप्रिय कहानियाँ** मन्नू भंडारी 400.00
- **शिवप्रसाद सिंह की लोकप्रिय कहानियाँ** शिवप्रसाद सिंह 400.00
- **शैलेश मटियानी की लोकप्रिय कहानियाँ** शैलेश मटियानी 400.00
- **रूपसिंह चंदेल की लोकप्रिय कहानियाँ** रूपसिंह चंदेल 400.00
- **कोंकणी की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. ज्योती कुंकलकार 400.00
- **उर्दू की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. शैख अकील अहमद 400.00
- **असमीया की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. महेंद्र नाथ दुबे 400.00
- **बांग्ला की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. महेंद्र नाथ दुबे 400.00
- **सिंधी की लोकप्रिय कहानियाँ** सं. रविप्रकाश टेकचंदानी 400.00
- **शेरलॉक होम्स की डिटेक्टिव स्टोरीज** सर आर्थर कॉनन डायल 400.00
- **शेरलॉक होम्स की बेस्टसेलर कहानियाँ** सर आर्थर कॉनन डायल 400.00
- **ब्योमकेश बक्शी की रोमांचकारी कहानियाँ** सारदेंदु बंद्योपाध्याय 400.00
- **ब्योमकेश बक्शी की जासूसी कहानियाँ** सारदेंदु बंद्योपाध्याय 500.00
- **लोकप्रिय जासूसी कहानियाँ** सं. भविष्य कुमार सिन्हा 400.00
- **21 अनमोल कहानियाँ** प्रेमचंद 400.00
- **31 अमर कहानियाँ** प्रेमचंद 400.00
- **एक रोमांचक कहानी कोरोनाकाल की** अजय मोहन जैन 200.00
- **जादुई बाल कहानियाँ** सत्यजित रे 300.00
- **काले पानी की कलंक कथा** एस.के. नारंग 300.00
- **आजादी @ 75 : क्रांतिकारियों की शौर्यगाथा** विवेक मिश्र 500.00
- **ऑपरेशन योद्धा** सुशांत सैनी 500.00
- **पुलवामा अटैक** विकास त्रिवेदी/स्मिता अग्रवाल 350.00
- **भारत-चीन LAC टकराव** मुकेश कौशिक 300.00
- **भारत के जाँबाज** लेफ्टिनेंट जनरल सतीश दुआ (सेवानिवृत्त) 500.00
- **ऑपरेशन खुकरी** मेजर जनरल राजपाल पूनिया/दामिनी पूनिया 600.00
- **कारगिल गर्ल** फ्लाइट लेफ्टिनेंट गुंजन सक्सेना 500.00
- **कुछ अनसुनी फौजी कहानियाँ** रचना बिष्ट रावत 400.00
- **कारगिल : एक यात्री की जुबानी** ऋषि राज 300.00
- **भारत-इजराइल संबंध** परशुराम गुप्त 400.00
- **कलियुग सर्वश्रेष्ठ है** महायोगी स्वामी बुद्ध पुरी 250.00
- **त्रिशूलधारी** सत्यम् 500.00

मूर्ति-भंजन	क्षमा कौल	500.00
कोविड-19, जिंदगी-20	मृदुला सिन्हा	400.00
अथ श्रीमहाभारत कथा	शुभांगी भडभडे	500.00
अरण्य आदिम	तरुणकांति मिश्र	400.00
हसनपुर के राम	डॉ. परशुराम गुप्त	400.00
फिर जीते श्रीराम	बलबीरसिंह 'करुण'	350.00
लॉकडाउन की रिपोर्टर	इंदीवर	500.00
लव इन लखनऊ	पार्थ सारथी सेन शर्मा	250.00
वेदांत व जीवन प्रबंधन	विक्रांत सिंह तोमर	250.00
S.I.P. के चमत्कार से Financial Freedom कैसे पाएँ?	महेश चंद्र कौशिक	300.00
धरती-पुत्र भैरों सिंह शेखावत	बहादुर सिंह राठौड़	300.00
राष्ट्रनायक नरेंद्र मोदी : राष्ट्रवाद से समाजवाद की ओर	उषा विद्यार्थी	400.00
महापराक्रमी महाराणा प्रताप	आचार्य मायाराम 'पतंग'	300.00
बैड मैन : एक आत्मकथा	गुलशन ग्रोवर/रोशमिला भट्टाचार्या	450.00
पाप और प्रायश्चित	संजय भारती	250.00
मैं शबरी हूँ राम की	उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'	300.00
आधुनिक भारत के दिवंगत गणितज्ञ	वीरेंद्र कुमार	750.00
सदियों का सयानापन	सं. संजीव शाह	300.00
जीवन की भेंट	सं. संजीव शाह	350.00
बिहार के 25 महानायक	अशोक कुमार सिन्हा	400.00
म्यूचुअल फंड में Investment द्वारा मुनाफा कैसे कमाएँ	डॉ. योगेश शर्मा	300.00
अभिशप्त	डॉ. किसलय पांडेय	250.00
स्माइल	संदीप कुमार यादव	250.00
जेम्स वाट	गोपीकृष्ण कुँवर	250.00
रामायण से स्टार्टअप सूत्र	प्राची गर्ग	250.00
पक्षद्रोह	प्रदीप पांडेय	250.00
रवींद्र गीता	रवींद्र जैन	200.00
कोविड रामायण	माधव जोशी	750.00
चाणक्यमेंट	चद्रेंश मकवाणा	400.00
चाणक्य से सीखें सफलता के सीक्रेट्स	ए.के. गांधी	250.00
क्लासरूम में चाणक्य	महेश दत्त शर्मा	300.00
कैलास-मानसरोवर	राजीव गुप्ता	500.00
अर्थात् राष्ट्रवाद	नीरजा माधव	400.00
फिर से जिंदगी	धीरा खंडेलवाल	200.00
रहिमन पानी राखिए	मृदुला सिन्हा	400.00
प्रियतमा	फनी महांति	200.00
सबके राम	डॉ. प्रवेश कुमार/राजीव गुप्ता	300.00
महाभारत रिसता है	डॉ. सत्यभामा	300.00
शेयर Investment हैंडबुक	सी.ए. विक्रम नरसरिया	400.00
शेयर मार्केट में रु. 10,000 की इन्वेस्टमेंट से रु. 100 करोड़ कैसे कमाएँ	श्याम सुंदर गोयल	250.00
इन्वेस्टोनॉमी : अमीर बनने की स्टॉक मार्केट गाइड	प्रांजल कामरा	300.00
ऑप्शन ट्रेडिंग से पैसों का पेड़ कैसे लगाएँ	महेश चंद्र कौशिक	250.00
लिमिटलेस	जिम क्विक	500.00
इकीगाई	राज गोस्वामी	400.00
नौकरी नहीं, Business आइडिया ढूँढ़ो	एन. रघुरामन	200.00
बिजनेस में Success की चाबी है Technology	एन. रघुरामन	200.00
स्टार्टअप हो तो ऐसा हो	एन. रघुरामन	200.00
गुड वाइब्स, गुड लाइफ	वेक्स किंग	600.00
एलन मस्क के सक्सेस सीक्रेट्स	रैंडी किर्क	400.00
बिल गेट्स के मैनेजमेंट सूत्र	प्रदीप ठाकुर	250.00
वॉरेन बफे के इन्वेस्टमेंट लेसंस	प्रदीप ठाकुर	250.00
10 महान् व्यक्तियों के 100 महान् विचार	स्वाति गौतम	350.00
25 टॉप Motivators के Inspiring विचार	स्वाति गौतम	600.00
व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास	स्वामी विवेकानंद	300.00
पर्यावरण बचाने के लिए 31 अच्छी-अच्छी आदतें	रोहित मेहरा, IRS	250.00
एक IAS Aspirant की रोमांचक सक्सेस स्टोरी	पीयूष रोहनकर	300.00
द पावर ऑफ योर सब्कॉन्शस माइंड	जोसेफ मर्फी	250.00
द पावर ऑफ पॉजिटिव थिंकिंग	नार्मन विंसेंट पील	350.00
सफल और अमीर बनने के 16 सीक्रेट्स	नेपोलियन हिल	250.00
क्या आप अमीर बनना चाहते हैं?	नेपोलियन हिल	250.00
Mastermind और सफलता	नेपोलियन हिल	250.00
वैदिक गौ विज्ञान	सुबोध कुमार	400.00
शादी का लड्डू	चैताली हातीसकर	400.00
यायावर शब्दशिल्पी पं. बनारसीदास चतुर्वेदी	सं. आशुतोष चतुर्वेदी	350.00
टोक्यो ओलंपिक के खिलाड़ियों की प्रेरक कहानियाँ	दिलीप कुमार	250.00
मानस में लौकिक ज्ञान	एस.के. गुप्ता	400.00

प्रभात प्रकाशन
नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा
इ-मेल : prabhatbooks@gmail.com
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23257555
हेल्पलाइन नं. 7827007777

बिना पूर्व-सूचना के मूल्यों में परिवर्तन किया जा सकता है।

प्रेम की पीर

● हरीश नवल

'प्रेम एक विराट् साझेदारी का नाम है। जहाँ दोनों हर वस्तु, तत्त्व या विचार साझा करना चाहते हैं, दो जिस्म मगर एक जान का महसूसना इसमें इसे और पल्लवित करता है। इसमें स्पर्श बहुत अनुभूतिपरक होता है। ऐसा प्यार करनेवाले अनिवार्यत: एक-दूसरे के स्पर्श के इच्छुक रहते हैं। मिलन की स्थिति में दोनों के मन में विश्वास और आस्था की अविरल धारा बहती है। एक-दूसरे को किसी और की तुलना में अपना प्रेम तथा प्रेमिका ही सर्वोपरि लगते हैं। घनिष्ठता उन्हें एक दूजे को व्यक्तिगत संपत्ति की तरह लगने लगते हैं। कह सकते हैं कि दोनों का अलग-अलग स्वातंत्र्य होते हुए भी एक मिश्रित स्वातंत्र्य निर्मित हो जाता है। इसीलिए यदि अपना प्रेमी या प्रेमिका किसी और में थोड़ी रुचि भी लेते हुए प्रतीत हो, मन आशंकित हो जाता है। यदि बार-बार ऐसा हो, अनजाने में ही ईर्ष्या की अग्नि सुलगने लगती है।

'यह एक ऐसा संबंध है, जिसमें दो प्राणी तन, मन और धन से भी एक होने की कल्पना या चाहत करते हैं। ऐसा प्रेम संबंध धर्म, जाति, रंग, देश और आयु नहीं देखता। कौन-कब किसी का कितना हो जाए, कहा नहीं जा सकता।'

यह सब रंजन सोच रहा था, उसकी विचार-शृंखला बड़ी होती जा रही थी, उसे रह-रहकर सुगंधा का कथन ध्यान आ रहा था। जब उसने फोन पर उससे कहा था कि 'तुम मेरी कमियाँ बताओ और मैं तुम्हारी कमियाँ बताऊँगी।'

दरअसल, जब से रंजन विदेश से लौटकर आया, उसे सुगंधा के अपने प्रति व्यवहार में बहुत अंतर नजर आ रहा था। विचित्र बात थी कि सुगंधा को भी रंजन के लौटने के बाद उसमें बहुत परिवर्तन दिख रहा था। प्रवास से पूर्व दोनों की सुबह एक-दूसरे को फोन पर लंबी-लंबी बातें करने से आरंभ होती थी। जाने प्रेमी हृदयों में कितने भाव, इतने विचार कहाँ से आते हैं, जो समाप्त नहीं हो पाते और वक्त की कमी हमेशा बनी रहती है।

सुपरिचित व्यंग्यकार। अब तक छह व्यंग्य-संकलन, तीन आलोचनात्मक पुस्तकें, नौ संपादित ग्रंथ और बावन ग्रंथों में सहयोगी रचनाकार के रूप में रचनाएँ प्रकाशित। एक हजार से अधिक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'बागपत के खरबूजे' पर युवा ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा तेरह राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक व्यंग्य अंग्रेजी, बल्गारियन, मराठी, उर्दू, बँगला, पंजाबी और गुजराती में भी अनूदित।

विदेश प्रवास में पूरे चार महीने सुगंधा से दूर रहने पर रंजन खिन्न मन रहने लगा। समय में दिन-रात का अंतर होने के कारण फोन पर बहुत कम बात हो पाती थी। एक बड़ा कारण यह भी था कि रंजन सपरिवार वहाँ था। परिवार के सामने बात होना कठिन था। पब्लिक फोन पर भी रंजन ने पाँच-छह रातों को कोशिश की, मुश्किल यह थी कि देर रात यदि फोन करें, तभी भारत में दिन के समय फोन मिलता था। चुपचाप लोंग कोट पहन सिर पर टोपी लगा ठंडी रातों में रंजन ने चोरों की तरह घर से निकलकर दूर मार्किट में लगे पब्लिक फोन को मथा था, परंतु देर से सोने और देर से जागनेवाली सुगंधा अकसर फोन ही न उठाती, क्योंकि यह समय उसका नींद का होता था।

सुगंधा के जन्मदिन पर सबसे पहला फोन करने के लिए रंजन ने बाकायदा योजना बनाई और सफल भी हुआ, सुगंधा ने फोन उठाया भी, शुभकामनाओं के लिए धन्यवाद भी दिया, परंतु शीघ्र ही वह भूल गई थी कि जन्मदिन पर वह पहला फोन रंजन का ही था। इसका भान रंजन को बहुत बाद में हुआ था और वह उदास हो उठा था।

विदेश से लौटकर रंजन ने सुगंधा से मिलने के कार्यक्रम कई बार बनाए, पर बने नहीं। उसने कुछ उपहार सबसे छिपाकर अपनी अटैची में रखे थे, जिन्हें वह जल्द-से-जल्द अपनी प्रिया को देना चाहता था। उपहार दिए भी गए, परंतु ग्रहणकर्ता में उसने उत्साह की कमी पाई बल्कि

एक उपहार लौटा भी दिया यह कहते हुए कि वह उसे पसंद नहीं है।

इससे पहले के जन्मदिन के दो अवसरों पर रंजन खोजबीन कर जो उपहार लाया था, उन्हें सुगंधा ने बड़ी हार्दिकता से ग्रहण किया था। जहाँ तक हार्दिकता की बात है, ऐसा निर्मल हृदय रंजन ने पहली बार ही देखा था, इतने पावन विचार, सौम्यता, शालीनता और भारतीयता की प्रतिमूर्ति के रूप में उसने सुगंधा को पाया था।

जिस किसी दिन विलंब से फोन आता है, रंजन को उलाहने सुनने पड़ते हैं, वह अतीव प्रसन्न था कि उसकी साथी उसके प्रति कितनी उच्च और आत्मीय भावना रखती है। कैसे भूल सकता है रंजन, सुगंधा अपने हाथ से खाना पका अपने ही हाथ से रंजन को खिलाती थी। यह उसके जीवन का विशिष्ट अनुभव था।

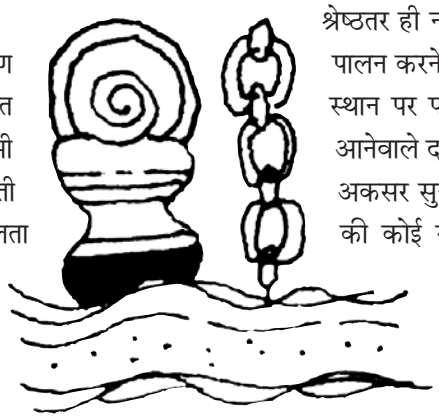

जब भी कभी रंजन और सुगंधा को एकांत के क्षण मिलते, दोनों खूब बतियाते, पुराने गाने सुनते, संगीत लहरियों के साथ-साथ कभी-कभी उनके कदम भी नृत्य करते और इसका चरम दोनों के शरीरों से उठती ज्वाला को एक-दूसरे के अंतरम स्पर्श से प्राप्त शीतलता से होता था। एक हजार दिनों के साथ ने दोनों को कभी इतना भटकने नहीं दिया कि वे एक-दूसरे में समा जाते। इतने एकांत, इतने सामीप्य और दिलों में उठते ज्वर ने काम प्रेरित तो किया, परंतु वासनावत् वे कभी एक-दूसरे के नहीं हुए।

रंजन को यद्यपि बहुत बार ऐसा लगा कि वह चरम क्षणों में सुगंधा में डूब जाए, परंतु वह हर बार अपनी दृढ़ता से और विशेष रूप से सुगंधा की पवित्रता और निश्छलता के कारण संसर्ग से स्वयं को दूर कर लेता था। भले ही कई-कई दिनों तक वह बेचैन होकर तड़प को किसी-न-किसी तरह सह लेता। सुगंधा ने भी कभी भी ऐसी इच्छा या कामना प्रदर्शित नहीं की कि वह रंजन को इसके लिए प्रेरित करती।

रंजन कई बार सोचता कि आज के इतने स्वच्छंद परिवेश में इतनी भरी-पूरी युवती जो प्राय: अकेली रहती है, जिसके पास अवसर-ही-अवसर हैं, पर कभी भी उन्हें मलिन नहीं बनाती, कितना ठहराव है उसमें, क्या उसके मन में ऐसे भाव नहीं उठते कि कोई, कोई क्यों स्वयं रंजन उसके साथ उसकी कामना की पूर्ति के लिए आगे बढ़े'''वह सोचता उसके चेहरे पर कभी लालसा या ऐसे ही भाव, जो स्त्री-पुरुष के अंतरम शारीरिक संबंधों की नई व्याख्याएँ करें, उसने नहीं देखे। उसने सुगंधा को सदैव शांत और निर्मल पाया, जबकि वह स्वयं तपने लगता था, उसके कानों तक में अग्नि-रश्मियाँ फूटती थीं, उसके रोम-रोम में लपटें कसमसाती थीं, वह अजीब किस्म की टीस और वेदना से भर-भर उठता था, परंतु सुगंधा वह मानो जैसे जानती ही न हो कि स्त्री-पुरुष के बीच ऐसा भी होता है अथवा होना चाहिए।

रंजन की आँखों के आगे ये तीन वर्ष सदैव वर्तमान रहते। कितना निर्मल आनंद और संतुष्टि की गहन प्रतीति उसे उसके होने का सार्थकपन बताती रही थी। उसकी साँचे में ढली सी काया खजुराहो की प्रतिमाओं की याद दिलाती थी। उसकी स्निग्ध मुस्कान पर वह सबकुछ न्योछावर कर सकता था। उसके सुंदर दंतावली से युक्त होंठ उसके नस-नस को प्रभावित करते हैं। वह स्वयं में रंजन को एक देवदूतिका ही लगती है। इतना सुंदर सुगढ़ शरीर तिस पर इतना सुंदर मन'''रंजन को वह अद्वितीया लगती है, कोई नहीं है उसके जैसा, वह अनुपम है। वह असाधारण है।

वह कहती है कमियाँ बताओ'''हाँ, सभी में कोई-न-कोई कमी तो होती ही है, पर उसमें कमियाँ, न बाबा रे न, कमियाँ तो नहीं हैं, बड़ी गहराई से उसके बारे में सोचते हुए रंजन निष्कर्ष निकालता है। हाँ, यदि उसमें थोड़ी चेतना के कुछ बिंदु उसके व्यक्तित्व से जुड़ जाएँ, वह श्रेष्ठतर ही नहीं श्रेष्ठतम भी हो सकती है, जैसे वह समय का पालन करने में अकसर चूक जाती है। नियत समय पर, नियत स्थान पर पहुँचने में उसे विलंब का कारण बनाते हैं उसके आनेवाले दर्जनों फोन, फोन पर देर तक लंबी बातें, जिनमें वह अकसर सुननेवालों को हिदायतें ही दे रही होती है या जीवन की कोई सीख, वह किसी का दिल नहीं तोड़ना चाहिए, इसीलिए हर व्यक्ति या हर वस्तु उसके लिए प्रेम और सम्मान का विषय है। वे जानती हैं, विलंब ने उसे निलंब किया है।

वह समाज सेवा में इतनी लीन हो जाती है कि अपने व्यक्तित्व को भूल जाती है, कोई भी उसे अपने किसी भी असली या नकली अभाव की बात करे, वह फौरन उसके भाव निर्माण में जुट जाती है।

उसका स्वभाव रंजन को बहुत परेशान करता है, उसके लिए सब एक जैसे हैं, इस भाव में रंजन बहुत लघु हो जाता है। फोन पर भी उससे बात करते हुए वह आस-पास गुजरनेवाले कई लोगों से साथ-साथ बात करती है। जिससे रंजन को लगता है, वह उसकी अवहेलना कर रही है।

सुगंधा परीक्षाओं में प्राप्त हुए अंकों की दृष्टि से प्रथम श्रेणी ही नहीं अपितु उच्चतम स्थान प्राप्त है। वे मेधावी है, वह प्रतिभाशाली है, परंतु बहुत से आवश्यक और अनावश्यक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण जिनमें फोन श्रवण और वाहन गमन तथा समाजसेवी भाव मुख्य हैं, के कारण अध्ययन के लिए समय नहीं निकाल पाती, अपने विषय के प्रति जितना श्रम एक श्रेष्ठ अध्यापक के लिए है, उतना वह कर नहीं पाती, परंतु फिर भी सब जगह, जिनमें शैक्षिक और बौद्धिक कार्य शामिल हैं, वहाँ उसका नाम आयोजकों में तथा प्रस्तुतकर्ताओं में अवश्य होता है। सभी की अपेक्षा उसकी छवि के कारण यही होती है कि वही सबकुछ कर सकेगी और वह करती भी है, परंतु रंजन ने पाया कि वह अपने मूल विचार को स्वयं कोशिश नहीं करती, दूसरों को चुनने में वह बेजोड़ है, उनके संपर्क में विभिन्न विषयों के बड़े संपन्न अधिकारी हैं, जो सुगंधा के लिए कुछ भी और कभी भी करने को तत्पर रहते हैं। सुगंधा के बीजों को वृक्ष बनानेवाले ज्ञानीजनों के फोन नंबर उसकी टेलीफोन निर्देशिका में भरे पड़े हैं। कमाल

है, सभी उसको उतना ही चाहते हैं जितना कि रंजन, सभी से वह उतना काम ले सकती है, जितना रंजन से, यानी रंजन उस सबमें एक है। यह स्थिति रंजन को मन से मंजूर नहीं। रंजन को वैसे भी चलने में समर्थ व्यक्ति को बैसाखियों का सहारा लेते देखना कभी भाता नहीं है।

रंजन के लिए अपनी वस्तु अपनी है और दूसरे की, भले ही वह उसका भाई, बहन, पत्नी या माँ ही क्यों न हो, की वस्तु अपनी नहीं है। जब वह सुगंधा को दूसरों की वस्तुएँ अपनाते हुए देखता है, उसे भीतर से कहीं कष्ट होता है, वह नहीं समझ सका कि कैसे सुगंधा दूसरों के वाहन से दूसरों द्वारा सैकड़ों किलोमीटर की यात्रा कर लेती है। उसे तकलीफ होती है, जब वह देखता है कि अपनी कार होते हुए भी वह दूसरे की कार को एक लंबे समय तक खुलकर उपयोग कर लेती है।

सुगंधा के लिए वह सबकुछ कर सकता है, जो उसके सीमाओं पर मर्यादाओं में हो बल्कि मर्यादाओं से पार भी उसने सुगंधा के लिए कुछ ऐसे काम किए हैं, जिन्हें वह किसी के लिए नहीं करता और अपने लिए तो कभी भी नहीं। सुगंधा उसके लिए बहुत उच्च स्थान की अधिकारिणी है, परंतु उसके मन में छिपा कहीं एक बौना उसे कचोटता है—''बाबू, जब तुमने सुगंधा को किसी काम के लिए कहा, जो उसकी सीमा और मर्यादा में था, क्या उसने किया? तुमने तो उससे उसी के विषय की कोई पुस्तक या सामग्री का निवेदन बार-बार किया था, परंतु वह उसे नहीं मिला। पूछने पर उत्तर अपर्याप्त था, बल्कि असंतोषजनक था। यदि उसके पास वह पुस्तक या सामग्री नहीं होती तो लाइब्रेरी से या किसी और साथी से लेकर दे सकती थी। मान लो, साथी के पास भी नहीं होती तो समय सीमा के भीतर रंजन को यह तो बता देती कि वह उसका काम नहीं कर पाएगी। रंजन का मन बहुत भारी रहा था, वह जानता था कि सुगंधा ने उसकी माँग को गंभीरता से लिया ही नहीं अथवा उसके पास इस काम के लिए समय ही नहीं था। जैसा कि एक व्यक्ति का फोन और पता माँगने पर और उसके यहाँ सुगंधा के साथ जाने का दिन निश्चित करने के लिए कहने पर पूरे तीन माह का समय सुगंधा ने लिया था, यानी इसके लिए भी वह वास्तव में गंभीर नहीं थी। उसी के कहने पर एक जगह प्रार्थना-पत्र देने के बार-बार के आग्रह के बाद जब रंजन ने कड़ा रुख अपनाया, तब सुगंधा को याद आया, उसने समय निकाला और प्रार्थना-पत्र भेजा, जबकि उसी संकाय के लिए आवेदन देते समय सुगंधा ने कितने कुछ काम बताए थे, जिन्हें रंजन ने हमेशा की तरह बड़ी गंभीरता से लिया और प्यार से किया।

सुगंधा अच्छी कविता लिखती है, जिन्हें पढ़ने के लिए रंजन हमेशा लालायित रहा है और जब-जब उसकी लेखनी को पढ़ा है, तब-तब उसे उस पर गर्व हुआ है। यह गर्व सुगंधा को बिना रंजन के रचनाएँ पढ़े प्राप्त हुआ। बड़े मन से प्रदान की गई उसकी पुस्तकों को पढ़ने के लिए सुगंधा समय ही नहीं निकाल पाई अपितु उसकी माताश्री ने उनमें से कुछ पढ़कर बेटी को अवश्य सुनाया।

हम जिसको चाहते हैं, यदि बता सकते हैं तो उसे अपनी चाहत बता सकते हैं और किसी के विषय में पता चले कि वह हमसें बहुत प्रेम करता है, क्या हमें यह नहीं बता देना चाहिए कि तुम करते हो, पर हमारे मन में तुम्हारे लिए ऐसा भाव नहीं है, ताकि वह मुगालते में न रहे। उसके हैड ऑफिस में कार्यरत शालिनी ने जब रंजन को बतलाया कि वह उससे प्रेम करने लगी हैं, रंजन ने उसे किसी और से स्पष्ट परंतु शालीन शब्दों में समझा दिया कि उसे प्रेम है। शालिनी सँभल गई और इस स्पष्टीकरण के लिए उसने तब रंजन का शुक्रिया अदा किया, परंतु रंजन को फोन करना नहीं छोड़ा।

रंजन को लगने लगा था कि जैसे शालिनी के फोन आने पर अच्छा नहीं लगता और अपने प्रति प्रशंसा भरी बातें सुनकर ऐसे ही शायद सुगंधा उसके प्रति सोचती हो? तब वह सँभल तो गया, परंतु उसका स्वभाव थोड़ा कड़वा हो गया। दिन-रात उसके मन में यही उमड़ता रहा है कि सुगंधा उसे क्यों नहीं बता देती कि रंजन उसके लिए शालिनी है या नहीं? जब-जब उसने सुगंधा से इस विषय में पूछा है, ऐसा उत्तर मिला है, जो उसे भ्रम में डाले हुए है। भ्रम में किसी को रखना शायद बहुत अच्छी बात नहीं है। यदि सुगंधा रंजन को स्पष्ट बता दे कि वह उससे प्रेम नहीं करती और न भी बताए कि किससे प्रेम करती है, वह तब भी सुगंधा से दूर नहीं जाएगा, परंतु उसके मन का रिश्ता बदल जाएगा। वह अपने मन से एक प्रेमी को हटाकर उसके स्थान पर एक दोस्त को बैठा देगा। फिर उसकी समस्त आशाएँ, आकांक्षाएँ गल जाएँगे और उनके स्थान पर कुछ आ सकेगा, क्योंकि विगत दिनों में बार-बार रंजन को लगता रहा कि सुगंधा उसके साथ समय नहीं गुजारना चाहती। सात बार मिलने का तय करने की कोशिश रंजन ने की, परंतु या तो मिलना नहीं हुआ, हुआ भी तो बहुत क्षीण समय के लिए हुआ। दस-बारह बार फोन करने पर सुगंधा की ओर से प्रतीक रूप में एक-आध मिस कॉल आई···बस्स। रंजन को तब-तब बहुत दुःख हुआ जब-जब फेसबुक पर करते हुए उसने पाया कि सुगंधा चैट पर है···तुरंत ही सुगंधा का नाम हटता रहा। कितनी बार ऐसा संयोग हर बार कैसे हो सकता है। यह रंजन के दुखी मन ने सोचा था।

रंजन के प्रश्न उत्तरहीन रह जाते हैं और सुगंधा के प्रश्न खड़े रहते हैं। जब-जब सुगंधा को आवश्यक कार्य होता है। वह दिन में कई-कई बार फोन कर लेती है, यहाँ तक की रंजन के मैसेजों का जवाब न देनेवाली सुगंधा अपने अभिप्रेत के लिए कई बार फोन कर सकती है या संदेश भेज सकती है।

भ्रमजाल में फँसे रंजन को इससे मुक्ति की तलाश है, जिसका रास्ता उसे लगता रहा कि केवल सुगंधा के पास है। लेकिन अचानक क्या हुआ, उसकी बुद्धि जाग्रत् हुई और उसकी उँगलियाँ शालिनी के फोन नंबर को सार्थक करने लगीं।

६५ साक्षरा अपार्टमेंट्स
ए-३, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ९८१८९९९२२५

दोहे

● आलोक बेजान

हमने लाँघी ही नहीं, शुचिता की दहलीज।
मर्यादा हमको रही, सारी उमर अजीज॥

सदियों से चलता रहा, मिला-जुला षड्यंत्र।
जिसने जब चाहा यहाँ, लूटा यह जनतंत्र॥

जो भी आया दे गया, अनगिन-अनगिन घाव।
नाविक से लड़ती रही, जीवनभर यह नाव॥

यूँ तो आए राह में, जाने कितने मोड़।
मगर कभी भटके नहीं, उन हाथों को छोड़॥

उम्र ढली चेहरा हुआ, कितना आज विचित्र।
छाप दिए हैं वक्त ने, गूँगे रेखाचित्र॥

दूर-दूर बैठे रहे, निकला ये निष्कर्ष।
जीवनभर जारी रहा, उनसे मौन विमर्श॥

बहुत कहा मानी नहीं, उसने उनकी बात।
पेड़ों से झर ही गए, पीले-पीले पात॥

रही कालिमा रात सी, नहीं हुई यह भोर।
भीगी-भीगी सी रहीं, इन नयनों की कोर॥

उससे भी ले लीजिए, उसके मन की राय।
बेटी को मत मानिए, गूँगी बहरी गाय॥

इक निर्धन के हाथ में, आड़ी तिरछी रेख।
सत्य सनातन समय का, अनबाँचा आलेख॥

जीवनभर ना लिख सके, दो रचना भी खास।
लेकिन कहते ही रहे, ख़ुद को तुलसीदास॥

देख-देख रोते रहे, सूर-निराला-पंत।
कविता को डँसते रहे, वैचारिक विषदंत॥

नाले में तूफान है, पर सागर है मौन।
इतना ही सच जानिए, ओछा-ओछा कौन॥

आज़ादी सबसे भली, है अपना अधिकार।
सोने का पिंजरा कभी, मत करना स्वीकार॥

सौतेला व्यवहार जो, करे आपके संग।
जीवनभर उससे करो, आर-पार की जंग॥

मन को भारी मत करो, मन बिन सब बेकार।
तन के इस भूगोल का, मन है पहरेदार॥

साँसों का जब से हुआ, साँसों से अनुबंध।
तब से जीवन हो गया, मधुर-मधुर मकरंद॥

ख़ुद ही ख़ुद राजा बना, रखकर सर पर ताज।
चूहे को कत्तर मिली, कहने लगा बजाज॥

खोटे सिक्के को कभी, तू खोटा मत बोल।
बुरे समय करता यही, असली वाला रोल॥

फ़ागुन में सरसों करे, जब पीला सिंगार।
नई नवेली सी लगे, धरती बारंबार॥

जब तक पैसा गाँठ में, तब तक दुनिया मीत।
ये ही सच कड़वा प्रिये, ये ही जग की रीत॥

गलबहियाँ करने लगी, जब गेहूँ के साथ।
सरसों के करने पड़े, जल्दी पीले हाथ॥

सुपरिचित रचनाकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। अब तक लगभग पाँच हजार मुक्तक, तीन सौ गीत, पंद्रह सौ हाइकु तथा एक हजार दोहों की रचना की है।

जुगनू से रोकर यही, बोली काली रात।
मुझ से भी कर लीजिये, अपने मन की बात॥

बहुत दिनों के बाद यूँ, हुआ मौन संवाद।
बूढ़ा बरगद देख कर, पापा आए याद॥

जब उनसे नयना मिले, मनवा हुआ अधीर।
जब बिछुड़े तो हो गई, दुगनी मन की पीर॥

मिलकर इनसे आपके, मुख निकलेगी आह।
काँटों से मत कीजिए, ना चुभने की चाह॥

सत्य सनातन समय की, है सच्ची तस्वीर।
प्यादे से कमतर हुए, जो थे कभी वज़ीर॥

मन को भारी मत करो, मन बिन सब बेकार।
तन के इस भूगोल का, मन है पहरेदार॥

बड़े घरों की बेटियों, के हैं अद्‌भुत कृत्य।
मदिरा पी करती यहाँ, गैर बाँह में नृत्य॥

२५, मदरसा, निकट मामन पुलिस चौकी
बुलंदशहर-२०३००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८९७३९१३०२

डीकुर

• नर्मदा प्रसाद सिसोदिया

सुपरिचित लेखक एवं ललित-निबंधकार। पत्र-पत्रिकाओं में ललित-निबंध का निरंतर प्रकाशन। नर्मदा के घाटों का निरंतर भ्रमण। नर्मदा की सहायक नदी एवं सतपुड़ा पहाड़ का भ्रमण।

सुसह्य सी दिपदिपाई सुरसुरि की थपकियाँ अनहद में भींगती हैं। उतरती चाँदनी रात की शीतलाई फुहारों के फाहे लगते हैं। 'सुहानी' कोहरे की ओढ़नी ने विराट् सौंदर्य की रचना करने में अपना सर्वस्व लुटा दिया है। पर बादलों की ओट से फूटती किरण ने पर्वतों के आर-पार अपनी पगडंडी रच ली है। कछारी केल, मुछेल, दूर्बा की फुनगियों में मूँगे मोती से पोहती मालाएँ चटक रंगों के मृदुल स्फुरण से आवेशित हैं। कोमल-कोमल पवित्री के फूटते उत्स में जीवन की आहटें टोह लेती हैं।

धूप चुपचाप उतर आई है आँगन, चैगान में। और यही कि घर से निकलती गली में उजास फैल गई है। फूलों की पँखड़ियों में काँटों में चिलचिला रही है। हाँ, हमारे घर के पास ही 'निर्मला' पौध रोपणी है। वात्सल्य का झूला चलते देख यहाँ ठिठक जाना सहज है, और सहजता है ही ऐसी कि डिगरी-डिगरी की चारेक टोपला माटी उरेली है यहाँ। यशानुभूति से गद्गद हैं कि दयालु मौसम का अभिषेक हुआ है। उमगते हिया में और हिलोर हरहरा आई है कि ओसकनों की टिप-टिप से और ओल चढ़ आई इन डिगरियों में। फिर नोनी-पोनी करने में जुटे हैं घर के दो-तीन जनें। हाँ, दो-तीन गाय-बछड़े हैं पले-पुशे, सो घर का गोबर है। घर बनी मिठाई जैसा। तो गोबर की खदनिया से टुकनिया भर-भर पका-पकाया खाद ले आए हैं। किलबिल-किलबिल करते कीड़े-मकोड़ों केंचुओं की बंडा बुखारी है, जो चुपचाप-चुपचाप बिना प्रचार के परोपकार कर रही है। कितने अनुदार हैं। हाँ, सोना ही उपजाने, उमगाने की यह अप्रत्यक्ष प्रणाली स्तुत्य है। हम निहारकर निढाल हो रहे हैं। भैया! अविराम अनुष्ठान की सिरजती सुगबुगाहट से सिहर जाना सहज है। हमारे निहारने में उद्विग्न गंध की उपेक्षा भले ही हो पर सुलपाई और कस से किलकिलाते पेड़-पौधों की फुनगियों से फूटते कोमल कुसुम में सुगंध भर देने की सिद्धि रच रहे ये जीव-जंतु वंदनीय हैं। सचमुच बसंत की डगर के बटोही हैं और इस कुइया तलैया के अनुरागी। भैया! समर्पण की यह लीला-भूमि ठिठककर निहार रहा हूँ।

और आज बीज बोने का सिरा लगा रहे हैं। छुटकी-छुटकी कालीकुच थैलियों में 'सोनामाटी' उरेल रहे हैं। फिर उमगती रेम की रेम पूरब-पश्चिम जुड़ती जा रही हैं। हाँ—कटहल, शीशम, पीपल, नीम, शहतूत, रीठा, मुनगा, अमरूद आदि के बीज थैलियों के बीचम-बीच में उँगलियों के पोरों से आहिस्ते-आहिस्ते छोड़ दिए हैं। और झारी से पानी का छिड़काव किया गया। माटी तो अपनी-अपनी तासीर के पानी का 'मान' रखती है। और निमान के बने रहने की आशा रखती है। पर पनियापत हो जाए तो माटी के 'मान' का हिरा जाना स्वाभाविक है। माटी तो हेठी नहीं देखना चाहती। हाँ, हटूटी बनी हुई है सो दो-तीन दिन में ही पोपड़े उमचाने की बलिहारी है कि इन बीजों के अंकुरण से एक टोपी ने हुमक भर ली है तो एक पंदर बाड़ा में चार-आठ पत्तियों के झुमके-झुमके झुमक भरने लगे। और मइना दो मइना में पौधों की देही में अच्छी सुलपाई आ गई तो सड़क बाग-बगीचे, कार्यालय की जमीन तलाशने का हुमकारा भरने लगे, तो स्मृतियों की सरणियाँ चिलचिलाती हैं भैया! मैंने सतपुड़ा की पैदल यात्रा में जाना है कि चिटकते, छिटकते बीजों से ही हाँ, वर्षा की फुहारों से फुगलाए बीजों के अंकुरण की मौलिकता कितनी स्पृहणीय है। और यह स्पृहणीयता लोक-संस्करों में जीवंत हैं। हम देखते हैं कि कथा भागवत दुर्गापूजा के मांगलिक अनुष्ठानों में गेहूँ के बीज (ज्वारे) बोने की प्रथा है तो कह सकते हैं कि बीज के अंकुरण जानने का यह लोक-विज्ञान प्रासंगिक है। हाँ, अंकुरण का अनुकरण प्रशंसनीय है कि नर्मदा के किनारे-किनारे बीज बिखेरे गए थे। पर सुलपाई तो हाथ फेरे की है।

माई की बगिया सबने देखी है। और रेवा का उमगाओ तो हिया में हुलसता रहता है। सो इस रोपणी की गली में ही चार-पाँच घरों के सामने की जमीन पर थोड़ी-थोड़ी बगिया सबने लगा ली है। छानी छपरी भी डाल रखी है। भैया! खाली पड़ी जमीन का यह सही उपयोग है तो इन बगियों में आम, जामुन, जाम, नीम, कटहल, आँवला, नीबू के पेड़ अच्छे-भले पनप गए हैं और फूलवाले पौधे—गुलाब, कनेर, पारिजात,

गेंदा, के पौधों में खूब फूल गनगना रहे हैं। गुलाब की बगिया में कुदाल से खुदाई भराई होती रहती है तो खुरपी दराँती से निराई-गुड़ाई होती है। एक दिन यहाँ हरबोला प्रकृति का हरबाया गुनगुना रहा था, ठिठककर मैं सुनने लगा, 'बगिया लगाए कौन फल होय ए साहेब।' कड़ी दुहराते-दुहराते बोल पड़ा 'बताओ जी'। मैंने कहा, भैया! आपकी मिठास भरी बोली बानी में सुनाओ।' बस उमग-उमगी सो पीके फूट पड़े, 'राही बाँटे अमवा जो खइये ते फल हुइये।' हिया से हुरकी, बोली बानी ने कितना कुछ कह गई। मुझे लगा कि बगिया में अनगिन-अनगिन डीकुर फूट पड़े।

भैया! टटिया की मटिया भरभरा गई सो टुहुक ने टेर लगाई अरे! भला वह चटक रंग वाला बादाम का पेड़ कहा है? यहीं-कहीं आस-पड़ोस की बगिया में देखा था। निगाह गड़ाकर जान रहा हूँ। अरे! यही है बादाम का पेड़। दरअसल हुआ यह है कि इस बादाम के स्वर और व्यंजन को 'हवा' लग गई है। सो मंगलश्लोक उचारे कैसे! बस आँखें मुलमुलाते चैड़े चाकले पत्ते-पत्ते धीरे-धीरे धरती की देह पर फरफराते-फरफराते उतर रहे हैं। हाँ, यही कि आकाश से धरती पर तश्तरियाँ उतर रही हैं। अरे···रे! तश्तरियाँ तो है नहीं। मैं जान गया हूँ भैया! अब बसंत का तार आ गया है। देखते-ही-देखते बादाम की चैगान में पत्तों का सुहाना संतरण सतत चल रहा है। पेड़ की एकहरी देह से नस-नाड़ी दिख रही है। और यही कि इन दिनों तो झबरीली-गुबरीली देहधारियों का रूप लावण्य अब धरती की देह पर समर्पित हो चला है। हाँ, चोला बदलकर चगन-मगन चिंचला है चेतना में। यह जो पेड़ मेरे आने-जाने की गली में है इसे पिछले तीन-चार वर्षों से देख ही रहा हूँ। यह पेड़ बादाम का है। मझोली कद काठी का है यह पेड़। तने की मोटाई तो अपनी अकबाल में समा जाने भर की है। और डालियाँ, टहनियाँ भी बस! तीन अंकों की गिनती में गुनगुनाने की ही हैं। और इतना भी हमारी आँखों ने जाना है कि इस पेड़ का भैराटपन अपने अंचल की माटी ने कहीं नहीं सिरजाया है। हाँ, इस पेड़ की जन्म कुंडली में वह जिजीविषा हो। पर आज बादाम की जिजीविषा में अनमना-अनमनापन मालूम हो रहा है। कुनकुनी धूप में भीतर-भीतर धुँधवा रहा है। और आज तो हम यह देख रहे हैं कि पत्र विहीन बस! एकहरी नश-नाड़ियों का यह तपस्वी गुनने-चुनने में ध्यानस्थ है, उघाड़ी-पुघाड़ी काया ने इस गली से आती-जाती जनता-जनार्दन के सामने सब कुछ खोलकर रख दिया है। अपनी पांडुलिपि उमचाने की कह रहा है। छिपाने की कोई बात अब है ही नहीं। और पारदर्शिता यह है कि कितना प्रकाश लिया है सूरज से। उनचास पवन से कितनी हवा ली है। धरती से कितना जल और कितने पोषक तत्त्व ग्रहण किए हैं। भैया! सब सामने है। हम जान रहे हैं पारदर्शिता में लौटाने की क्रिया चल रही है। उऋण होने की उमग उमगाओं भर रही है।

पाँच ही दिन बीते हैं कि हर एक फुनगियों से तीन-चार पत्तियों की रचना सिरज उठी। तो सूरज की किरणें सत्कार की रंगोली माँड़ती हैं टहनियों पर। हाँ, प्रकाश संश्लेषण की क्रिया होना है। इसी क्रिया से पत्तियाँ अपना भोजन बनाती हैं। सूरज तो वनस्पतियों का आधार है। हाँ, माटी में तेज आ रहा है। उर्वर हो रही है माटी। सूरज के आलोक से बादाम का पोर-पोर मधुमय हो चला है। प्रकृति अपनी संपूर्ण कलाओं से किलकिला रही है।

हाँ भैया! उमग-ऊर्जा भरती है माटी। ओ! माई माटी तो कभी हेटी नहीं होने देती। हटूटी भरती है हड्डियों में। पुगराने की पुस्ताई है कछारी माई माटी में। और जड़ों में नर्मदा के औषधीय जल का परताप है। और तो और नर्मदा कछार के परताप से मंडला के पास नर्मदा घाटी में सैकड़ों वर्षों की साधना से जल दलदल में दुबके वृक्ष वनस्पतियों के अवशेष, जिनमें तने फूल, फल, बीज, लताएँ, पत्तियों के चिह्न भी पाषाण में रूपांतरित हुए हैं, जो आज भी विद्यमान हैं। तो बसंत का प्रारब्ध विद्यमान है। भैया! वह जैव विविधता जगमगाती-जगमगाती सजीव हो रही है। हाँ, यह बादाम का पेड़ प्रमुदित है। इस पेड़ की टहनियों में फुरफुरी आ गई है। ओ! फुनगियाँ-फुनगियाँ फूट गई हैं। इन फुनगियों में एक 'आकार' की तिनुक सी आकृति आ गई है। दूसरे-तीसरे दिन मन भावन शंक्वाकार अकुआ, अकुआ के प्रस्फुटन की प्रतीति है हमारे भरम के प्रहसन में। हाँ, उल्लसित थिरकन है, सो थमथमाकर देख रहे हैं, मथमथा रहे हैं।

यह बादाम का पेड़ देखते-ही-देखते अपने संपूर्ण आकार में आने के लिए उत्सुक है। हाँ, सैकड़ों फुनगियों में लटालूम सी कलियों जैसा उत्स उमगने लगा। हमारी नजरें प्रकृतिस्थ होकर ही प्रकृति से स्थितप्रज्ञता के भावों में तादात्म्य रच सकती हैं। पर हम तो थे अपने-अपने भरम के उल्लास में। उस शंक्वाकार अकुआ-अकुआ से कली-कली की प्रतिकृति सृदश आभा जान रहे थे। चौथा दिन ही था कि बस! धुपकली के खिलते ही कमल की पँखुड़ियों जैसी रचना खिल उठी हमारा भरम टूटा दर्शक दीर्घा देदीप्यमान हो उठी—''भैया! ये तो कोमलकांत सलोनी पत्तियाँ हैं।'' और पाँच ही दिन बीते हैं कि हर एक फुनगियों से तीन-चार पत्तियों की रचना सिरज उठी। तो सूरज की किरणें सत्कार की रंगोली माँड़ती हैं टहनियों पर। हाँ, प्रकाश संश्लेषण की क्रिया होना है। इसी क्रिया से पत्तियाँ अपना भोजन बनाती हैं। सूरज तो वनस्पतियों का आधार है। हाँ, माटी में तेज आ रहा है। उर्वर हो रही है माटी। सूरज के आलोक से बादाम का पोर-पोर मधुमय हो चला है। प्रकृति अपनी संपूर्ण कलाओं से किलकिला रही है।

किलकिलाते कल्ले-कल्ले से केशरिया-केशरिया रंगों की अद्भुत-अद्भुत छटाओं से लकदक हजारों पत्तियों से सुशोभित इस बादाम के रूप लावण्य की ललित लौ लालायित कर रही है। हाँ, कूलन और झूलन की दाना पानी की अनुकूल जलवायु है सो प्रवासी पक्षी भारत भूमि में उतर रहे हैं। और ये बादाम के पड़ोस में आम की बौराई डालियों में टुइयाँ-टुइयाँ कैरियों के झुमके लदर-बदर हो उठे हैं हाँ, अतिथि सत्कार करना चाहते हैं। पर देशज अतिथि कोयल की कूक गूँज उठी है—कुहू-कुहू कूके कोयलिया जा कारी, तो कोराना कालखंड में बसंत ने पार साल की वेदना झेली है। पर आँसों तो यही कह रही है भैया! सावधानी में सेहत सुसह्य रहती है। याद है हमारी सावधानी में गंगा, नर्मदा और हिमालय की सेहत

सुधर गई। और मधुमास में ये सुहानी आम की टहनियों पर भौंरे मँडरा रहे हैं, गुन रहे हैं—फुगनी-फुनगी पे डार दव झूला सुनहरी। हाँ, मधुवन में रास रचा रहे हैं। हाँ, वैक्सीन की आशा बलवती हुई है, सो देश-विदेश के रसिया वृंदावन की फाग रंग-गुलाल के आनंद में मगन होना चाहते हैं। हाँ और पहले तो बसंत उत्सव के राग-रंग में डूबना चाहते हैं। विद्या की देवी सरस्वती की आराधना करना चाहते हैं। फिर महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की जयंती मनाना चाहेंगे जी। भैया बासंती हवा की सरसराहट रह-रहकर झकझोर रही है। हमारी सुरती को उजाल रही है।

और ये फगुनाई के 'डीकुर' फूट रहे हैं। डोंगरी में बैलगाड़ियाँ दुड़क रही हैं। चकील चकील में रंग रेखाएँ उभर आई हैं। धूल-धूसरित होती घुरक की रंग धूलि में हँसी ठिठोली करती गमक है। जतरा की गड़वाट में हबड़दबड़ है। छकड़ा-छकड़ी की छील छिबैया है। यह पगडंडी तो ठिठक गई है, सो महुआरी में बिलम गए हैं। बचे-खुचे बताशे बीनने चुनने लगे हैं। और नाले बेदरे की मरयार में मुलकते-पुलकते पुगराए पलाश की पचरंग पाग की ठसक के ठाठ देख-देख ठिठक गए हैं। तो ढोंगा ढाल में ये सेमल की लाल गुरंग फूलों की बिछावन गुदगुदा रही है। गदराए-गदराए घेंटे भीतर-भीतर पक रहे हैं। हाँ, न जाने कितनी-कितनी आपाधापी को पका रहे हैं। बोरसी की अगन सुबक रही है असह्य हौल उठती है। बस धुधवाती रुई निकली कि प्रवहमान प्रश्न की फुरफुरी साधकर देश-देशांतर में कुमकुम अक्षत से सिरजी पीली सरसों की डोर में लिपटी बासंती पाती सुरसुरी के उड़नखटोले की डाक से भेजने की उमग में उल्लसित है, तो उमंग के डुलारे चल रहे हैं। टिमकी ढोलक की थाप से पैर थरथरा रहे हैं सो रह-रहकर रंग स्वर पुलकायमान है, ''काहे में सूखे सुरक चुनरिया, काहे में सूखे पचरंग पाग।'' हाँ, कड़ी का दुहराव हुआ कि ढोलक की थाप पर घुँघरू थिरक उठते हैं, ''लहरन सूखे सुरक चुनरिया, झकरन सूखे पचरंग पाग।'' अहा! टेकरी से ठिठककर निहार रहे हैं कि धरती की यह वासंती रूप राशि अवर्णनीय है।

भैया! रंगों की बिरुदावली उचराने की हमारी क्या बिसात ठहरी। इस बसंत ऋतु में पेड़ों के पत्तों की नश-नश रेशे-रेशे में यह कैसा! अनूठा, अनुपम, अद्‌भुत रंग समाया हुआ है। ठेठ कश्मीरी ठसक से आवेष्टित है ये चटक रंगों की अपनी-अपनी परिवर्तित प्रकृति। हाँ, भोर की लालिमा से सराबोर होते ही सारी वृक्ष वनस्पतियों में अपना-अपना रूप आना स्वाभाविक है। तो वृक्षों वनस्पतियों ने अपनी-अपनी माटी का मान सिर आँखों पर उठाया है। हाँ, बाघना नदी के आस-पास हरे रंग की माटी मिलती है। वाह'''वाह री! माटी तेरा कैसा गुणगान करें। कैसा तेरा ऋण चुकाएँ।

भैया! प्रकृति में उऋण होने की प्रक्रिया सतत चलती रहती है। सो बसंतकाल में फूलने-फलने की भावभूमि सिरजती है। हम देख ही रहे हैं, इस बादाम के छोटे से वृक्ष के चटक रंगों से आवेष्टित पत्ते धरती की गोद में समा गए हैं। वे माटी में पुस्ताई भरने की प्रक्रिया में हैं। तो हरीछम डालियों, टहनियों की फुरेरी से सुरभित बयार चलती रहती है। जड़ों में जल की बंडा-बुखारी सिगासिग भरी रहती है। छाया में सुस्ताते राहगीरों का अतिथि-सत्कार करना नहीं भूलते। हाँ, छोटे-छोटे बादाम के फल टपकते रहते हैं और बादलों को भरमाने लुभाने में बादाम के पेड़ का योगदान आना-चार-आना, पाई धेला के सृदश तो रहा होगा। हाँ, गिलहरी के योगदान सृदश तो होगा ही और ऋतु के साथ तादात्म्य रचा है। सो अपनी रुमुक-झुमुक रचना में सौंदर्य रचकर शांति और सुकून सिरजाया है। हाँ भैया! तो ये सृजनधर्मी चित्रकार, शिल्पकार, संगीतकार, साहित्यकार और नर्तक बादाम के रूप को निहारकर निहाल हो जाते हैं। पर भैया! हम तो ठहरे गाँव-गवई। बस इस बसंत में बादाम के टुकली सजाते कल्ले-कल्ले पर कुल्हाड़ी चलती देख कारुआँ कर उठते हैं। कानों-कानों से कुहराम रचते हैं। पर इस बादाम की कटी-पिटी ठुठियों से बरबराकर डीकुर फूटते देख हमारे हिया का बसंत हरहरा उठता है।

साअ

ऑफिसर रेजिडेंसी, कंचन नगर,
रसूलिया, होशंगाबाद (म.प्र.)
दूरभाष : ९९२६५४४१५७

लघुकथा

आजादी

• सुनीता शानू

मुँह दिखाई की रस्म चल रही थी। सभी घूँघट उठाते और चाँद का टुकड़ा या बहुत सुंदर कहकर बलाएँ लेते, बहू उठकर पाँव छूती और फिर पीढ़ी पर बैठ जाती। सुबह से यही क्रम जारी था।

नई नवेली को घेरकर बैठी नवविवाहित स्त्रियाँ मुसकराते हुए अपने अनुभव खोल रही थीं कि किस तरह से उन्होंने पुरानी रूढ़िवादी परंपराओं के खिलाफ आवाज उठाई थी और सबका मुँहतोड़ जवाब भी दिया था।

समाजसेवी सास ने भी बताया कि उसकी बदौलत आज घर में सब चैन से हैं, सबकुछ पहनने की आजादी भी है, बेटी-बहू में कोई फर्क ही नहीं।

अचानक कोने में बैठी दादी सास उठी और नई नवेली का घूँघट हटा सास की बगल में चारपाई पर बैठाकर बोलीं, अब किसी को भी परंपराएँ तोड़ने और बड़ों का तिरस्कार करने की जरूरत नही पड़ेगी, अब वक्त तुम्हारा है, अपने ढंग से जियो, लेकिन याद रखना, इज्जत हमेशा देने से ही मिलती है।

सबका खुला मुँह अब बंद हो चुका था। साथ ही एक परंपरा और टूट गई थी।

साअ

२०३/६, भूतल, गली नं. ५, पद्‌म नगर
किशनगंज, दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ०८८६०५९५९३७

इकटक दृष्टि से

मूल : **बी.आर. लक्ष्मण राव**

अनुवाद : **एच.एम. कुमारस्वामी**

मैसूर के सुपरिचित बी.आर. लक्ष्मण राव आधुनिक कन्नड़ काव्य-जगत् के कवि-गीतकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी कविताओं में प्रेम स्थायी भाव है। इनकी अब तक कई रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। यहाँ हम उनकी कुछ कन्नड़ कविताओं का रूपांतरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

द्वंद्व सुपर्णा

पेड़ की डाली पर
बैठी हैं दो चिड़ियाँ
उनमें है
युगयुगांतर का
रिश्ता।

एक चिड़िया
फल कुतर-कुतरकर
खा रही है
मुँह चपचपाते।

दूसरी चिड़िया
चोंच रगड़ते उसी को
देख रही है
लार टपकाते।

कभी-कभी
अदली-बदली होती है
उनकी जगह।

दोनों चिड़ियाँ
एक साथ फल खाएँगी,
कब ?

यह नहीं सौंदर्य
यह निरंतर
व्यथा है।

प्रिसम

बिलख-बिलखकर रोता है
दोस्त
हठात् चल बसे अपने
छोटी उम्र के इकलौते बेटे की
याद करके।

मेरे गले की हर नस
तनाव दे रही है।

कहता है—
'तुम कवि हो तो
मेरी इस यातना को
बनाओ कविता।'

यह कैसा सवाल है ?
यह सच है, दोस्त के दु:ख के प्रति
मेरे तहेदिल की
हमदर्दी है।
इसका मतलब,
कविता क्या प्रतिबिंब है ?

मानता हूँ
दोस्त का दु:ख
मेरे अंदर जो भावना जाग्रत् कर चुका है
वह मात्र दु:ख नहीं है।

उससे बढ़कर
कुछ क्षणों के लिए

कन्नड़ और हिंदी के सुपरिचित लेखक तथा अनुवादक। उभय भाषाओं के मौलिक तथा अनुवाद की रचनाओं को मिलाकर इनकी अब तक २८ कृतियाँ प्रकाशित। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के 'सौहार्द सम्मान' सहित अनेक पुरस्कारों से समादृत।

अंदर-ही-अंदर राहत है
कि 'चलो, मुझे ऐसा नहीं हुआ'

अगले ही क्षण में
मुझे शर्म हुई कि
'छिह! मुझे ऐसा लगना उचित है ?'

इसके पीछे ही
मन को झल्लानेवाली
व्याकुलता, 'हे भगवान्!
यदि मुझे भी ऐसा हुआ तो ?'

क्षमा करो, दोस्त
कविता प्रतिबिंब नहीं है,
वर्ण पटल है।

सिद्धि

क्या देखा
उस मुरझाए फूल को ?
लाकर सामने रख लो।
कोमलता से उसे
सहलाओ।

इकटक दृष्टि से
देखो।
धीरे धीरे उसके अंदर उतरो।
हृदय छुओ
प्यार से थपथपाओ।

झट से पुलकित होकर
वह फूल
फिर
पँखुड़ियाँ खोलकर चमकते
हँसेगा तो
तुम कवि हो
वह है कविता

११०, बी.ई.एम.एल. द्वितीय स्टेज के
नजदीक, देवप्रसाद लेआउट
मैसूर-५७००३३ (कर्नाटक)
दूरभाष : ६३४२२१४०५

साहित्य में वर्षा या पावस ऋतु

• प्रवीण शंकर त्रिपाठी

इस धरा पर ऋतुओं का बड़ा महत्त्व है। धरती पर हर प्राणी न सिर्फ ऋतुओं से किसी-न-किसी रूप में जुड़ा है, अपितु उस पर आश्रित है। भारतीय मौसम चक्र के अनुसार छह ऋतुएँ हैं, जो गरमी वर्षा व सर्दी के मौसम पर आधारित हैं, जिन्हें हम निम्नलिखित नामों से जानते हैं—

- वसंत—चैत्र से वैशाख या मार्च से अप्रैल।
- ग्रीष्म—ज्येष्ठ से आषाढ या मई से जून।
- वर्षा—श्रावन से भाद्रपद या जुलाई से सितंबर।
- शरद्—आश्विन से कार्तिक या अक्तूबर से नवंबर।
- हेमंत—मार्गशीर्ष से पौष या दिसंबर से १५ जनवरी।
- शिशिर—माघ से फाल्गुन या १६ जनवरी से फरवरी।

वैसे तो सभी ऋतुएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं, पर इस ऋतु-चक्र में सबसे ज्यादा चर्चा या वर्णन दो ही ऋतुओं की होती है। वे हैं वसंत और वर्षा ऋतु, जिन्हें हम मधुमास व पावस के नाम से जानते हैं, जो अपनी प्रकृति, गुणों एवं उपयोगिता के कारण सर्व प्रसिद्ध हैं।

वसंत के सुहाने मौसम के बाद प्रचंड गरमी से धरती और इस पर रहनेवाले सभी प्राणियों को राहत दिलाने हेतु पावस का आगमन होता है। वैसे पावस के आगमन के पीछे गरमी का भी बड़ा हाथ है, क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो गरमी से जहाँ समुद्रों में जल का वाष्पीकरण तेज होने के कारण बादल बनते हैं, वहीं जमीन पर अत्यधिक गरमी के कारण वायु भी गरम होकर ऊपर उठ जाती है, जिसका स्थान लेने के लिए ठंडी, नम और वाष्प कणों से लदी वायु का एक चक्र बनाता है और अपने साथ बादलों और उनके द्वारा वर्षा को लाता है। जिसे हम भारतीय उप-महाद्वीप में मानसून भी कहते हैं। करीब चार महीने चलनेवाले वर्षा चक्र को 'चातुर्मास' भी कहते हैं। वैसे देखा जाए तो सभी ऋतुओं में वर्षा ऋतु का बहुत महत्त्व है, अत: इसे अलग-अलग दृष्टिकोण से विश्लेषित किया जा सकता है या यह कहें कि इस ऋतु संबंधित सभी पक्षों की व्याख्या करके इसकी महत्ता को समझा जा सकता है। वर्षा ऋतु के निम्नलिखित पक्ष हैं, जो इसको अन्य ऋतुओं से महान् बनाते हैं।

सुपरिचित लेखक। अब तक आलेख, व्यंग्य एवं छंदाधारित काव्य की सभी विधाओं एवं बाल-रचनाओं के संवर्धन में प्रयासरत। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

भाव पक्ष

भाव पक्ष में वर्षा ऋतु को 'पावस' के नाम से जानते हैं। जो ऐतिहासिक और पारंपरिक रूप से बहुप्रतीक्षित होता है। ताप से झुलसती धरा को इस ऋतु में न केवल शीतलता मिलती है अपितु सर्वत्र हरियाली की छटा बिखरने के कारण हरी-धानी चूनर ओढ़े हुए लगती है।

पावस में हरीतिमा के कारण धरती के बदले स्वरूप का भी मनोरम चित्रण करके मानवीकरण किया गया है। मानव के साथ-साथ पशु-पक्षियों पर भी पावस के आगमन का असर भी व्यापक रूप से दरशाया गया है। जैसे मधुमास में कोयल का वैसे ही पावस मोर, पपीहा और दादुर का भी भरपूर चित्रण किया गया है। जब साहित्यकार ऋतु के प्रभाव को अंतस में उतारकर उसे शब्दों में ढालकर प्रस्तुत करता है तो उकेरे गए बिंब पाठक के मन-मस्तिष्क में सजीव हो उठते हैं—

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई, बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।
नव पल्लव भए बिटप अनेका, साधक मन जस मिलें बिबेका।
लछिमन देखु मोर मन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, विष्नु भगत कहुँ देखि।

साहित्यिक पक्ष

वर्षा प्रकृति की सुंदरतम ऋतु है, जो कि आदिकवि वाल्मीकि से लेकर आधुनिक नवगीतकारों तक को काव्य सृजन की प्रेरणा देती रही है। संस्कृत साहित्य में कालिदास का वर्षा-ऋतु चित्रण अप्रतिम है। इस ऋतु के सभी पक्षों का वर्णन आदिकाल से ही कवियों ने अपने काव्यों

और महाकाव्यों में करते आए हैं और अब भी जारी है। हिंदी साहित्य के मध्ययुग में तुलसी, सूर, जायसी आदि कवियों ने पावस ऋतु का सुंदर-सरस चित्रण किया है। वर्षा ऋतु में सभी प्राणी तपती गरमी से राहत पाकर अपने-अपने ढंग से आनंदोत्सव मनाते हैं, जिस कारण भावभूमि में विचरनेवाले कवियों ने पावस ऋतु को लेकर नई-नई कल्पनाओं की उड़ानें भरी हैं, जिनके कारण वे साहित्य के माध्यम से आज भी जीवित हैं, ऐसे अमर कवियों में कविकुल-गुरु कालिदास का अपना विशिष्ट स्थान है। वैसे तो उन्होंने अपनी सभी रचनाओं में प्रकृति की छटा का खुलकर वर्णन-चित्रण किया है, फिर भी उनका 'मेघदूतम्' खंडकाव्य पावस ऋतु वर्णन की पराकाष्ठा है। 'मेघदूत' एक ऐसा खंडकाव्य है, जिसमें विरही यक्ष ने अपनी प्रेयसी के पास अपना संदेसा भेजने के लिए मेघ को दूत बनाया। इसमें कालिदास ने प्रेमी हृदय की भावना को उँड़ेल दिया है।

पावस ऋतु में जहाँ मेघदूत द्वारा रामगिरि से लेकर मानसरोवर तक बीस स्थानों की यात्रा और शोभा का वर्णन है, वहाँ कवि का वाग्वैभव भी मुखर हुआ है। मेघदूत के 'उत्तर मेघ' में यक्ष मेघदूत को अपनी विरहिणी प्रिया के निकट यह संदेश पहुँचाने का विशेष अनुरोध करता है और कहता है कि 'यह जो मैंने श्यामा लता में अपनी प्रियतमा का अंग-लावण्य खोजने की चेष्टा की है, चकित-हरिणी के दृष्टिपात में उसकी चंचल-दृष्टि को देखना चाहा है, चंद्रमा में उसके मुख की उज्ज्वलता, मयूर-पुच्छ में उसका केश-संभार एवं नदी की छोटी तरंगों में जो उसके भ्रू-विलासों का संधान करना चाहा है, उससे ही शायद मेरी प्रियतमा मेरी धृष्टता देखकर अत्यंत रुष्ट हो गई है, क्योंकि इनमें से किसी के भी साथ उसके किसी अंग के लावण्य की तुलना नहीं हो सकती।'

इसी प्रकार ऋतु संहार में महाकवि कालिदास वर्षा ऋतु की समानता एक ऐसे राजा से करते हैं, जो प्रजा को सुख से संपन्न करने के लिए ऐसे राजा को नष्ट कर देता है, जो उसका शोषण करता रहा हो; यथा—

"मोतियों की झालरें फुहारों से सजाए हुए बादलों के मतवाले हाथी पर आता हुआ।

व्योम तक विद्युत् की झंडियों को फहराता घनघोर गर्जन की दुंदभि बजाता हुआ।

कालिदास प्यासे पपीहों की पुकार सुन झूम झुक धुआँधार पानी बरसाता हुआ।

कामियों का प्यारा किए राजाओं का ठाट-बाट पावस पधारा इंद्रधनुष चढ़ाता हुआ॥"

भक्त-कवि तुलसीदास भी पावस-ऋतु के आगमन पर आनंद-विभोर हुए बिना न रह सके। पावस ऋतु प्रेमियों के विरह को बढ़ा देती है। भगवान् राम जैसे मर्यादा-पुरुष को वर्षाकालीन छटा अनेक प्रकार से अपनी प्रिया के स्मरण से भयभीत करके तीव्र वेदना के सागर में धकेल देती है। प्रेम और विरह की अग्नि के लिए पावस ऋतु जैसे घी का काम करती है। अंतर है तो केवल इतना कि तुलसीदास प्रत्येक चौपाई के दूसरे भाग में तुलना तथा उपमा द्वारा उसे भक्ति और ज्ञानमय बना देते हैं, किंतु मूलभाव तो वेदना, विरह, उद्विग्नता और मिलनातुरता ही है। यथा—रामचरित मानस के किष्किंधा कांड में गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

वर्षा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥
घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रह घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥

भक्तिकाल में वर्षा ऋतु अपनी संपूर्ण गरिमा और सौंदर्य के साथ उपस्थित है। इस काल के सभी कवियों ने वर्षा ऋतु का चित्रण किया है—कहीं प्रतीकात्मक रूप में कहीं शृंगार के उद्दीपक रूप में तो कहीं वियोग के रूप में। इस प्रकार वर्षा ऋतु की उपस्थिति और उससे जुड़े प्रत्येक पहलू को किसी-न-किसी रूप में चित्रित किया है। कहीं मेघों के द्वारा संदेश देने का वर्णन है तो कही विरहन की पीड़ा का चित्रण है। कहीं सावन में झूलों की पींगें तो कहीं मेहँदी लगे हाथों के बिंब उकेरे गए हैं।

हिंदी साहित्य में बारहमासा की जब बात की जाती है, तब जायसी का नाम सबसे पहले लिया जाता है। बारहमासा की शुरुआत आषाढ़ से की जाती है। नागमती की विरह से उपजी पीड़ा को जायसी इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा,
साजा विरह दुंद दल बाजा।
धूम साम धौरे घन धाये,
सेत धजा बग पाँति देखाये।

आधुनिक हिंदी साहित्य में छायावादी कवियों में प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी ने वर्षा संबंधी कई कविताएँ लिखी हैं। महादेवी का आत्म-परिचय ही 'नीर भरी दु:ख की बदली' के रूप में है। नवगीत के प्रेरक पुरुष माने जानेवाले निराला की कविताओं में वर्षा की अनेक छवियाँ हैं। नई कविता और प्रगतिशील कविता की धरा में भी वर्षा से संबंधित कविताएँ हैं। नागार्जुन की 'मेघ बजे, घन कुरंग, बादल को घिरते देखा है' जैसी कई वर्षा-केंद्रित प्रसिद्ध कविताएँ हैं।

आधुनिक काल में नवगीत परंपराओं के कवियों ने वर्षा ऋतु का सर्वथा यथार्थवादी और विडंबनाओं से भरपूर रूप का चित्रण किया है। बुद्धिनाथ मिश्र के नवगीत 'आर्द्रा' में वर्षा की विकल प्रतीक्षा मर्मस्पर्शी है—

छाती फटी कुआँ-पोखर की
धरती पड़ी दरार
एक पपीहा तीतर पाखी धन को
रहा पुकार
चील उड़े डैने फैलाए
जलते अंबर में
सहमे-सहमे बाग-बगीचे

सहमे-से घर द्वार
सूखे की उपज होती है अकाल।

शिव बहादुर सिंह भदौरिया के नवगीत 'सूखे का गीत' में भी वर्षा के लिए टोटके दिखाए गए हैं—

इंद्र को मनाएँगे टुटकों के बल
रात ढले निर्वसना जोतेगी हल।

खाली बादल की विडंबना को चित्रित करते हुए योगेंद्रदत्त शर्मा ने लिखा है—

जल मरुथल में
विलीन हुई दोपहरी
उड़ते खाली बादल
रीती गंगा लहरी
जितनी ही प्यास बढ़ी
उतनी जल से दूरी धार।

धार्मिक पक्ष

भारत में पावस ऋतु में रथ यात्रा, हरियाली तीज, नाग पंचमी, रक्षा बंधन और जन्माष्टमी, ओणम जैसे प्रमुख तीज-त्योहार पड़ते हैं, जिन्हें विशेषकर महिलाएँ बहुत उत्साह से मनाती हैं। जिस प्रकार धरती हरीतिमा की चूनर ओढ़कर शृंगारित होती है उसी प्रकार महिलाएँ भी भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे परिधान पहनकर पर्व-त्योहार मनाकर प्रकृति की सुंदरता को बढ़ाती हैं। सुदूर केरल में इसी ऋतु में विश्वविख्यात नौका दौड़ भी आयोजित की जाती है। इसी ऋतु में जन-जागृति हेतु आरंभ किया गया दस दिवसीय गणपति उत्सव पूरे देश मे उत्साहपूर्वक मनाया जाता है, जो कि अनंत चतुर्दशी को समाप्त होता है। तदुपरांत शारदीय नवरात्र पर्व आरंभ होते हैं।

भारत में पावस ऋतु में रथ यात्रा, हरियाली तीज, नाग पंचमी, रक्षा बंधन और जन्माष्टमी, ओणम जैसे प्रमुख तीज-त्योहार पड़ते हैं, जिन्हें विशेषकर महिलाएँ बहुत उत्साह से मनाती हैं। जिस प्रकार धरती हरीतिमा की चूनर ओढ़कर शृंगारित होती है उसी प्रकार महिलाएँ भी भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे परिधान पहनकर पर्व-त्योहार मनाकर प्रकृति की सुंदरता को बढ़ाती हैं। सुदूर केरल में इसी ऋतु में विश्वविख्यात नौका दौड़ भी आयोजित की जाती है। इसी ऋतु में जन-जागृति हेतु आरंभ किया गया दस दिवसीय गणपति उत्सव पूरे देश मे उत्साहपूर्वक मनाया जाता है, जो कि अनंत चतुर्दशी को समाप्त होता है। तदुपरांत शारदीय नवरात्र पर्व आरंभ होते हैं।

धार्मिक दृष्टि से देखें तो इस दौरान रथ यात्रा और जन्माष्टमी की बात तो कर चुके हैं, पर सबसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक आस्था का प्रतीक सावन का महीना है, जो कि शिवजी को अति प्रिय है और श्रीअमरनाथ यात्रा इसका अभिन्न अंग है। पौराणिक मान्यता है कि देव-दैत्यों द्वारा समुद्र का मंथन सावन मास में किया गया था। जब मंथन से हलाहल विष निकला तो चारों तरफ हाहाकार मच गया। संसार की रक्षा करने के लिए भगवान् शिव ने विष को कंठ में धारण कर लिया और उनका कंठ नीला पड़ गया, जिससे उनका नाम नीलकंठ भी पड़ा। विष का प्रभाव कम करने के लिए सभी देवी-देवताओं ने भगवान् शिव को जल अर्पित किया, जिससे उन्हें राहत मिली। इससे वे प्रसन्न हुए। तभी से हर वर्ष सावन मास में भगवान् शिव को जल अर्पित करने या उनका जलाभिषेक करने की परंपरा बन गई। इसी परंपरा के अंतर्गत उत्तर एवं पूर्व भारत में काँवड़-यात्रा पूरी श्रद्धा तथा उत्साह से मनाया जाता है, जिसमें श्रद्धालु गंगाजल लाकर अपने गाँव शहर के मंदिरों में अभिषेक करते हैं।

श्रावण मास में त्रयोदशी, सोमवार और शिव चौदस प्रमुख हैं। भगवान् शंकर को भस्म, लाल चंदन, रुद्राक्ष, आक के फूल, धतूरे का फल, बेल पत्र, भांग विशेष प्रिय हैं। भगवान् शिव की पूजा वैदिक, पौराणिक, मंत्रों से की जाती है। इस दौरान शायद ही कोई शिव भक्त हो जो शिवजी की आराधना नहीं करता हो। इस महीने पड़नेवाले सोमवार को श्रद्धालु मन:पूर्वक व्रत रखते हैं और इच्छित अभीष्ट को प्राप्त करने हेतु शिव आराधना करते हैं।

सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष

भारत में वर्षा ऋतु एक बेहद ही महत्त्वपूर्ण ऋतु है, इसका भारत की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। भारत में वर्षा ऋतु आषाढ़, श्रावण तथा भादो मास में मुख्य रूप से होती है तथा खरीफ फसल के लिए बहुत उपयोगी होती है। मानसून भारतीय खेती का जीवनदाता है, क्योंकि इस पर लगभग दो खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था निर्भर करती है तथा कम से कम पचास प्रतिशत कृषि को पानी वर्षा द्वारा ही प्राप्त होता है। सामान्य से ऊपर मानसून रहने पर कृषि उत्पादन और किसानों की आय दोनों में बढ़ोतरी होती है, जिससे ग्रामीण बाजारों में उत्पादों की माँग को बढ़ावा मिलता है। बढ़ी आय न सिर्फ कृषकों और उनके परिवारों के जीवन स्तर में वृद्धि करती है अपितु बाजार में माँग बढ़ने पर औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होती है, जिससे उद्योगों से जुड़े व्यक्तियों की आय में तथा परोक्ष रूप से रोजगार की उपलब्धता में भी बढ़ोतरी होती है।

इसको इस प्रकार से भी समझा जा सकता है कि देश की ६० प्रतिशत से अधिक भारतीय आबादी कृषि में लगी हुई है, जो भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में २०.५ प्रतिशत के आसपास है। भारत में किसानों के लिए सोने की तुलना में पानी अधिक मूल्यवान है। अच्छी वर्षा का कृषि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मानसून अनुकूल नहीं होता तो माल की कीमत बढ़ जाती है और अन्य वर्गों की सेवाएँ कम हो जाती हैं। औद्योगिक उत्पादों को जब तैयार बाजार नहीं मिलता तो उत्पादकता प्रभावित होती है। जो सीधे सकल घरेलू उत्पाद (GDP) पर प्रभाव डालता है।

व्यापक और अच्छी वर्षा कृषि के साथ-साथ व्यापार संतुलन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्षा की कमी से जिंसों के उत्पादन में आई कमी से आंतरिक माँग को पूरा करने के लिए आयात का सहारा लेना पड़ता है, जिसका विदेशी मुद्रा भंडार पर सीधा असर होता है। इसके विपरीत अच्छे मानसून के फलस्वरूप आवश्यकता से अधिक कृषि उत्पादों के निर्यात से विदेशी मुद्रा-भंडार में वृद्धि होती है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्षा अथवा मानसून का भारतीय अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। जिसे निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है—

भारतीय कृषि पर प्रभाव : कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार है क्योंकि ६० प्रतिशत से अधिक भारतीय आबादी कृषि में लगी हुई है, जो भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में २०.५ प्रतिशत के आसपास है। भारत में, किसानों के लिए सोने की तुलना में पानी अधिक मूल्यवान है या जो कृषि में लगे हैं, यदि मानसून अनुकूल है तो हमारे पास सकारात्मक प्रभाव पड़ता है या अनुकूल नहीं होता तो माल की कीमत बढ़ जाती है और अन्य वर्गों की सेवाएँ कम हो जाती हैं। उद्योग के उत्पादों को तैयार बाजार नहीं मिल रहा है और उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति भी ग्रस्त है।

२. जी.डी.पी. पर प्रभाव (सकल घरेलू उत्पाद) : यदि मानसून में विफल रहता है तो यह भारत की समग्र जी.डी.पी. विकास दर से प्रतिशत अंक को कम करेगा। इसके गैर-कृषि क्षेत्र में माँग पर भी हानिकारक प्रभाव होगा।

- **व्यापार के संतुलन पर प्रभाव :** व्यापार का संतुलन भी मानसून में अप्रत्याशित और अभूतपूर्व परिवर्तन पर निर्भर है जैसे मानसून अनुकूल है, हमारे पास व्यापार का अनुकूल संतुलन है और यदि मानसून अनुकूल नहीं है तो हमारे पास नकारात्मक संतुलन है व्यापार। मानसून की असफलता भारत के विदेशी व्यापार के खंडों और संतुलन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। राष्ट्रीय आय में गिरावट के कारण सरकार का राजस्व तेजी से गिरावट और सरकार को अतिरिक्त आम व्यय के साथ बोझ है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि राज्य का राजस्व और आय हर साल मानसून पर निर्भर करता है।

- **खाद्य आपूर्ति पर प्रभाव :** यदि मानसून असफल हो, तो यह कृषि उत्पादन में बाधा पड़ेगी, जो खाद्य कीमतों पर आघात होगा।

- **हाइड्रो पावर सेक्टर और सिंचाई सुविधाओं पर प्रभाव :** बारहमासी नदियों पर स्थापित अधिकांश भारतीय ऊर्जा प्रोजेक्ट यदि मानसून विफल हो जाता है, तो यह पानी के स्तर को कम करेगा, जिससे बिजली उत्पादन और सिंचाई सुविधाओं पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकते हैं।

- **ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव :** भारत के ग्रामीण जीवन छोटे गाँवों में कृषि और संबद्ध गतिविधियों के आसपास घूमते रहते हैं, जहाँ जनसंख्या की भारी संख्या में जीवन रहता है। २००१ की जनगणना के अनुसार, जनसंख्या का ७२.२ प्रतिशत लगभग ६३८,००० गाँवों में रहते हैं और बाकी २७.८ प्रतिशत ५,१०० से ज्यादा शहरों में और ३८० शहरी समूह से अधिक जीवित हैं। अप्रयुक्त और पूर्व-मानसून बारिश ने फसलों को नुकसान पहुँचाया, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ मानसून की बारिश पर्याप्त है, और फिर यह खेत के उत्पादन को प्रभावित करेगा और ग्रामीण माँग को प्रभावित करेगा।

इस विवेचना का निष्कर्ष निकालने के लिए हमें प्रसिद्ध उद्धरण को नहीं भूलना चाहिए कि 'जल है तो जीवन है।' मानसून का भारतीय अर्थव्यवस्था पर गहरा असर है, क्योंकि ६० प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, मानसून भारतीय अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा है, जैसे जीवन के अस्तित्व के लिए रक्त की आवश्यकता होती है और ऐसा है कि मानसून के बिना हमारी कृषि अर्थव्यवस्था जीवित नहीं रह सकती।

संप्रति पावस-ऋतु आषाढ़ और श्रावण मास में अपने चरम यौवन पर होती है। जून महीने का प्रारंभिक उतरार्द्ध पावन-ऋतु का शैशव और अगस्त महीने का उत्तरकालीन उत्तरार्द्ध इसका तिरोधान है। पावस-ऋतु स्वयं में उत्सवमय है कदाचित इसी कारण यह लोक-जीवन में अनेक उत्सवों के रंग बिखेरती हुई पदार्पण करती है। यही कारण है कि जीवन और जगत् में खान-पान, परिधान, लोकरंग तथा उमंग आपसी प्रेम और मेलजोल के नाना उत्सवों का समागम लगा रहता है। इस आलेख में समाहित व्याख्या के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि वर्षा या पावस ऋतु न सिर्फ ऋतुओं की धुरी है, बल्कि सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र भी है।

सा.अ.

टॉवर ए-९, फ्लैट नं. १५०५
क्लासिक अपार्टमेंट्स, जे.पी. विशटाउन
सेक्टर-१३४, नोएडा-२०१३०४
गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.)
दूरभाष : ८४४७५७६४७९

इस अंक की चित्रकार

अनुभूति गुप्ता

नवोदित लेखिका एवं चित्रकार। हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में रेखाचित्र, कविता, लघुकथा आदि प्रकाशित। कविता कोश में ६० से अधिक कविताएँ संकलित। बाल-काव्य तथा कहानी-संग्रह एवं कुछ काव्य-संग्रह शीघ्र प्रकाशित। 'नारी गौरव सम्मान', 'साहित्यश्री', 'प्रतिभाशाली रचनाकार सम्मान', 'नवांकुर रत्न सम्मान' तथा 'संपादक शिरोमणि' आदि सम्मानों से समादृत।

संपर्क : १०३ कीरत नगर, निकट डी.एम. निवास
लखीमपुर खीरी-२६२७०१ (उ.प्र.)

दर्पण, जुगनू और रात

● अंजू शर्मा

मानव की वर्तमान प्रजाति अपने बौद्धिक विकास के चलते जिस पड़ाव पर आ खड़ी है, वहाँ भूत-प्रेत जैसी बातों पर सहज यकीन करना संभव ही नहीं। पर विज्ञान के लिए आत्मा की उपस्थिति से परे पारलौकिक शक्तियों का होना अकसर चर्चा का विषय बनता रहा है। सृष्टि के प्रारंभ से ही ये रहस्य मानव मन को आकर्षित करते हैं। जाहिर सी बात है, जहाँ जिज्ञासा है, वहाँ लगातार इनसे जुड़े किस्से-कथाएँ और अनुभव भी सामने आते रहते हैं! मजे की बात यह है कि अगर विज्ञान इसे नकारता है तो उसकी एक शाखा इस पर लगातार शोध करती रही है। लिहाजा जब तक किसी नतीजे पर नहीं पहुँचा जाता, न ऐसी अनुभूतियों की बातें विलुप्त होंगी, न इससे जुड़े किस्से-कहानियाँ।

जहाँ तक इस किस्से का सवाल है, पता नहीं यह कोई कहानी है या लोककथा, पर मैंने इसे जब भी सुना, मेरे मन में किसी कौंध की तरह लहरा गया यह सवाल कि क्या सचमुच ऐसा हुआ होगा। खैर, कुछ बातें, कुछ रहस्य होने या न होने की सीमा से परे होते हैं, तो हम लॉजिक की बजाय 'जो है जैसा है' के आधार पर उन्हें आगे बढ़ा देते हैं। यह कहानी मुझे मेरे दादाजी ने सुनाई थी और उन्हें उनके दादाजी ने। इससे पहले का भी कोई इतिहास अगर रहा हो इस कहानी का, तो वह मेरे ज्ञात से बाहर है, पर इतना जरूर है कि पीढ़ियों का सफर करती यह कहानी अब हमारे खानदान में एक किंवदंती या लोककथा से कहीं आगे किसी सच्चे अनुभव का सा अहसास कराती है।

यह मेरे दादाजी के दादाजी के या उनके भी पहले के किसी समय की बात है कि राजस्थान के एक गाँव के ठीक बीचोबीच बनी हुई थी यह तायलों की हवेली। खूब सुंदर, तिमंजिला, पक्की इमारत, हल्के नीले रंग से पुती, जिस पर गुलाबी बेलबूटों के बीचोबीच उभरा हुआ था 'तायल भवन'। अपने मालिक का अभिमान, आन, बान और शान। राजस्थान महलों और हवेलियों की धरती है, तो हवेलियाँ तो कई बनी हुई थीं गाँव में, पर इसके जोड़ की दूसरी कहीं आसपास के किसी गाँव

पिछले कई वर्षों से पत्र-पत्रिकाओं और ब्लॉग्स में कविताओं, कहानियों, लेखों, रिपोर्टों का प्रकाशन। भारतीय कहानियों का अनुवाद। 'इला त्रिवेणी सम्मान', 'राजीव गांधी एक्सीलेंस अवार्ड', 'स्त्री शक्ति सम्मान' सहित कई सम्मान प्राप्त।

में कोई ठहरती ही नहीं थी।

सेठ जगमल ने इसे बड़े मन से बनाया था। सुनते हैं, जयपुर से कारीगर आए थे और मकराने से पत्थर। दिन महीनों में बीते और महीने वर्षों में। काम शुरू हुआ तो चलता रहा। एक-एक ईंट, एक-एक कोने में सेठानी बिरमादेवी की पसंद झलकती। दीवारों पर बने बेलबूटे तक उनके काढ़े हुए थे। सेठानी सा बड़ी गुणी औरत थीं। न वे कम थीं और न उनके कारीगर। वे जैसा बतातीं, कारीगर अपने हुनर से वैसा रच देते। फिर ढाई बरस में हवेली पूरी हुई।

बताते हैं, पाँच गाँव की दावत हुई थी, जाहरपीर की रात जगाई गई और हवेली में बड़ी शान से जोड़े से गृह-प्रवेश हुआ था। हवेली में आते ही सेठानी ने अपनी पसंद के कारीगर बुलवाकर हवेली को सजाने में दिन-रात एक कर दिया। यों तो काठ के सुंदर पलंग, मेज कुरसी, चौकी, मूढ़े सब बनवाए सेठानी ने, पर जो सबसे बड़ा शाहकार था, उनकी कल्पना और खातियों (बढ़ई) के हुनर का वह था सेठानी सा के कमरे में लगा एक आदमकद जड़ाऊ दर्पण। आबनूस की लकड़ी से बना यह दर्पण बारीक कारीगरी का अनूठा नमूना था। इसमें खासतौर पर रंगीन पत्थर कुछ इस कोण से जड़े हुए थे, वे सामने बैठे व्यक्ति के चेहरे पर एक अनोखी आभा बिखेरकर उसे विशिष्ट बना देते थे।

हवेली की सुंदरता से मुग्ध व्यक्ति अगर दर्पण को देखता तो ठगा सा रह जाता। बदरीनाथ से बुलाए गए एक बड़े ही खास कारीगर से बनवाए इस दर्पण की एक खासियत यह भी थी कि इसमें दिखाई देता प्रतिबिंब कोई प्रतिबिंब न लगकर शानदार तसवीर सा नजर आता था।

जैसे बड़े से जड़ाऊ फ्रेम में कोई शानदार सी तसवीर हो, जो किसी आम आदमी के प्रतिबिंब को भी शाही पोर्ट्रेट का सा दर्शनीय बना देती। यों दर्पण के बारे में तो भी कई बातें मशहूर थीं, पर सेठानी ने अपने रोबीले प्रभाव से धीरे-धीरे उन सब बातों को दबा दिया।

सेठानी बिरमादेवी रूपसी तो थी हीं, पर जब नहा-धोकर उस दर्पण के आगे बिछी चौकी पर बैठकर सजती-सँवरतीं तो लगता, किसी रियासत की महारानी सामने बठी हैं। दर्पण की कारीगरी और उसकी अज्ञात जादुई शक्तियाँ उनकी सुंदरता में चार चाँद लगा देतीं। बाकी समय सेठानी उस दर्पण पर एक झीने परदे का आवरण डालकर रखती थीं।

सेठानी को इसके अलावा कोई दर्पण सुहाता नहीं था और जब इसके सामने बैठतीं तो दीन-दुनिया से बेखबर हो जातीं। उनका मन कभी भरता ही नहीं था। विशेषकर अमावस्या की रात सेठानी अपने कमरे में बंद हो जातीं। यह उनकी विशेष पूजा का दिन होता था, जिसमें कोई दखल नहीं डाल सकता था, सेठजी भी नहीं।

बक्त के चक्के आगे सरक गए, बच्चे बड़े हो गए, बहुएँ घर में आ गईं, पर इतने बरसों बाद भी हवेली की शान में कोई फर्क नहीं आया था। साज-सँभाल भी जी-जान से कराती रहीं सेठानी सा। फिर एक दिन बिरमा देवी एकाएक बुखार की चपेट में आईं और उनका स्वर्गवास हो गया। जिस दिन भगवान् को प्यारी हुईं, सेठ जगमल ने मानो वैराग्य ओढ़ लिया।

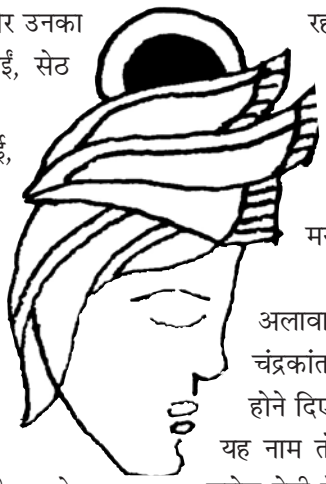

दो दिन का बुखार और बैरन ऐसे नाता तोड़ गई, जैसे कभी कुछ लगे ही न थी। न मन की कही, न बतलाई, न कोई वादा, न विदा, कहीं ऐसे भी कोई चला जाता है। सेठजी मन की कभी किसी और से कहते न थे और जीवनसंगिनी से अकस्मात् ही बिछुड़ने के दुःख ने उन्हें तोड़कर रख दिया।

सेठ जगमल कोई पैदायशी रईस न थे। हाँ, खाता-कमाता खानदान था, किसी चीज की कमी न थी, पर आज जिस तरह रईसों में उनकी गिनती होती थी, उसके हकदार वे अकेले न थे, उसमें बिरमा देवी की मेहनत, मितव्ययता, समझ और दूरंदेशी का भी आठ आने भर का हिस्सा था। चालीस साल जी तोड़ मेहनत से अर्जित उस वैभव को अकेला भोगने को पत्नी उन्हें छोड़ दूसरे लोक चली गई थी, पर उन्हें तो जैसे घर-व्यापार से अरुचि सी हो गई थी।

दोनों बेटे गुणी, समझदार और आज्ञाकारी थे। पिता का बोझ अपने कंधों पर ले उन्हें फारिग कर दिया। अब वे कभी इस धाम, कभी उस धाम, जी आया तो महीनों एक आश्रम में हरिद्वार पड़े रहते। इस बड़े से आश्रम में उन्होंने एकमुश्त रकम दान कर दी थी। सोचा तो यह था कि बच्चों का घर-बार बसता देख लें कुछ दिन, फिर जब मन किया सेठानी के साथ वहाँ रहा करेंगे। अब समय आने से पहले ही जोड़ा बिछड़ गया और हंस अकेला रह गया।

घंटों गंगाजी के किनारे बैठे एकटक क्षितिज को निहारा करते, बस जीवन के दिन काट रहे थे इस आस में कि उस लोक में वह बाट जोहती मिलेगी, जिसके बिना जीवन गले में अटका ग्रास हो गया है। उन्हें लगता, वे उनके जीवन में जल की भाँति थीं, सबकुछ होते हुए भी जिसके अभाव को कोई पूरा नहीं कर सकता। ऐसे में एक दिन सेठजी कहाँ गायब हुए, यह कोई नहीं जानता। बेटों ने ढूँढ़ने में कोई कोर-कसर न उठा रखी थी, पर कहनेवाले कहते हैं, उन्होंने गंगाजी में जलसमाधि ले ली और पहुँच गए अपनी बीरबानी के पास।

दोनों बेटे सूरज और सुमेर, शानदार व्यक्तित्व की स्वामिनी, ममतामयी माँ और पिता के रोबदार, खामोश व्यक्तित्व के आगे इतना दबे थे कि उन्हें सदा अपने ऊपर आदेश देनेवाली एक आवाज की जरूरत महसूस होती। व्यापार तो पुराने मुनीमजी के अनुभवों और बेटों की मेहनत के सहारे चल ही रहा था। सूरज ने गद्दी सँभाल ली और सुमेर दिसावरी के लिए बाहर जाने लगा। रही घर की बात तो माँ के जाते ही पूरे घर पर बड़ी बहू सरोज का दबदबा कायम हो गया।

पूरे घर की अघोषित मुखिया के रूप में अपना राजपाट कायम करने में सरोज ने तनिक भी देर न लगाई। जैसे बस इसी की बाट जोह रही थी। उसके तेवर कुछ ऐसे ही थे कि अड़ोस-पड़ोस की लुगाइयाँ दबी जबान से किस्से गढ़तीं कि 'राँड़ ने कुछ मिलाकर खिला दिया होगा सास को कि पुण्यात्मा दो दिन में भरा-पूरा घर इसे सौंपकर चाली गई।' जितने मुँह उतनी बातें। पर कहा करें हैं न कि 'कागला के कोसे ढोर मरा नहीं करते'। तो सरोज का राजपाट भी बदस्तूर जारी रहा।

इसी राजपाट में हुकम बजाने को नौकर-चाकरों के अलावा एक बाँदी भी थी, घर की छोटी बहू, चंदा। पूरा नाम तो चंद्रकांता था, पर इस घर में सरोज ने कभी ऐसे हालात पैदा ही न होने दिए कि वह पूरे नाम से पुकारे जाने की इज्जत पाती। उसका यह नाम तो सासूजी के साथ ही चला गया। सो राजरानी, पटरानी सरोज देवी के राज में चंदा भी अपने दिन काट रही थी। उसका पति सुमेर यों उसे बहुत चाहता था। तोता-मैना की सी जोड़ी थी धणी-बीर की। नोरतों में दोनों कठपुतली का खेल दिखानेवाला भैरोंमल की कठपुतलियों से लगते थे। चटख, चपल और हँसमुख। सुमेर की तो खास आदत थी, सबको छेड़कर चलता। फिर अभी उमर ही क्या थी। पिछले आसोज में उन्नीस का हुआ था और चंदा ने अठारह पूरे किए। मुकलावा अभी दो बरस पहले ही हुआ था।

एक साल से सुमेर अकसर गाँव के बाहर ही रहता। चंदा की सारी चपलता, सारा नटखटपना उस रात जैसे सासूजी के साथ ही चला गया था। सासूजी के रहते चंदा के जिस सुख और बचपने के दिन कटे थे, वे सब बीते जमाने की बात हो गई। हवेली की मालकिन सरोज थी और उसी का हुकुम बजाना अब चंदा का फर्ज था। जो चंदा और सुमेर

न होते तो बेखटके पूरी हवेली, कारोबार पर सूरज और सरोज का ही कब्जा होता। यों तो अब भी था, पर नामचारा तो उनका भी था न। तो सुमेर के पीछे चंदा से उसके हिस्सेदार होने का बदला लेना सरोज की आदत बन गई थी।

सेठानी गुणग्राहक थीं और चंदा को उसके रूप-गुण के खातिर ही एक छोटे से परिवार से चुनकर लाई थीं। जबकि बड़ी बहू बहुत ऊँचे खानदान की थी। तब कौन जानता था, बेचारी गरीब चंदा के भाग नहीं खुले बल्कि सदा के लिए फूट गए थे। सारा दिन काम से थककर जब चंदा बैठती तो उसे सुमेर की याद सताने लगी या अपनी ममतामयी सास की याद उदास कर देती।

सालभर ऐसे ही बीत गया तो एक दिन सेठानी का कमरा खुलवाकर सरोज ने उसकी सफाई करवाई। इधर कमरा क्या खुला, घर में रोज कुछ-न-कुछ विचित्र घटने लगा। जैसे एक दिन सोते में किसी ने सरोज को पलंग से जमीन पर पटक दिया। उसे लगा, गहरी नींद में करवट लेते गिर गई! कैसे गिरी, कुछ याद नहीं सिवाय इसके कि उसके कानों में जैसे रात में किसी भनभनाहट का शोर था! बेचारी अगले दो दिन अपनी कमर के दर्द को रोती रही।

फिर एक दिन उसने चंदा से घर भर के ढेर सारे कपड़े धुलवाए। बेचारी पूरा दिन लगी रही तो जाने क्या हुआ, क्या नहीं कि रात में सरोज की ढेर सारी पोशाक चिरी हुई मिलीं। सब की सब एकदम खराब, ऐसे जैसे उन्हें सैकड़ों कीड़ों ने काट दिया हो।

कई बार रात को नौकर शिकायत करते कि उन्हें कोई आवाज आती है कमरे से, जैसे एक साथ हजारों कीड़े भनभना रहे हों। नौकर बेचारे रात में बाहर निकलने से डरते, पर दिनभर कुछ न होता तो सरोज नौकरों को कामचोर घोषित कर उनपर झूठ बोलने का आरोप लगाकर खूब झाड़ पिलाती।

एक दिन उसने चंदा को बहुत परेशान किया! वह तो बेचारी रोते-रोते सो गई, पर उस रात सरोज की आँखें अचानक हिलने से खुलीं तो पाया, उसका पलंग दो-तीन फुट ऊपर उठा हुआ है और सैकड़ों कीड़े उसके ऊपर मँडराते हुए भनभना रहे हैं। सरोज की तो हालत खराब! डर के मारे उसकी चीख निकल गई! उसका धणी सूरज सप्ताह भर के लिए किसी काम से जयपुर गया हुआ था। उसने बड़ी मुश्किल से चंदा को पुकारा तो चंदा दौड़ी हुई चली आई।

चंदा के आते ही पलंग स्वत: ही जमीन पर आ गया। कीड़े पता नहीं कहाँ गायब हो गए! सरोज बुरी तरह डरी हुई थी और चंदा से चिपटकर सहमी हुई सरोज को चंदा ने समझाया तो उसे भी लगा कि वह कोई बुरा सपना देख रही थी।

इतना सब होने पर भी सरोज नहीं सुधरी। निरंकुश सरोज के अत्याचार दिन-ब-दिन बढ़ते जा रहे थे। एक दिन पता नहीं कैसे, अचार की एक बड़ी सी अचार की बरनी खुद-ब-खुद हवा में उछलकर टूट गई। अब बरनी क्या टूटी, सरोज के मन की मुराद पूरी हो गई। यह अचार खास था, क्योंकि सरोज के मायके से आया था। हवेली के नौकरों के सामने उसे डाँटकर भी चंपा का जी न भरा तो उसे जोर से धक्का दिया।

चंदा का कमजोर सुकोमल शरीर उस धक्के को सहन न कर सका और वह जोर से दीवार पर जाकर गिरी। नीचे टूटी पड़ी बरनी को सकेरते नौकर डर के मारे काँपने लगे, जब उन्होंने देखा कि उस पर कुछ पंखोंवाले विचित्र से कीड़े मँडरा रहे हैं!

इधर चंदा को सेठानी के कमरे में बंद करके सरोज अपने कमरे में सोने चली गई। भूखी-प्यासी चंदा देर तक सुबकती रही और शिष्टाचार वश सासू माँ के पलंग पर बैठने की उसकी हिम्मत न हुई तो वहीं कालीन पर बैठे-बैठे कब उसकी आँख लगी, वह जान ही नहीं पाई।

आधी रात को एकाएक उसकी आँख खुली तो उसे लगा, उसके कानों में कीड़ों की भनभनाहट गूँज रही है! धीरे-धीरे यह भनभनाहट एक पुकार में बदल गई! उसने पाया, कमरा एक अलौकिक प्रकाश से भरा है। उसे याद आया, यह अमावस की रात थी। पूरा गाँव अंधकार में डूबा था और जब वह कमरे में आई थी, न दीया जल रहा था, न लालटेन। किसी भी प्रकार के कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था कमरे में नहीं की गई थी तो यह कैसा उजाला था, कैसी रोशनी थी, जो कमरे को रोशन किए हुए थी। एक तो वैसे ही इस कमरे के बारे में नौकरों में फैल रही अफवाहों को याद कर उसका बुरा हाल था और अब ये आवाजें।

चंदा हैरान-परेशान चुँधियाई आँखों को मिचकाते हुए चारों ओर देखने लगी। उसकी आँखें जब रोशनी की कुछ अभ्यस्त हुईं तो उसने पाया कि उजाला कोने में रखे उसी दर्पण से आ रहा है, जो उसकी सासू माँ को इतना प्यारा था, मानो उसमें उसके प्राण बसते हों।

चंदा उठकर बड़े कौतुक से दर्पण से आते उजाले को निहार रही थी। एकाएक उसे फिर से वही धीमे स्वर की पुकार सुनाई दी। उसने गौर किया कि रोशनी की भाँति यह पुकार भी उसी दर्पण से आ रही थी।

एक बार को चंदा सिहर गई, पर या तो दुखों की मार ने उसे इतना निस्पृह बना दिया था या फिर उस आवाज का सम्मोहन था कि वह चुपचाप दर्पण की ओर बढ़ने लगी। उसने देखा, दर्पण के इर्द-गर्द जुगनू जैसे हजारों पतंगे फ्रेम के आकार में जुड़े पड़े थे और यह प्रकाश उनमें से ही फूटकर निकल रहा था!

जैसे ही चंदा उस दर्पण की रोशनी की जद में आई, दीवार में टकराने से उसके सिर में लगी चोट से दर्द एकाएक गायब हो गया। यहाँ तक कि उसकी भूख-प्यास भी जाती रही। उसने डरते हुए दर्पण की ओर देखा तो देखते ही उसे जोर से झटका लगा।

उसकी सारी इंद्रियाँ जैसे नींद से पूरी तरह जाग उठीं। अपनी आँखों को मलते हुए उसने पुन: दर्पण में निहारा। सामने उसका अपना प्रतिबिंब नहीं बल्कि वे थीं सासू माँ···जीती-जागती, अपनी चिर-

परिचित मुसकान को चेहरे पर सजाए हुए, मुसकराती हुई सेठानी बिरमा देवी। रत्तीभर भी फरक ना, साक्षात् वही।

चंदा ने खुद को चुटकी भरी, पर नहीं, यह कोई स्वप्न नहीं था। उसके ऐसा करने पर सासू माँ की मुसकान कुछ और गहरी होकर हँसी में बदल गई।

"बींदणी, आ सुपनो कोणी···मैं आप हूँ।"

"सासूजी···आ···आआ···प"

"यही सोच रही है न तू कि मैं जीवती किस तरिया हो गई?"

"हाँ सासूजी···ना सासूजी···धोक देयूँ।"

बुरी तरह डरी हुई चंदा के लिए उसकी ममतामयी सासू माँ कुछ भी हो सकती थीं, पर उन्हें भूत नहीं मान सकती थी वह। पर कैसे झुठला दे इस बात को कि सच तो यह भी था न कि वे तो मर चुकी थी। फिर उनकी परछाईं से कैसे बात कर सकती है चंदा! और जब दर्पण के सामने वह थी तो दर्पण में परछाईं उसकी क्यों नहीं। और सबसे बड़ा सवाल यह कि सासूजी दर्पण में कैसे?

कुछ भी हो, दुखों की मारी चंदा ने जब सासू माँ को देखा तो उसके भीतर का सारा दर्द तरल होकर बह निकला। रोते हुए जैसे ही आदतन चंदा सासू माँ के चरणों में 'धोक देने', यानी प्रणाम करने उनके पैरों में झुकने को उद्यत हुई, सेठानी के प्रतिबिंब ने कड़क आवाज में उसे चेताया।

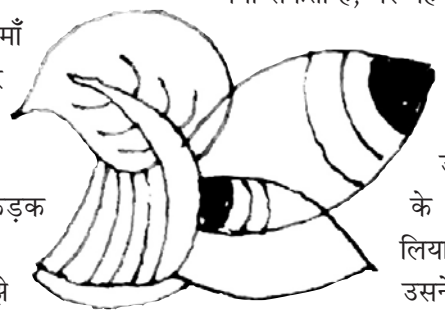

"ना चंद्रकांता···म्हारी प्यारी बींदणी···ना···मुझे हाथ ना लगाइयो लाडो।"

उनकी सख्त आवाज से काँपकर झुकी हुई चंदा पीछे हटकर सीधी खड़ी हो गई।

"मैं जानू हूँ, तू ये ही सोच रही है न, मैं दर्पण में कैसे?"

चंदा ने सहमति में सिर हिलाते हुए अपनी दृष्टि दर्पण पर टिका दी।

"म्हारी भोली बींदणी···मैं अब भी तेरे पास हूँ। तू दुखी है तो मेरी गति किस तरिया हो सके है।"

"तो इतने दिनों से ये सब आप··· ?" इधर चंदा के मन में कई सवाल सिर उठा रहे थे। उधर हवेली में घट रही तमाम बुरी और अजीबोगरीब घटनाओं पर से परदा उठ रहा था।

"कहीं ना गई मैं, बींदणी···एक साल से इसी दर्पण में रह रही हूँ लाडो। तेरे दु:ख ना कटेंगे, मैं किस तरिया तुझे छोड़कर जा सकूँ हूँ। मेरी आत्मा अपने परिवार में है, उसके सुख में है। मैं तभी जाऊँगी, जब सबको सुखी देख लूँगी।" सेठानी ने गहरी साँस भरते हुए बताया।

उसकी दु:ख भरी आवाज सुनकर चंदा ने सिर झुका दिया और जब फिर से सिर उठाया तो वह हैरान रह गई। उसने पाया, सामने अकेली उसकी सासू माँ नहीं, और भी कई स्त्रियाँ उसे स्नेहिल दृष्टि से निहार रही थीं। चंदा समझ गई थी कि यह कोई मामूली नहीं, जादुई दर्पण है और उसके परिवार की पितर स्त्रियों का इस दर्पण में वास है।

उसने सुना तो कई बार था, पर आज जान भी गई थी अपनी सासू माँ के इस जादुई शक्तियों से लैस दर्पण के राज के बारे में। वह कुछ देर सेठानी से अपने मन की बात कहती-सुनती रही। सास ने जो समझाया, चंदा ने आँचल में गाँठ बाँध लिया। सासूजी की छवि दर्पण से गायब हो गई और वे हजारों जुगनू जैसे कीड़े भी!

सूरज की किरणें कमरे की खिड़की से अंदर रिस रही थीं। चंदा ने देखा, यह सुबह के आगमन का इशारा था। वह दरवाजा खुलने का इंतजार करने लगी। सुबह हुई तो सरोज ने बड़बड़ाते हुए कमरे का दरवाजा बाहर से खोल दिया, ताकि चंदा रसोई सँभाल सके। चंदा बाहर आ गई। कमरे में रात में क्या हुआ, यह कोई नहीं जानता था।

चंदा ने अपना मुँह सी लिया, पर उसका दु:ख आज मानो बढ़ गया। सासूजी की आत्मा उसके कारण दु:ख पा रही है। वह कर भी क्या सकती है, पर वह अकेली नहीं, इस अहसास ने उसे बड़ी हिम्मत भी दी।

फिर अगली रात कुछ भनभनाहट जैसी आवाजें सुनकर सरोज की आँखें खुलीं तो वह उठकर बाहर आँगन में आ गई। उसने सासू माँ के कमरे से अद्भुत प्रकाश को फूटते हुए देख लिया। कमरा खोलने की उसकी हिम्मत नहीं हुई तो उसने घर भर को इकट्ठा किया और तब कमरे के भीतर गई सरोज ने पाया, वहाँ कुछ नहीं था। वह एक सामान्य कमरा था। अब तो उसे अपनी सोच पर शक होने लगा।

'हे म्हारा रामजी···बावली हो गई दिखूँ मैं···कदी सुपनो दीखे कदी साँच···काईं हो रह्यो है म्हारे सागे!' सोच-सोचकर परेशान हो गई थी सरोज।

तभी सामने से आती चंदा को उसने देखा। उसे लगा, चंदा कुछ छिपा रही है अपनी चूँदरी के नीचे। दुष्टा अपनी सब परेशानी भूल गई, उसकी आँखें दुष्टता के चिरपरिचित भाव से चमक उठीं और वह दौड़कर चंदा के पास गई। उसने आगे बढ़कर उसकी चूँदरी हटा दी।

बंधेज की उस जयपुरी चूँदरी का हटना था कि सरोज की आँखें एक अद्भुत सी चमक से चौंधिया गईं। उसने हाथ की ओट से इस चौंध को रोका और फिर से देखा तो पाया कि चंदा के गले में एक सुंदर कंठहार कौंध रहा है। वह हार इतना अप्रतिम और अद्वितीय था कि सरोज ठगी सी रह गई। सरोज की अनुभवी आँखों ने पहली ही नजर में भाँप लिया कि वह कोई मामूली स्वर्णहार नहीं, जड़ाऊ नौलखा हार है। उसने सुना तो था कि यह उनका बेशकीमती खानदानी हार है, पर वह हार कहाँ है, यह राज सासूजी के साथ ही चला गया था।

हो न हो, यह वही हार है, सरोज ने सोचा। यह हार इस चँदूडी के

पास कैसे? उस हार की आभा के आगे सरोज जैसे बेबस हो गई थी। जैसी कि उसकी प्रवृत्ति थी, उसने चाहा कि लपककर छीन ले चंदा के गले से नौलखा हार, पर उसकी हिम्मत न हुई। तो भी उसने हार के राज के बारे में चंदा से पूछा तो चंदा ने अबोले ही अपनी उँगली सासू माँ के कमरे की ओर उठा दी। सरोज की आँखें लालच की तीव्रता से चमक उठीं। वह हवेली के दूसरे कोने पर खड़ी थी।

वह सासू माँ के कमरे की ओर बढ़ी तो शाम डूब चुकी थी। कमरे की शक्तियाँ सक्रिय हो चुकी थीं। एकाएक उसे कमरे से कोई धीमी पुकार सुनाई दी। वह आगे पुकार की दिशा में बढ़ी तो उसने पाया, कमरे से अलौकिक प्रकाश फूट रहा है। सरोज के पूरे बदन में सिहरन होने लगी। उसके पाँव मारे, भय के लगभग काँपने लगे। पर हार का लालच उस पर हावी हुआ और लालची सरोज फिर आगे बढ़ने लगी। उसने आँगन पार किया और वह गलियारा भी।

अब वह कमरे के सामने थी। कमरा खोलकर सरोज आगे बढ़ी तो उसका कलेजा मुँह को आ रहा था, पर उसका लोभ बढ़ता ही जा रहा था। वह हिम्मत करके फिर आगे बढ़ी। सामने दर्पण से वही विचित्र प्रकाश फूट पड़ रहा था। उसने जाकर देखा तो सामने दर्पण में जो उसने देखा, उसकी आँखें आश्चर्य से फटी-की-फटी रह गईं।

सामने दर्पण में उससे भी सुंदर रत्नजड़ित हार एक स्वर्ण मंजूषा से बाहर झाँक रहा था। यह हार इतना सुंदर था कि उसे देखकर सरोज का मन नाच उठने को हुआ। चंदा को इसी दर्पण से हार मिला और उसे तो कुछ नहीं हुआ, वह सही-सलामत है, उसे बस इतना ही सूझ रहा था। उसे भी हार चाहिए था। किसी भी कीमत पर चाहिए था। लालच ने उसके विवेक और डर दोनों को हर लिया था।

"इतना बड़ा संदूक···मतलब इस मंजूषा में ऐसे और भी गहने-गाँठे होंगे। इतना बड़ा खजाना और सब मेरा!"

खुशी के मारे वह पागल हो गई थी। उससे अब सब्र नहीं हो रहा था। इधर पीछे आती चंदा ने दौड़कर उसे रोकना चाहा, पर इससे पहले कि चंदा उसे चेतावनी देती, उसने आगे बढ़कर वह हार उठाने के लिए जैसे ही दर्पण को छुआ, एक तेज आवाज से समूचा कमरा किसी डगमगाती नाव सा डोल गया और किसी ने उसे दर्पण के भीतर खींच लिया।

अब सरोज भी दर्पण का एक हिस्सा बन गई थी। दर्पण में से आनेवाला अलौकिक प्रकाश अब शांत था और वे आवाजें भी। चंदा ने देखा, वह जिसके आगे खड़ी थी, वह तो एक आम दर्पण भर था।

४१-ए, आनंद नगर
अपॉजिट इंद्रलोक मेट्रो स्टेशन
दिल्ली-११००३५
दूरभाष : ८८५१७५१६२८

गीत

बहुत याद आते हैं···

● मनोहर मधुकर

बहुत याद आते हैं छुट्टीवाले दिन,
मामा के घरवाले घुट्टीवाले दिन।
सालभर जब पढ़ाई किया करते थे,
घूमने जाने को तरसा करते थे।
बिदाई पर आँख में नमीवाले दिन,
अपनों से वह दोस्ती कुट्टीवाले दिन।
बहुत याद आते हैं छुट्टीवाले दिन!

वो बेफिक्रि बचपन की मीठी यादें,
धूल भरी गाँव की सुहानी यादें।
हँसी-खुशी नाना के घर पर जाना,
नाना-मामा का वह लाड़ लड़ाना।
खेतों पर सूरज उगनेवाले दिन,
सुबह-सुबह में गन्ना खानेवाले दिन!

घर से ढोर खेत लेकर जाते थे,
चारा पानी डाल के घर आते थे।
भर गरमी में ठंडी वह आम की छाँव,
त्यार होते खेत हल बखर की दाँव।
काश लौटें काँदे रोटीवाले दिन,
चढ़स हाँकते गिरना मिट्टीवाले दिन!

नानाजी की लाड़ली लक्ष्मी घोड़ी,
पहचान जाती थी जब थोड़ी-थोड़ी।
बिठा पीठ पर मुझको घर लाती थी,
कभी खूँटा तोड़ घूमने जाती थी।
भरे कुएँ में कूद नहानेवाले दिन,
गुड़ की चकरी जलती भट्ठीवाले दिन!

वह रिमझिम रिमझिम बारिश में भीगना,
प्रसव-पीड़ा गीत कवि हृदय में घुमड़ना।
पिया को प्रिय की बैरन याद सताए,
ज्यों तरुवर से लता लिपट-सिमट जाए।
बैल गले घंटी बजनेवाले दिन,
गोधूली में गाड़ी चलानेवाले दिन।

झीरमीर-झीरमीर पानी का गिरना,
घुटनों तक कीचड़ में पाँव का गड़ना।
तोतों के झुंड का भुट्टे खाने आना,
गोफन घुमा-घुमाकर उन्हें भगाना।
डागरे पर बैठ रखवाली वाले दिन,
बहुत याद आते है छुट्टी वाले दिन!

४-बी इंद्रलोक, मोहन परिसर
जावरा, जिला रतलाम (म.प्र.)
दूरभाष : ९१३१४३६१००

नींद

• परगट सिंह जठोल

रात का तीसरा पहर था, चोर रसोई की खिड़की तोड़कर घर में घुसा। वह कई दिन से फिराक में था। जब से दशहरे की छुट्टियाँ शुरू हुई थीं, उसे लगा, अब सुनहरी मौका है। घर का मालिक छुट्टियों के चलते पिछले चार-पाँच दिन से घर पर नहीं था, इसका अंदाजा उसने दिन के समय जायजा लेते हुए घर के पानी के निकासीवाले पाइप से लगा लिया था, क्योंकि वह बिल्कुल सूख चुका था।

घर में घुसने के बाद वह सीधा बेडरूम में गया, उसने जैसे ही बेड की तरफ लाइट मारी, तो बेड के ऊपर जरूरत से ज्यादा मोटे गद्दे ने उसका ध्यान खींचा। उसने वैसे ही कौतूहलवश गद्दे को हाथ से मापा तो उसकी मोटाई लगभग दो बिलांद थी। वह जैसे ही इसके ऊपर बैठा, उसे वह बहुत नरम और स्प्रिंग जैसा लगा। उसे बहुत सुखद लगा और कुछ देर के लिए उस गद्दे पर लेट गया। वह कई दिनों से दिन-रात किसी मौके की तलाश में भटकता रहा था, जिसके चलते वह ढंग से सो भी नहीं पाया था। बैड के नरम गद्दे ने उसे ऐसे अपने आगोश में लिया कि उसे नींद आ गई।

दिन निकल आया, छह बज गए, सात बज गए, दस बज गए, वह अभी भी सो रहा था। मकान-मालिक अचानक सवा दस बजे कहीं से लौट आया। घर के मुख्य द्वार को खोलकर वह जैसे ही बेडरूम में दाखिल हुआ तो किसी अजनबी को बेड पर सोते देख चौंक पड़ा, लेकिन मुँह से आवाज नहीं निकली। उसने धीरे से बेडरूम के दरवाजे को बाहर से बंद कर, बालकनी में जाकर पुलिस को फोन किया। लगभग दस मिनट में मोटरसाइकिल पर दो पुलिसवाले आ गए। मकान-मालिक ने उनको साथ लेकर डरते-डरते जैसे ही दरवाजा खोला तो देखा कि वह अभी भी सो रहा था। उसके बाद पुलिसवाले ने डंडे की मदद से दूर से ही उसे हिलाकर उठाने की कोशिश की। वह थोड़ा हिला और करवट बदलकर फिर सो गया। अबकी बार पुलिसवाले ने जोर से चिल्लाकर उसे उठाना चाहा, जिस प्रकार सर्दियों में स्कूल बस के आने से पहले माँ बिस्तर में दुबके बच्चे पर चिल्लाती है। आवाज सुनकर वह उठा। आँख मलते-मलते जैसे ही आँखों का धुँधलापन कम हुआ और सामने पुलिस की वर्दी पहने सिपाही देखा तो वह तुरंत सिपाही के पैरों में गिरकर रोने लगा। अपनी गलती की गुहार लगाकर माफी माँगने लगा, कहने लगा—

सुपरिचित साहित्यकार। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति स्टेट इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडीज में अध्यापक।

मैंने कुछ भी नहीं चुराया है। पुलिसवालों ने उसे मोटरसाइकिल पर अपने बीच में बैठाकर चौकी का रास्ता पकड़ा और मकान-मालिक को वहीं आने के लिए कहा।

पुलिस के जाने के बाद मकान-मालिक घर का जायजा लेने लगा। उसने रसोई की टूटी खिड़की को देखा, घर के प्रत्येक कोने को देखा। सिवाय टूटी खिड़की के उसे घर की सभी चीजें यथास्थान मिलीं। वह अभी अकेला आया था, घर की लॉबी में रखे सोफे पर बैठकर पत्नी को इस घटना के बारे में फोन पर बताने लगा। फोन कटने के बाद उसने पानी का गिलास भरा और फिर सोफे पर बैठ गया। तभी पुलिस चौकी से फोन आया और उन्होंने पूछा कि घर का कोई सामान गायब तो नहीं? मकान-मालिक ने बताया कि कुछ भी चोरी नहीं हुआ। चौकी के मुंशी ने पूछा कि क्या आप रिपोर्ट लिखवाना चाहते हो? इसके साथ-साथ ही उसने एक लंबी कथा सुनाकर रिपोर्ट न लिखवाने के फायदे गिनाए। मकान-मालिक ने उसकी हाँ में हाँ मिला दी, वह वैसे भी पुलिस के झंझट में पड़ने से बचना चाहता था।

फोन काटने से पहले पुलिसवाले ने हँसते हुए कहा, 'साहब, आप का बचाव तो आपके बैड के गद्दे ने कर दिया'। फोन कट गया, लेकिन मकान-मालिक लॉबी में बैठा हैरानी से सामने बैडरूम में नजर आ रहे गद्दे को देख रहा था और सोच रहा था कि मेरी तो तमाम रात इसी गद्दे पर नींद की बाट जोहते ही निकल जाती है।

सा.अ.

४८०/४ सुर्खपुर रोड
सामने माता गेट
झज्जर, हरियाणा-१२४१०३
दूरभाष : ९८१२४०१११७

हिंदी गजलों में स्त्री-चेतना

● सोनरूपा विशाल

हिंदी गजल ही दरअसल चेतना का दूसरा नाम है। सर्वविदित है कि पहले गजल की विषयवस्तु प्रेमी प्रेमिका के बीच वार्त्तालाप रही। फारसी से उर्दू और उर्दू के हिंदी तक गजल की यात्रा में कई पड़ाव आए। लेकिन विषयगत विविधता जितनी आपातकाल के बाद इस विधा में दिखाई दी, उतनी इसके पूरे इतिहास में देखने को नहीं मिलती। इसका कारण गजल का एक सीमित दायरा भी रहा।

कभी काल्पनिक दुनिया से गुँथी हुई, कभी शाब्दिक चमत्कार से प्रभावित करती हुई, कभी भावुकता से लबरेज लगी, कभी इश्किया जज्बात से भरपूर तो कभी रूहानी आवाज की अभिव्यक्ति ही गजल में नजर आती रही। यह विशेषतौर पर उर्दू गजल की खासियत थी। उर्दू गजलों का शिल्प खूबसूरत तो बहुत था किंतु कथ्य सीमित। लेकिन समय के साथ आधुनिक उर्दू गजल ने आम आदमी के पास आने में धीरे-धीरे कदम बढ़ाने शुरू किए और फिर एक समय बाद उर्दू गजल ने जन सरोकारों से जुड़ा धरातल प्राप्त किया। लेकिन यह बात उल्लेखनीय है कि यही धरातल हिंदी गजल ने बहुत कम समय में प्राप्त कर लिया।

आपातकाल के दौर में नई कविता की खुरदुरी बयानगी से उकताए पाठकों के लिए प्रसिद्ध गीतकार व कवि दुष्यंत कुमार की गजलों की मशालें एक नया उजाला लेकर आईं। हालाँकि वर्षों पहले से हिंदी गजल के दीप टिमटिमाने लगे थे। निराला, बलबीर सिंह रंग, शमशेर, त्रिलोचन आदि हिंदी गजल की नई छटा बिखेर रहे थे, किंतु जब भारतीय समाज तत्कालीन सत्ता की हिटलरी कार्यशैली से निराश होकर किस्मत की ढहती दीवार पर सिर टिकाए बैठा था, तब दुष्यंत की गजलें उसके दर्द की सहोदर प्रतीत हुईं, हिंदी गीतकारों को भी गजल ने सहज ही आकर्षित किया और वे गजल-लेखन की ओर उन्मुख हुए। उन दिनों लगभग प्रत्येक गीतकार ने गजलें लिखने का प्रयास किया। जब कुछ और सशक्त गजलकारों की व्यापक दृष्टि तथा दृष्टिकोण ने गजल की उँगली थामी तब जो नए रास्ते तय हुए, वह इस विधा के विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण साबित हुए।

सुपरिचित लेखिका। 'लिखना जरूरी है' (गजल-संग्रह), 'अमेरिका और पैंतालीस दिन' (यात्रा-संस्मरण), 'पिछले बरस का गुलमोहर' (गीत-संग्रह), 'हिंदी गजल और डॉ. उर्मिलेश' (संपादन) एवं अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। 'हरिवंश राय बच्चन युवा गीतकार सम्मान', 'जगदीश गुप्त सर्जना सम्मान', मॉरीशस कला मंत्रालय द्वारा 'विशिष्ट प्रतिभा अलंकरण' एवं अन्य सम्मान।

दुष्यंत की प्रविष्टि गजलों में हिंदी गजल की प्रविष्टि बन नई। उन्होंने व्यवस्था विरोध के लिए गजलों को अपना माध्यम बनाया, जिसने लगभग हिंदी गजल का एक डिक्शन तैयार कर दिया। अब गजलें अपने समय और परिवेश की साक्षी बनकर समकालीन समस्याओं से रूबरू कराने लगीं। यहाँ से एक दिशा निर्धारित हो नई कि गजल को इस रूप में कह कर कितना व्यापक और सर्वगामी बनाया जा सकता है। लेकिन मेरा मानना है कि दुष्यंत से कहीं आगे निकलकर कई गजलकारों ने अपने पुरजोर कहन से हिंदी गजल को समृद्ध किया।

हर दशक में अच्छी और कम अच्छी गजलें लिखी जाती रहीं। विषय बदलते गए, ट्रीटमेंट बदला, लहजा बदला। ये परिवर्तन धीरे-धीरे हुए। बदलती जीवन-शैली और हिंदी गजल को समानांतर रखें तो दोनों साथ-साथ चलते और बदलते रहे। और ऐसा होना जरूरी भी था। साहित्य ठहरता कहाँ है, वह तो वक्त की आवाज बनकर सामने आता है और आज हिंदी कविता के समकक्ष यदि गजल खड़ी है तो अपनी इन्हीं चेतनाओं के कारण।

पहले गजल को गजाला, यानी 'हिरनी का आर्तनाद' भी कहा गया। लेकिन गजल इतनी दारुण और कमजोर विधा नहीं है। पुराने समय की बात छोड़ दें तो आज गजल इतनी वृहद, सामयिक और सामाजिक बन चुकी है कि इसे इस परिभाषा से तो परिभाषित कर ही नहीं सकते।

यह परिभाषा मुझे इसीलिए याद हो आई कि मुझे अपने विषय पर

आना है और वह विषय है 'हिंदी गजलों में स्त्री चेतना।' नाम से ही स्पष्ट है कि आज गजल कितनी लंबी और सार्थक यात्रा तय कर चुकी है कि कहाँ तो उसे हिरनी का आर्तनाद कहकर पुकारा गया, कहाँ आज उसमें स्त्री चेतना की बात की जा रही है। जब कोई यात्रा ऊर्ध्वगामी होती है तो यह बहुत अच्छा लक्षण होता है।

जिस क्षण जीवन का आरंभ हुआ था, उसी क्षण शायद स्त्री ने जान लिया था कि प्रेम और सृजन उसके जीवन की अनिवार्यता हैं। अनगिनत रूप, नाम और किरदार जीती हुई, स्वयं से और समय से निरंतर संवाद करती हुई, चलती हुई अथक, अनवरत स्त्री एक सृजक है, पोषक है। जिस तरह किसी भी पक्षी का एक पंख के सहारे उड़ना असंभव है। जिस तरह जड़ के बिना पुष्प का खिलना असंभव है, उसी तरह इस मानव जीवन का प्रारंभ पुरुष और स्त्री के बिना असंभव ही होता। यह वह समय था, जब कोई भेदभाव न था। तब कोई हिंदू-मुस्लिम जैसी संज्ञाएँ न थीं। कोई वाद न था। कोई सत्ता न थी। स्त्री-पुरुष के चिह्नित होने का आरंभ तो आदम-हव्वा, एडम-ईव, मनु-शतरूपा बनने से हुआ। समान महत्त्ववाले दो जीवन-प्रदाताओं में शनैः-शनैः एक की यात्रा कुछ ज्यादा उतार-चढ़ाव वाली होती चली नई। वह कठिन राह स्त्री की थी। वह कभी राम की मर्यादा और विवशता बन नई, कभी कृष्ण का रास, कभी प्रसाद की श्रद्धा, तो कभी निराला का कोई मेहनतकश चरित्र। कभी शरत की परिणीता, कभी बुद्ध का संदेह और कभी तुलसी की ताड़ना की अधिकारी।

ईश्वर ने न केवल शारीरिक तौर पर पुरुष और स्त्री को भिन्न बनाया बल्कि स्वभावगत भी दोनों भिन्न-भिन्न थे। प्रेम, ममता, दया, करुणा, धैर्य और समर्पण जैसे गुण स्त्री को धरती के रूप में परिभाषित करते तो पुरुष को आसमान के रूप में परिभाषित किया जाता, जो परिवार को छत देता, जिसमें समुद्र का वेग भी होता और पर्वतों सा बल भी होता। यही नहीं, स्त्री और पुरुष की मानसिक बुनावट में भी बहुत अंतर होता है। यह विज्ञान ने भी साबित किया है। मैंने कहीं पढ़ा था कि वैज्ञानिक अनुसंधान के अनुसार पुरुषों के मस्तिष्क का बायाँ भाग अधिक सक्रिय होता है और स्त्री का दाहिना। इसीलिए स्त्री मन पुरुष की तुलना में अधिक संवेदनशील होता है। यह तो ईश्वरीय अंतर था लेकिन एक बड़ा अंतर समाज में स्त्रियों की स्थिति को लेकर आता चला गया। इन स्थितियों को बदलने की पुरजोर कोशिश हुई और विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के प्रति सम्मान, प्यार प्रकट करते हुए उनकी उपलब्धियों के उपलक्ष्य में अनेक उत्सव मनाए जाने लगे। उनकी स्थितियों को लेकर अनेक वार्त्ताएँ व विमर्श होने लगे।

ईश्वर ने न केवल शारीरिक तौर पर पुरुष और स्त्री को भिन्न बनाया बल्कि स्वभावगत भी दोनों भिन्न-भिन्न थे। प्रेम, ममता, दया, करुणा, धैर्य और समर्पण जैसे गुण स्त्री को धरती के रूप में परिभाषित करते तो पुरुष को आसमान के रूप में परिभाषित किया जाता, जो परिवार को छत देता, जिसमें समुद्र का वेग भी होता और पर्वतों सा बल भी होता। यही नहीं, स्त्री और पुरुष की मानसिक बुनावट में भी बहुत अंतर होता है। यह विज्ञान ने भी साबित किया है।

साहित्य में स्त्री के अस्तित्व का रेखांकन एक दस्तावेज से कम नहीं है। स्त्रियों ने जब साहित्य में अपना मन अभिव्यक्त किया तो सृष्टि में स्त्री की भूमिका और अधिक बेहतर रूप में स्पष्ट हो सकी। हिंदी गजल में स्त्री चेतना का विषय बनना भी अपने आप में बड़ी विडंबना है। जो दमित तबका होता है, उसी की चेतना और उन्नयन की बात भी की जाती है। हिंदी गजल में स्त्री के प्रति यह दृष्टिकोण अब अपना रंग पा गया है। स्वयं स्त्री गजलकार भी उसी दमखम के साथ लेखन कर रही हैं, जिसमें कोई उन्हें महिला लेखन के ही दायरे में केंद्रित न करे। सामान्यता महिला लेखन में उसकी अपनी जिंदगी का अक्स ज्यादा व्यक्त होता है। विडंबना ही है, भारतीय परिवेश में उसकी अपनी जिंदगी कम शोषित और पीड़ित नहीं रह तो अगर वह अपने जीवन के ही इर्दगिर्द घूमती रही तो यह अनायास नहीं था। लेकिन जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन हुआ और स्त्रियाँ अपने अधिकार एवं अस्तित्व के प्रति सचेत हुईं, तब स्त्री चेतना के स्वर भी लेखन में दिखाई देने लगे। इससे पहले 'अबला तेरी यही कहानी' जैसी विवशताएँ ही अधिकतर शेरों में नजर आती थीं।

अधिकतर लोग कहते हैं, महिला लेखन त्याग, प्रेम, समर्पण, परिवार, रिश्तों तक ही सीमित रहता है। लेकिन ऐसा कहते हुए शायद वे लोग भूल जाते हैं कि यही जीवन के मूल्य और व्यक्ति की आधारशिला हैं, जिनसे एक स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। आज जब हिंदी गजल पर सपाटबयानी, नारेनुमा होने का या गजलियत की कमी का आरोप लगता है तो कहीं-न-कहीं गजल से इस तरह की नाजुक अभिव्यक्ति को हेयदृष्टि से देखना भी एक कारक रहा है। स्त्री के स्वभावानुसार कोमल अभिव्यक्ति को अस्वीकृत करना भी। गजल वही होती है, जिसमें कथ्य और शिल्प का संतुलन हो। हिंदी गजल में कथ्य भी सीमित होकर रह गया। सिर्फ व्यवस्था विरोध ही गजल कहने का मकसद प्रतीत होने लगा। इसी खुरदुरेपन ने गजल का नुकसान किया। जिसके कारण हिंदी गजल का स्वरूप बिगड़ा। लेकिन सुखद है कि मौजूदा परिदृश्य में हिंदी गजल में महिला गजलकारों की उपस्थिति न केवल संख्या में बढ़ी है बल्कि उनके कहन में भी सशक्तता और व्यापकता बढ़ी है। वहीं साहित्यिक परिदृश्य में यही चैतन्यता का स्वर हिंदी गजल की भी एक विशेषता बन गया।

कुछ अशआर इस आंतरिक उजास के उदाहरण के रूप में मैं दे रही हूँ। हिंदी गजल के अध्ययेता एवं वरिष्ठ गजलकार श्री कमलेश भट्ट 'कमल' का यह शेर स्त्रियों को घर-संसार तक सीमित रहने को कमतर माननेवालों के लिए करारा जवाब है। घर ही देश की, विश्व की, सभ्यता की नींव है उसको सुदृढ़ता देना सबसे महनीय और आवश्यक कार्य है। उसके प्रति सम्मान रखना एक सहज अनुभूति होनी चाहिए सबके मन में,

उनका भी संसार नहीं छोटा होता, घर तक सीमित जो माँ-बहनें रहती हैं। इसी तरह वे इस शेर में भी लिखते हैं कि किस तरह एक गृहस्थी को सँभालना एक डोर पर चलना होता है और हम कितना महत्त्वहीन समझते हैं उनके श्रम को—

कितने ही जाने-अनजाने डर सँभालती है,
हमको लगता है वह केवल घर सँभालती है।

हिंदी गजल के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले गजलकार डॉ. उर्मिलेश सिर्फ कहने के लिए ही गजल नहीं कहते, बल्कि गजल को लेकर उनके सामने व्यापक दृष्टिकोण है। उन्होंने अनगिनत कोणों से स्त्री की चेतना को शेरों में व्याख्यातित किया है। एक ऐलान करते हुए वे आज की औरत के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहते हैं—

जिनके ख्वाबों में परी बनके उड़ी है औरत
उनसे अब कह दो कि लोहे की छड़ी है औरत
अब नहीं समझे कोई राम भरोसे इसको
अब न पत्थर-सी किसी पथ पे पड़ी है औरत

वरिष्ठ गजलकार अनिरुद्ध सिन्हा का यह शेर स्त्री चेतना की स्पष्ट तसवीर बनाता है—

सदियों की खामोशी सच ने जैसे तोड़ी
चूड़ीवाले हाथों ने तलवार उठा ली

डॉ. भावना गजल के सरोकारों को बहुत संजीदगी से शेरों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। एक स्त्री होने के नाते विशेष तौर पर स्त्री के पक्ष में उनका दर्द उभरकर आता है। स्त्री को जिस तरह एक वस्तु, आकर्षण का केंद्रबिंदु समझा जाता है, वह स्त्री के आत्मसम्मान की क्षति की बात होती है। डॉ. भावना का यह शेर गौरतलब है—

बहुत ही खोखली लगती वहाँ सम्मान की बातें
जहाँ औरत की हर चर्चा बदन पर आके रुकती है

आर्थिक रूप से सक्षम स्त्री को समाज और परिवार से कितना महत्त्व मिलता है, यह प्रत्यक्ष रूप से अच्छी बात लगती है—स्त्री के सम्मान की दृष्टि से भी और शिक्षा के महत्त्व की दृष्टि से भी। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से इसके पीछे एक स्वार्थ भी झाँकता हुआ प्रतीत होता है। ओमप्रकाश यती गजल में आसान शब्दों में बड़े मफहूम पिरो देने के लिए जाने जाते हैं। यहाँ उद्धरित दो शेर उनकी इसी खासियत का परिचय देते हैं। यतीजी कहते हैं—

बहू जब से हुई है अपने पैरों पर खड़ी जब से
बिना सहमति के उसकी फैसला होता नहीं कोई

उन्हीं का ये शेर स्त्रियों के भीतर ईश्वर प्रदत्त हर रिश्ता निबाहने के गुण की ओर संकेत करता है। उनकी यह शक्ति एक परिवार को बाँधे रखने के लिए कितनी बड़ी प्रेरणास्रोत है—

प्रेरणा बहनों से जो लेने लगे हैं
ध्यान वो माँ बाप पर देने लगे हैं

हर परिणाम के पीछे बहुत से कारक होते हैं। चाहे वह भाप से बारिश का बनना हो या भीतरी खदबदाहट से ज्वालामुखी का फटना। आज की स्त्री की मुखरता उस पर अनवरत पितृसत्तामक राज करने का परिणाम है। संध्या सिंह की कलम अकसर सही विरोध के पक्ष में उठती रही है। उनका शेर देखिए—

खबर भी है तुमको कि क्या दे चुके हो
दबी आग को तुम हवा दे चुके हो

के.पी. अनमोल पिछले कुछ वर्षों से हिंदी गजल को लेकर आलोचनात्मक कार्य में उल्लेखनीय नाम बनकर उभरे हैं। गजलों में भी वह कमाल करते हैं। कितनी सादा जबान में उन्होंने इस सच्चाई को सामने रख दिया—

चाहतें थीं अपनी उड़ानें ही रहें अव्वल सदा
औरतों के पाँवों में तब बेड़ियाँ रक्खी नई

माधवी शंकर देखिए, क्या कह जाती हैं। वह सीधे-सीधे सवाल उठाती हैं पुरुष और उसकी विचारधारा से कि आप होते कौन हैं हमें हमारा हक देनेवाले—

हमसे कहा गया था कि रानी बनेंगी आप,
यानी कि खुद को पहले ही राजा कहा गया।

स्त्री अपने आप में एक मुकम्मल तसवीर है। उसकी बराबरी खुद उससे है। इसी स्वीकारोक्ति के लिए माधवी कहती हैं—

माँ बाप खुश हैं बेटियाँ काबिल जो हो गईं,
बेटी का दुःख है यह उसे बेटा कहा गया।

भावना श्रीवास्तव का ये शेर पुरुष के अहम का कितना सच्चा उदाहरण है—

अगर वह छोड़ दे सारे गुमाँ कैसा लगेगा,
जमीं के साथ चलता आसमाँ कैसा लगेगा।

निर्मल आर्या बहुत खूबसूरती से फूल की तरह चुन-चुनकर गजल में शेर और शेर में शब्द तथा भाव सजाती हैं। उनके कई शेर मुझे पसंद हैं। उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत कर रही हूँ।

कुछ देर के लिए खामोश कर जाती हैं वे चिंतन करने के लिए। उनके ये तीन शेर पढ़िए—

तुम्हारे गाँव की कच्ची सड़क पर
दुपट्टा खुद ही सर पर आ गया है
घूँघट हटा तो आँख की बीनाई बढ़ नई
जुम्बिश पे पुतलियों का पहरा बहुत हुआ
धनक को चूम लो उठो कि खोल दो जूड़े
मुझे बँधी हुई औरत उदास करती है

सिया सचदेव एक स्त्री के एहसासात को जिस तरह से बयाँ करती हैं, वह वास्तव में बहुत गहन और संवेदित करनेवाली बयानगी होती है। उन्होंने अपनी अलग पहचान भी इसी रंग में बना ली है। देखिए, कितना सच्चा शेर कहा है उन्होंने—

जो जिम्मेदारियाँ किस्मत ने मेरे सर रख दीं
तो फिर नजाकतें मैंने उठा के घर रख दीं

स्वाभिमान से लबरेज एक स्त्री की आवाज है सिया सचदेव का

यह शेर भी—

मान लेती मैं तुम्हारी भी हर इक बात मगर
तुमने जो बात कही क्या वो मिरे कद की थी

संजू शब्दिता हर बार अपने कहन से चौंकाती हैं। ये शेर अपने आप में कई जिंदगियों की दास्तान हैं। न जाने कितनी उड़ानें इस तरह भी रोक दी गईं। चिड़ियों को यह महसूस करवाया गया कि उनके पंखों में जान नहीं। ये चिड़ियाँ वे स्त्रियाँ थीं, जिनके आत्मबल पर बार-बार प्रहार किया गया। उन्हीं की आवाज बनकर यह शेर बड़ी बात कहता हुआ प्रतीत होता है—

हार का लुत्फ भी उठा लेंगे
इक दफा कामयाब होने दो

पूनम प्रकाश का मजबूत कहन अपने स्त्री और पुरुष के सहअस्तित्व का पुरजोर समर्थन करता है। वह कहती हैं—

गलत इम्कान होती जा रही हूँ
कि मैं आसान होती जा रही हूँ
तुम्हारे फैसलों के डर है वाजिब
मैं नाफरमान होती जा रही हूँ

हिंदी गजल एक सर्वप्रिय विधा के रूप में अपनी एक स्थापना पा चुकी है, उसके पीछे अनुभूति के कलेवर का समय के साथ बदलना रहा। समय से बात करती हुई विधा नदी की तरह होती है, जो निरंतर अपने पथ पर अग्रसर रहती है। इसी के अंतर्गत अपने परिवेश के यथार्थ को व्यक्त करती हुई हिंदी गजल वर्तमान समय में अपने लिए जीनेवाली स्त्री, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करनेवाली स्त्री, अपने अस्तित्व पर गर्व करनेवाली स्त्री, यानी एक चैतन्य स्त्री की मनोभावनाएँ समोए हुए अपने आपको और समृद्ध एवं पूर्ण कर रही है। सा.अ.

'नमन' प्रोफेसर्स कॉलोनी
बदायूँ-२४३६०१ (उत्तर प्रदेश)
दूरभाष : ९८३७०६५०७६

गजलें

● **संदीप राशिनकर**

जाने-माने लेखक एवं चित्रकार। कई अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में चित्रों का चयन व प्रदर्शन। राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में हजारों चित्रों/रेखांकनों का प्रकाशन, अनेक प्रतिष्ठित प्रकाशनों की पुस्तकों के आवरण। भित्ति चित्रों (म्यूरल्स) के क्षेत्र में अनेक स्थानों/प्रतिष्ठानों पर भव्य म्यूरल्स का सृजन एवं अभिनव प्रयोगों से इस शैली में प्रतिष्ठित कार्य। कविताओं के अलावा कला एवं साहित्य-संस्कृति पर समीक्षात्मक लेखन/प्रकाशन।

: एक :

धरती और आकाश चाहिए
सब कुछ अपने पास चाहिए

पर लग जाने से क्या होगा
उड़ने को आकाश चाहिए

काट के रख दे अपनी जुबाँ जो
उनको ऐसा दास चाहिए

थोड़ा कपड़ा थोड़ी रोटी
छोटा सा आवास चाहिए

इंसानों की नहीं जरूरत
चलती-फिरती लाश चाहिए

ग्रहण लगे सूरज से बोले
हमको तो प्रकाश चाहिए

: दो :

हृदय में एक दाग शेष है
मन में दबी कुछ आग शेष है

प्रेम के रंगों की वर्षा हो
ऐसा पावन फाग शेष है

कंठ नहीं पसली से निकले
आर्त भूख का राग शेष है

दमन किया है कालिया का
जहर भरा इक नाग शेष है

जिसमें हम तुम फूल खिलाएँ
प्रेम का ऐसा बाग शेष है

: तीन :

यारो अब कुछ ऐसा कर दो
चेहरों को खुशबू से भर दो

सिलसिला कब तक खामोशी का
अब अपने साजों को स्वर दो

चाँद से कब तक बात करें हम
अब तो सुनहरी एक सहर दो

कैसे हैं उस देश के वासी
ठंडी हवाओं कुछ तो खबर दो

हँसते गाते जिसपे चलें हम
उन्मुक्त ऐसी रहगुजर दो

: चार :

वासना भी आँख हो गई
भावना भी राख हो गई

ऑफिस में बाजारों में अब
भ्रष्टाचार ही साख हो गई

कैसे जाऊँ अपने घर को
ऊँचाई लद्दाख हो गई

याद भी अब तो आए ना उसकी
वो भी अब गुस्ताख हो गई

सा.अ.

११-बी, राजेंद्र नगर, इंदौर-१२
दूरभाष : ९४२५३१४४२२

एक नन्हे सितारे के नीचे

मूल : **मारिया विस्लावा एना सिंर्बोस्का**

अनुवाद : **बंशीधर तातेड़**

२ जुलाई, १९२३ को पोलैंड में जनमी मारिया मानव-अस्तित्व, इतिहास, वानस्पतिक, दुःख और करुणा के भावों से ओत-प्रोत कविताओं के लिए चर्चित रही हैं। इस ख्यातनाम कवयित्री को १९९१ में गोईथी, १९९५ में हर्डर और १९९६ में साहित्य के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। उनकी एक लंबी कविता का हिंदी रूपांतर हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं–

मैं माफी माँगती हूँ अवसर से
जिसको मैंने आवश्यक समझा,
मैं माफी माँगती हूँ आवश्यकता से
जिसको मैंने कोई दूसरा नाम दिया।
कृपया मैं माफी माँगती हूँ खुशी से
जो मेरे से नाराज हो गई,
इसलिए यह खुशी मेरे लिए आज भी बाकी है।
मैं माफी माँगती हूँ उन मरे हुए लोगों से
जो आज यादों की तरह धुँधले हो रहे हैं।

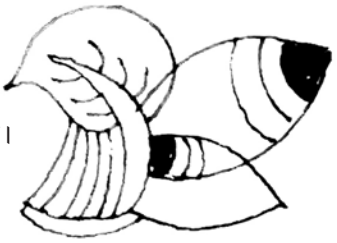

मैं माफी माँगती हूँ समय से
जिसमें मैंने हर अच्छी-बुरी चीज की उपेक्षा की।
मैं उस पुराने प्यार से माफी माँगती हूँ
जिसकी मैं कद्र नहीं कर सकी
और हर मिलनेवाले नए प्यार को
मैंने नूतन और पहला प्यार कहा।
मैं माफी माँगती हूँ, युद्धों में शहीद हुए उन लोगों से
जिनके फूल मैं घर ले आई, जो मुझे
उनकी कब्र पर सम्मान के रूप में अर्पित करने थे।

माफ करो, मेरे उन पुराने जख्मों को
जिन्हें मैं दोहरा रही हूँ,
जो मुझे अपने अतीत की याद दिलाते हैं
लेकिन एक छोटी सी चुभन मेरी उँगली में हुई
तो मैंने वह दर्द महसूस किया
जिसे लोग अत्यधिक होने पर महसूस करते हैं।

मैं माफी माँगती हूँ अपने लंबे समय के लिए
उन लोगों से जो अंतर्मन से रोते हैं।
मैं माफी माँगती हूँ उन लोगों से, जो रेलवे स्टेशन पर
इंतजार करते सुबह पाँच बजे तक सो जाते हैं।
मैं माफी माँगती हूँ आशा से
जिसको मैंने कभी गंभीरता से नहीं लिया
वर्तमान जगत् की परिस्थिति को देखते हुए।

मैं माफी माँगती हूँ उस रेगिस्तान से, जिसके लिए मैं
एक चम्मच भर पानी नहीं ले जा सकी।
मैं माफी माँगती हूँ उस बाज से
जो कई वर्षों तक उस पिंजरे में बंद रहा
जो शिकार करनेवाला स्वयं शिकार बन गया और
उसकी नजर आज भी आसमान को देख रही है।
मुझे माफ करो, यदि तुम मुझसे नाराज हो।
मैं माफी माँगती हूँ उस गिरे हुए पेड़ से
जो किसी मेज की चार टाँगें बन गया।

मैं माफी माँगती हूँ उन बड़े प्रश्नों से
जिनके मैं छोटे उत्तर दे सकी।
मैं माफी माँगती हूँ उस सत्य से

कि तुम मेरी ओर ध्यान मत देना
क्योंकि तुम्हारा सामना करना कठिन है।
मैं कहती हूँ उस गंभीरता और गरिमा को
कि तुम मेरे प्रति दयालु बनो।
मैं माफी माँगती हूँ अस्तित्व और व्यक्तित्व के रहस्यों से
क्योंकि मैंने उन पर भी प्रश्न खड़े किए हैं।

हे आत्मा! तुम मुझे दोष मत दो
तुम्हें मेरे पास रखने के लिए
लेकिन मुझे अफसोस है कि मैं उन संभव चीजों के लिए
उन स्थानों पर तुरंत नहीं जा सकी, जहाँ मुझे जाना चाहिए।
अत: मैं उन सभी चीजों से उन स्थानों पर नहीं
पहुँच पाने के लिए माफी माँगती हूँ।
मैं माफी माँगती हूँ प्रत्येक व्यक्ति से
जिनके लिए मैं न तो महिला बन सकी और न पुरुष।
मैं जानती हूँ मैं कभी न्यायसंगत या संतुष्ट
नहीं रहूँगी, जब तक मैं जिंदा रहूँगी।

चूँकि अपनी जिंदगी में मैं स्वयं ही बाधा हूँ

सुपरिचित लेखक एवं अनुवादक। अब तक 'आँख अै धन को', 'सुनहरी धूप से संवाद' (हिंदी गजलें), 'कर्म का अटल सिद्धांत'। 'धोराँ खिल्या गुलाब' (राजस्थानी काव्य), 'कितनी सुहानी भोर' (हिंदी गीत)। तीन दर्जन विदेशी लेखकों की कहानियों और कविताओं का राजस्थानी में अनुवाद। 'स्टेट अवार्ड २०१५', 'पद्मश्री मगराज जैन सम्मान' एवं अन्य सम्मान।

मेरी बुरी इच्छा एवं बुरे शब्दों से
मुझे सहन मत करो,
मैं तो भाषण की ऋणी हूँ
लेकिन इन्हीं भाषणों से मैंने वजनदार शब्द निकाले हैं
जिन पर अथक परिश्रम करने के बाद
वे शब्द तुम्हें हल्के नजर आ रहे हैं।

केशर कुंज, स्कूल नं. ४ के पास,
बाड़मेर-३४४००१ (राज.)
दूरभाष : ९४१३५२६६४०

लघुकथा

ड्यूटी

• सुनीता शानू

रविवार का दिन था। छुट्टी का दिन, यानि सबकी ऑफिशियल छुट्टी।

माँ नाश्ता बना ही रही थी कि बेटे ने आकर कहा, 'माँ, आप बहुत काम करती हो, एक दिन आपको भी आराम करना चाहिए, आज का खाना हम मैनेज कर लेंगे, चलो आप आराम करो।'

बेटे की बात सुनकर माँ की आँखों में पानी आ गया, भला आजतक किसने सोचा था कि माँओं को भी आराम चाहिए, घर की औरतें खुद को चौबीस घंटे का एंप्लॉई ही मानकर चलती हैं।

फिर भी बेटे ने जिद पकड़ ली तो माँ कमरे में आकर आराम करने लगी।

बहुत देर बीत गई, खाने के लिए किसी की आवाज नहीं आ रही थी, भूख भी तेज हो गई थी, माँ उठकर रसोईघर में आई तो देखा, वहाँ तो कोई नहीं था।

हैरानी से बेटे का दरवाजा खटखटाया, बेटा खाने में क्या है, बेटा-बहू कोई फिल्म देखने में लगे थे, सुनते ही बेटे ने कहा, 'माँ हम दोनों तो आज ब्रेड खा रहे हैं, आप अपना देख लिजिए क्या खाना है।'

'अरे, घर के बाकी लोग भी तो हैं, तेरे दादा-दादी हैं, वे क्या खाएँगे?' माँ परेशान हो उठी।

बेटे ने कहा, 'आज सब अपना-अपना देख लेंगे, आप आराम करो बस।'

माँ ने सुना और चुपचाप रसोईघर में चली गई। इतनी जल्दी दाल-चावल ही बन सकते थे, अत: वही बनाकर सबको परोस दिए।

बेटे ने भी खाते हुए शिकायत के लहजे में कहा, 'आपको कितना भी कहो, आराम नहीं होता। मैं बोला था न, आज सब अपना-अपना देख लेंगे, आप छुट्टी कर लो।'

माँ मुसकराई और बोली, 'रहने दे बेटा, यह घर है, दफ्तर नहीं है।'

अंगदान

वे आँख में पानी भरकर बोले जा रहे थे, 'मेरी आँखों से अधिक दिखाई नहीं देता, दाँत सब नकली हैं, घुटनों का दर्द बढ़ता जा रहा है, हड्डियाँ चटकती हैं, गुर्दों की बीमारी है, और भी न जाने कितनी बीमारियों को लिये यह खाल भी लगभग चिपक गई है। इस शरीर में कुछ नहीं बचा है, परंतु मैं चाहता हूँ कि मेरे मरने के बाद यह शरीर किसी के काम आ सके।'

२०३/६, भूतल, गली नं. ५, पद्म नगर
किशनगंज, दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ०८८६०५९५९३७

स्मरण

महाराष्ट्र के लाड़ले लोकप्रिय लेखक पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे

● **अशोक वाधवाणी**

पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे मराठी लेखक होने के साथ-साथ शिक्षक, गायक, कलाकार, नाटककार, संगीतकार, निर्देशक आदि थे। कहने का तात्पर्य कि वे हर भूमिका में फिट और हिट थे। महाराष्ट्र की बात करें तो लिखने-पढ़ने में रुचि न रखने वाले भी उनके नाम से भली-भाँति परिचित हैं। पु.ल. दूसरों का दुख-दर्द बाँटने वाले दिलदार, दयावान, दानवीर थे। वे व्यंग्य विधा के धाराप्रवाह बहने वाले ऐसे झरने थे, जिनके कुछ छींटें, फुहारें भी शरीर पर पड़ जाएँ तो आदमी आनंदविभोर हो उठे। वे सही अर्थों में उमंग, उत्साह, उल्लास, ऊर्जा के उत्कृष्ट उदाहरण थे। उनके निकटवर्ती उन्हें आदरपूर्वक पु.ल. या भाई संबोधित करते थे। मजे की बात यह है कि उनकी पत्नी सुनीता ताई भी कभी-कभार उन्हें भाई कहती थीं। आइए, उनके जीवन से जुड़े रोचक-मनोरंजक किस्सों का आनंद लें। कोल्हापुर में नाट्य दौरे के दौरान पु. ल. के नाटक की एक अभिनेत्री गले में पहने जाने वाले सुनहरे हार 'कोल्हापुरी साज' का गुणगान गाते हुए किसी महिला से कह रही थी, 'वाह! कितने सुंदर नमूने हैं 'कोल्हापुरी साज के।' अद्‌भुत कारीगरी, आकर्षक डिजाइन और भारी-भरकम इतने की हार गले में डालने के बाद कुछ पहनना जरूरी न लगे। अभिनेत्री की उत्साह भरी बातें सुनने के बाद पु. ल. ने शरारत भरी दृष्टि से देखते हुए उनसे पूछा, "सच कह रही हो क्या?" प्रश्न के पीछे छुपे रहस्य को समझते ही अभिनेत्री झेंप गई।

उनके सुप्रसिद्ध मराठी नाटक 'सुंदर मी होणार' (सुंदर बनूँगी मैं) पर 'आज और कल' शीर्षक से हिंदी फिल्म बनी। दुर्भाग्यवश वह चली नहीं। किसी ने फिल्म के पिट जाने का कारण जानना चाहा तो पु.ल. ने जिंदादिली दिखलाते हुए तत्परता से कहा, "अपने शीर्षक अनुसार दो दिन चली—आज और कल।"

पु.ल. हाजिरजवाबी में बचपन से ही माहिर थे। एक बार स्कूल में किसी छात्र ने उनसे पूछा, "अरे देशपांडे, तुम्हारे पूर्वज गोबर बेचते थे क्या?"

"हाँ बिल्कुल। क्योंकि तुम्हारे पूर्वज खाते थे, इसलिए बेचते थे।" पु.ल. द्वारा तुरंत जवाब देने पर उस छात्र की बोलती बंद हो गई।

एक बार पु.ल. अपनी पत्नी सुनीता और वसंतराव देशपांडे के साथ कार में बैठकर जंगल भ्रमण कर रहे थे। अचानक उनकी कार के आगे एक जंगली भैंसा आक्रमण की मुद्रा में आकर खड़ा हो गया। गुस्से से सभी को घूरने लगा। तभी वसंतराव ने सुनीता ताई से अंग्रेजी में कहा, "आई थिंक ही इज गोईंग टु चार्ज।" इसपर पु.ल. ने चुटकी लेते हुए अपनी पत्नी से कहा, "भैंसे को समझ में न आए, इसीलिए वसंतराव अंग्रेजी में बोल रहे हैं।" थोड़ी देर पहले जो भय का वातावरण था, वह अब हँसी में बदल गया।

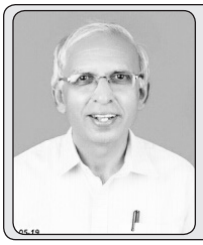

सुपरिचित लेखक। देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न विधाओं में रचनाएँ प्रकाशित। देवनागरी, सिंधी, हिंदी, मराठी, कन्नड़ भाषाओं में भी लेखन कार्य।

पु.ल. तब आकाशवाणी में काम करते थे। उनके साथ किए गए अनुबंध अनुसार अवधी समाप्त होने से पहले पारिश्रमिक बढ़ाया नहीं जाता था। एक बार आकाशवाणी में २७ केंद्रों के प्रमुख संचालक आए। पु.ल. के पेट की ओर इशारा करते हुए बोले, "आपका पेट काफी बढ़ गया है।" "दिस इज द ओन्ली इन्करीमेंट आई ऐम गेटिंग।" पु.ल. का जवाब सुनकर उनका आशय उनकी समझ में आ गया।

नंद कुमार चावला आकाशवाणी के सहायक निर्देशक थे। गांधी जयंती पर कौन-कौन से कार्यक्रमों का आयोजन करना है, इस बाबत बैठक बुलाई गई थी। सभी ने सुझाव पेश किए। पु. ल. की बारी आई तो उन्होंने अपनी राय देते हुए कहा, "महात्मा गांधीजी को मौन प्रिय था। मेरे विचार से उनकी जयंती पर आकाशवाणी को भी एक दिन मौन का पालन करना चाहिए, कोई भी कार्यक्रम प्रस्तुत न करके।" उनके सुझाव पर सभी दिल खोलकर हँसने लगे।

घोड़े और गधे के गहरे अर्थ को परिभाषित करने वाली बातें पु.ल. की शैली में—"हमारे जमाने में जन्मदिन शब्द प्रचलित नहीं था। जीवन के नववर्ष की घोषणा इन शब्दों से होती थी, "घोड़ा नौ साल का हो गया, तो भी पट्ठा लुढ़का पड़ा है, गधे की तरह। सिर्फ गधे की तरह कुलाँचे मारने का अधिकार घोषणा करने वाले के पास सुरक्षित रहता था।"

पु.ल. का जन्म दिन था। उनके एक प्रशंसक, जोकि फलों के व्यापारी थे, ने पु.ल. के गले में सेबों का हार पहनाया। हार पहनते ही पु.ल. थोड़ा झुके। यह देखकर व्यापारी ने उनसे पूछा, "क्यों सर? ऐसी क्या बात हो गई?" अच्छा हुआ, आप नारियल के व्यवसायी नहीं हैं···पु.ल. ने मुसकराते कहा तो वहाँ उपस्थित सभी लोग हँसने लगे।

एक बार पु.ल. को कुकरी सेट गिफ्ट में मिला। वह सेट पु.ल. की पत्नी अपनी भतीजी को दिखा रही थीं। उनके द्वारा सब कुछ जतन से रखने की प्रवृति से परिचित भतीजी ने कहा, "अरे, इतना सुंदर सेट टूटना नहीं चाहिए, इस भय से आप इसका उपयोग नहीं करेंगी क्या?" यह सुनते ही पास में उपस्थित पु. ल. ने तुरंत कहा, "सुनीता तो मुझे ऑमलेट तक बनाकर नहीं देती अंडे टूटने के डर से।"

एक बार वसंतराव देशपांडे ने सुनीता ताई की ओर इशारा करते कहा,

"यह लड़की (पु.ल. की पत्नी) तुम्हारे लिए रत्न है।" पु.ल. ने हाजिरजवाबी के हुनर का परिचय देते हुए कहा, "इसीलिए तो मेरे गले पड़ी है।"

लोकमान्य तिलक ने जिस महान् उद्देश्य से गणपति उत्सव आरंभ किया था, उसके बिगड़ते रंग-रूप, बढ़ते ध्वनि प्रदूषण, जुलूस के साथ किए जाने वाले विकृत पद्धति के नृत्य देखकर उन्होंने अपनी बेबाक प्रतिक्रिया देते हुए कहा था, "आजकल मुझे लगता है 'गणपति बप्पा' अब 'गणपति पप्पा' हो गए हैं।"

पु.ल. की आखिरी मराठी फिल्म थी 'गुळाचा गणपति' (गुड़ का गणपति)। कथा, पटकथा, संवाद, गीत, निर्देशन, यहाँ तक कि फिल्म के नायक भी वे खुद थे, सिवाय निर्माता के। फिल्म जबरदस्त हिट हुई। पु. ल. को क्या मिला? पुणे (महाराष्ट्र) में जब यह फिल्म प्रदर्शित हुई, तब उन्हें फिल्म देखने के लिए आमंत्रित तक नहीं किया गया। पु.ल., सुनीता ताई और मंगेश राजाध्यक्ष, इन तीनों ने टिकट खरीदकर सिनेमा हॉल में पहला शो देखा था।

ऐसा बहुत कम होता है कि किसी साहित्यकार के व्यक्तित्व और कृतित्व पर कोई बायोपिक बने और उसे दर्शकों की दाद भी मिले। निर्देशक महेश मांजरेकर ने मराठी में भाई शीर्षक से दो भागों में उनपर फिल्म बनाई, जोकि पु.ल. की लोकप्रियता को दरशाने का पुख्ता प्रमाण है।

गांधीनगर, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ९४२१२१६२८८
ashok.wadhwani57@gmail.com

लघुकथा

प्रकाश-पुंज

• पूनम सिंह

आज गरिमा को फिर से ऑफिस से निकलने में देर हो गई। बाहर चारों तरफ रोशनी के बावजूद भी सन्नाटा छाया हुआ था। अपने आप को सँभालते हुए किसी अनजान भय से आशंकित तेज कदमों से घर जल्दी पहुँच जाना चाहती थी।

नई-नई नौकरी लगी थी। नौकरी छूट ना जाए इस डर से बॉस से कुछ कह भी नहीं पाती थी। महीनों के मशक्कत के पश्चात् यह नौकरी मिली थी। फिर मजबूरी भी थी। घर में बूढ़ी माँ और दिव्यांग भाई की सेवा के लिए पैसे कहाँ से जुटाती। माँ के फैमिली पेंशन से घर का खर्चा भी पूरा नहीं हो पा रहा था।

इन्हीं खयालों में खोई तेज कदमों से चली जा रही थी कि तभी उसे महसूस हुआ, जैसे कोई उसका पीछा कर रहा है। उसने हल्का गरदन घुमाकर देखा तो एक काले साये का एहसास हुआ। उसने अपने कदमों की रफ्तार और बढ़ा दी। पर वह जितना बढ़ाती, उस काले साये को और अपने नजदीक पाती। गरिमा डर से काँपने लगी। फिर उसने हिम्मत कर एक बार और पीछे मुड़कर देखने की कोशिश की तो वह काला साया गायब था।

उसका मन थोड़ा स्थिर हुआ और उसकी जान में जान आई। जैसे ही आगे बढ़ने को हुई कि अचानक उसने अपने सामने एक लंबे-चौड़े अनजान व्यक्ति को खड़ा देख डर से ठिठक गई।

"अरे बहनजी! कहाँ आप इतनी जल्दी-जल्दी भागी चली जा रही हैं? मैं तो आपकी मदद करना चाह रहा था, पर आप रुक ही नहीं रही थीं। इसलिए मुझे इस तरह अचानक आपके सामने आना पड़ा!" आगंतुक ने सरलतापूर्वक कहा।

भला इस सुनसान जगह में कोई अनजान मेरी मदद क्यों करना चाहेगा। गरिमा मन-ही-मन बुदबुदा रही थी कि तभी आगंतुक ने कहा, "आपने शायद ध्यान नहीं दिया, किसी वजनी वस्तु की वजह से आपका पल्लू बार-बार गिर रहा है। इसलिए सँभल नहीं रहा।"

"क्या··· ?" गरिमा ने अचंभित होकर पूछा।

"जी बिल्कुल, आपने ठीक सुना।" गरिमा ने भय से काँपती हुई हाथों से अपना पल्लू आगे की तरफ समेटते हुए देखा तो वैसा कुछ भी नहीं था। उसने काँपती आवाज में कहा, "ऐसा तो कुछ भी नहीं है।"

"जी ध्यान से देखिए, कोई वजनी वस्तु बँधी हुई है।" गरिमा ने फिर से एक बार बहुत ध्यान से निरीक्षण किया, पर कहीं कुछ नहीं दिखा।

"ऐसा तो कुछ भी नहीं है, भाई साहब। आपको वहम हो रहा है।"

"आप ध्यान से देखिए···भय···बँधा हुआ है, यानी कि आपके भीतर का डर।"

"भय? गरिमा ने चकित होकर पूछा, "भला यह कैसी बात हुई?"

आगंतुक ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, "इस अँधेरी रात में आप किसी अनजान खौफ की आशंका से परेशान होकर बार-बार अपने आपको व्यवस्थित करने की कोशिश कर रही हैं, पर वह भय की वजह से सँभल नहीं रहा है।" गरिमा को आगंतुक की आवाज में थोड़ा अपनापन महसूस हुआ और बहुत गौर से उसकी बात सुनने लगी।

"देखिए, आज-कल के दौर में महिलाएँ भी स्वतंत्र रूप से हर क्षेत्र में कार्यरत हैं और काम के सिलसिले में रात को भी कहीं आना-जाना पड़ता है। समय की नजाकत को देखते हुए अपनी रक्षा हेतु भी उन्हें सजग रहना चाहिए।"

"जी भाईसाहब, मैं आपकी बात समझ रही हूँ, पर यह मेरी मजबूरी है कि कई बार मुझे ऑफिस से देर से छुट्टी मिलती है।"

"आपकी मजबूरी जो भी हो, पर मुसीबत मजबूरी देखकर नहीं आती।"

"किंतु मेरे पास कोई विकल्प भी तो नहीं है।"

"विकल्प है!"

"अच्छा, वह क्या है, कृपया जरा विस्तार से बताइए।"

"आप अपने आपको थोड़ा सक्षम बनाएँ। कहीं से जूड़ो-कराटे का प्रशिक्षण ले लीजिए, ताकि आप अपनी रक्षा स्वयं कर सकें। हिम्मत और आत्मविश्वास के बल पर कोई भी जंग जीती जा सकती है। झाँसी की रानी एक कुशल योद्धा थी। हिम्मत और आत्मविश्वास के बल पर उन्होंने फिरंगियों को मार भगाया और वे झाँसी वाली रानी के नाम से प्रसिद्ध हुईं।"

आगंतुक ने गरिमा के भीतर बैठे भय को निर्मूल कर अभय बना दिया। गरिमा उसके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर अँधेरे को चीरती हुई प्रकाश-पुंज की ओर अग्रसर हुई।

सी-१२/१२, सेक्टर-३
रोहिणी, दिल्ली-११००८५
दूरभाष : ९८१०८४२१०५

बुंदेलखंड की लोकसंस्कृति के परिचायक लोकगीत

• दीपिका विजयवर्गीय

भारत में लोकगीतों की परंपरा अत्यंत प्राचीन और व्यापक है। प्रत्येक उत्सव, पर्व, त्योहार, विवाह आदि के अवसर पर गीत गाने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। विश्व की लगभग प्रत्येक जाति और क्षेत्र में गीत गाए जाते हैं। प्रत्येक क्षेत्र के लोगों के संस्कार और रीति-रिवाज संबंधी विविधता के बावजूद इन गीतों की विषयवस्तु में बहुत साम्यता देखने को मिलती है। लोकगीत लोक-जीवन का गीत है, जो सागर की लहरों द्वारा व्याकुल क्षणों में कूलों पर लाए गए अनमोल रत्नों की तरह सामान्य जन-जीवन की वाणी द्वारा सुख-दु:ख की चरम अनुभूतियों में स्वत: उद्‌भूत होते रहते हैं। लोकजीवन की भावनाओं की सही अभिव्यक्ति लोकगीतों के द्वारा ही होती है। लोकगीतों के उद्‌गम के संबंध में देवेंद्र सत्यार्थीजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि 'कहाँ से आते हैं इतने गीत! स्मरण-विस्मरण की आँख-मिचौली से! कुछ अट्‌टहास से! कुछ उदास हृदय से। कहाँ से आते हैं इतने गीत! जीवन के खेत में उगते हैं ये सब गीत! कल्पना भी अपना काम करती है, रसवृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोर भी, पर ये सब खाद हैं। जीवन के सुख, जीवन के दु:ख, ये हैं लोकगीतों के बीज।' लोकगीत विभिन्न भूखंडों पर फैले हुए अपने धर्म, विश्वास और परंपराओं पर आश्रित मानव-मन के वे भाव-चित्र हैं, जिनमें कृत्रिमता का अभाव एवं भोली-भाली जनता के हृदय का सहज उद्‌गार निहित है।

लोकगीतों के उद्‌भव के संबंध में लोक-साहित्य के हस्ताक्षरित विद्वान् डॉ. सत्येंद्र कहते हैं कि 'जब लोकमानस आनंद से गद्‌गद हो उठता है या वेदना का प्रीत प्रवाहित होने लगता है तो स्वत: प्रेरित भाव लहरियाँ लोकमानस में प्रवाहित होने लगती हैं। ये ही लहरियाँ लोकगीत के नाम से अभिहित होती हैं। इसकी रचना का न कोई स्वरूप है, न नियमावली, न ही लोकमानस के मूल रचयिता का पता।'

बुंदेली लोक-संस्कृति और लोकगीतों की पहचान बुंदेलखंड में प्रचलित विभिन्न कलाओं, लोक-विश्वासों, रीति-रिवाज, वस्त्राभूषण, खान-पान के रूप में होती है। यही तथ्य बुंदेलखंड की लोक-संस्कृति और लोक-परंपरा का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। भारत की हृदयस्थली बुंदेलखंड में धर्म-भावना का जागरूक स्वरूप विभिन्न पर्वों, त्योहारों, अनुष्ठानों एवं धार्मिक क्रिया-कलापों में परिलक्षित होता है। कार्तिक स्नान महिलाओं का एक माह का ऐसा अनुष्ठान है, जिसका आरंभ आश्विन शुक्ल अर्थात् शरद पूर्णिमा से होकर समापन कार्तिक पूर्णिमा को होता है। कार्तिक स्नान का अनुष्ठान करनेवाली महिलाओं को 'कतकियारी' कहा जाता है। बुंदेलखंड में कार्तिक स्नान का विशिष्ट प्रचलन है। कार्तिक स्नान का व्रत जातिगत बंधनों से मुक्त है। प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में जलाशय या नदी में स्नान करना होता है और उस समय महिलाएँ गीत गाती हुई वातावरण को संगीतमय बना देती हैं। यथा—

'आ जैहौं बड़े भोर दहीरा लेके आ जैहौं बड़े भोर
बइयाँ गहा जिन नंद के लाल मैं तो बड़ी कमजोर।
दहीरा लेके आ जैहों बड़े भोर
न मानो कुडरी धर राखी मोती जड़े है कड़ोर।' *(दहीरा)*

बुंदेलखंड में 'राछरे' नामक लोकगीत पावस ऋतु में गाए जाते हैं। इस गीत में आनंद, उल्लास एवं करुण रस का समवेत स्वर देखा जा सकता है। प्रस्तुत गीत में 'राछरे' का एक उदाहरण दृष्टव्य है—

'बदरिया रानी बरसौ बिरन के देस।
कानाँ से आई कारी बदरिया,
कानाँ बरस गए मेह।
बदरिया‥।'

सुपरिचित लेखिका। अब तक अनेक पुस्तकों का लेखन, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में शोध-पत्रों का निरंतर प्रकाशन, राजस्थान विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य।

ऋतु गीतों के अंतर्गत आनेवाली बुंदेली लोक-रागनी को 'सैर' नाम से जाना जाता है। 'सैर' छंद के पूर्व एक दोहा व सोरठा आदि के बंध लगाकर प्रस्तुत करने की पद्धति का विकास हुआ, जिनको 'छुमका' नाम से संबोधित किया गया है—

'बुद्धिमान पंडित चतुर सावधान निरज्ञात।
कोऊ बात बाजी समय, बाज आन के खात॥'

बुंदेलखंड में फागुन का महीना बड़ा ही मस्ती का होता है। अपनी खुशी रंग, गुलाल और नृत्य के द्वारा प्रकट करते हैं। इस अवसर के बहुत से गीत हैं, इनमें सबसे ज्यादा लोकप्रिय ईसुरी के फाग हैं—

'अबरित आई बसंत बहारन, पान फूल फल डारन।
हारन् हदद् पहारन, धाम धबल जल धारन।'

बुंदेलखंड में ऋतुपरक गीतों के अतिरिक्त संस्कार गीतों का भी अपना अलग महत्त्व है।

जन्मोत्सव के उत्सव पर गाए जानेवाले बधाई गीत की एक बानगी—

'बधाये बधाये सुहाय री, चलो नंद पर आज बधाये दी।
सो जसोदा ने ललना जाये, उपजे कुँवर कन्हाई री!'

विवाह गीत भी मनमोहक हैं। मंडप के दिन मंडप को हरे बाँस, छेवले की लकड़ी से सजाया जाता है। शाम को औरतें पंगत पर इकट्ठा होकर गीत गाती हैं—

'रुनक झुनक बेटी मंडप डौले, आजुल लये हैं उठाय।
कै मोरी बेटी तुम सांचे की ठारी, कै रूच गढ़े हैं सुनार।'

बुंदेलखंड में विवाह पूर्व विघ्न निवारण गीत, पवन, अग्नि, वर्षा आदि को शांत रहने के लिए प्रार्थना की जाती है—

'तीन दिनां दोई रात, वरन नौंनो मुंदियो।
मूँदों मूँदों जिठानियाँ की जीभ, वरन् ऐसो मूदियो!'

बुंदेलखंड में संस्कार, ऋतुपरक, पारिवारिक यथार्थ आदि भावों के लोकगीतों के साथ-साथ वीर रस के गीत भी मिलते हैं। लोकगीतों में ही शुद्ध भारतीय संस्कारों के दर्शन होते हैं। इसके साथ ही प्रकृति ने मनुष्य को अनमोल उपहार भी दिया—जिजीविषा और संगीत का। संगीत का जन्म सृष्टि के साथ ही हुआ और कालांतर में यह विकसित व परिमार्जित भी होता गया।

भीषण गरमी, असह्य शीत में किसानों को खेतों की निराई-गुड़ाई करते या महिलाओं, बच्चों और बूढ़ों को घुटनों तक पानी में घंटों अपने काम में डूबे रहते हुए भी उनके होंठों से मधुर स्वर-लहरियाँ फूटती रहती हैं। यही है लोकगीतों का उद्‌गम और इन्हीं लोकगीतों में धीरे-धीरे भरते हैं हमारी लोक-संस्कृति और संस्कारों के ढंग, जिनके बोलों की मिठास, किसी भी बंसी की मधुर तान या शर्मीली कोयल की सुमधुर कुहू और पुरवैया या पछियाव की मादकता से कहीं भी कम नहीं है। फिर चाहे ऋतुओं का समागम हो या बारहमासा, कजली हो या चैती, हर अवसर के लोकगीतों की समृद्धिशाली परंपरा ने हमारे समाज के और हमारे देश-काल के संस्कारों को न केवल उजागर किया है, वरन् तार्किकता के आधार पर उन्हें रेखांकित भी किया है।

९९, कटेवा नगर,
न्यू सांगानेर रोड, जयपुर (राज.)

जंगल की बातें

कविता

• राबिया परवीन

उनींदे से दिन और वो जगती सी रातें,
वो आजिल, वो बेपरवाह, मासूम बातें।
वो मद्धिम से रागों से सजती सी बातें,
वो दिलकश से साजों पे बजती सी बातें।
वो पायल की रुनझुन सी बचकानी बातें,
वह भँवरे की गुनगुन सी दीवानी बातें।
वह ऊँचे दरख्त जैसे तुम खोए खोए,
वह लुक-छुप किरण जैसे हम सोए-सोए।
दरख्तों को देकर हरारत वो अपनी,
कहाँ छोड़ती थी शरारत वो अपनी।
वो यादों के जंगल में जुगनू सी बातें,
वो बेसाख्ता लैला-मजनू सी बातें।
तभी घिर के आईं वो काजल की रातें,
किए रूह को छलनी तेरे छल की बातें।
किरण जगती रातों में, जी भर के रोई,
सुबह थक के परबत के पीछे थी सोई।
वो जुगनू भी लौटे घरोंदों को अपने,
के सच के धरातल पे टूटे जो सपने।
जिसे टेसू समझा, मनाया था फाग।
न सोचा था वह वो होगी जंगल की आग।
अभी भी वहीं हैं दरख्तों के ठूँठ,
वो किरणें बनी सख्त गरमी की धूप।
उम्मीदों की लाशों को ढोती सी रातें।
वह छोड़ो दरख्तों की, किरणों की बातें।

रायपुर (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ९७७०९९४५९

गोवा, जरा हट के

• राजेश जैन

गोवा में अकसर लंबे अवकाश पर होने के कारण अनियोजित भटकने का मन हो जाए तो आश्चर्य नहीं, खुद की मानसिकता पर। यों भी पिछले माह (दिसंबर २०२१) में 'गोमांतक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की अध्यक्ष श्रीमती क्रशनी वालके से उनके पंजी निवास में भेंट के समय उनका सुझाव था कि चूँकि अब मेरा एक पैर (बेटे मयंक का पोटरी स्टूडियो के कारण) लगभग गोवा में ही रहनेवाला है तो अवसर मिलते ही मुझे आसपास के ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा कर, उनके बारे में संस्मरण लिखते रहना चाहिए। उनका सकारात्मक सुझाव सर-आँखों पर।

गोवा में सुंदर 'बीच' ही नहीं, खतरनाक साँप भी होते हैं

यह अपनी एक सचित्र पोस्ट (फेसबुक) में पहले बता चुका हूँ। दो वर्ष पूर्व घर का निर्माण होने के एकदम बाद दो बार बड़े साँप (उनमें एक कोबरा था) घर के बगीचे में प्रकट हुए और बिना कोई हानि पहुँचाए अपनी झलक दिखाकर गायब हो गए थे। मयंक ने उनका फोटो फेस बुक पर डालकर सूचना दी थी, 'हमारे वर्तमान घर के आदिवासी।'

इस बार (दिसंबर २०२१) के प्रवास में झाड़ियों की सफाई के बाद चेपल के सामने एक खाली प्लॉट पर शाम एक अजगर का शव दिखाई दिया। तीसरा उदाहरण मोइरा क्लब के सामने पार्किंग मैदान पर दोपहर में एक डंपर ट्रक आया, जिसके चेसिस में एक कोबरा साँप उलझा हुआ था, तमाम कोशिशों के बाद शाम तक वह काबू में लाया गया। गाँववालों को मुफ्त में घंटों 'मदारी सा तमाशा' देखने का अवसर मिला, किंतु फिर उस शाम क्लब के मैदान पर न कोई खेलता हुआ दिखा और न ही कोई घूमता हुआ। अन्यथा प्रतिदिन वहाँ शाम होते ही खेलने और घूमनेवालों की अच्छी-खासी रौनक हो जाती थी।

श्री इन वन

नई जगह पर नए लोगों और स्थानों के साथ-साथ नए पेड़-पौधे, फल-फूल भी मिलते हैं। आकर्षित करते हैं। एक अजनबी किंतु सुंदर चीज मुझे गोवा मोइरा क्लब के सामने, सड़क किनारे एक शाम भ्रमण के दौरान मिली, नहीं समझ पाया, जनाब पौधा या पेड़ थे, फल या फूल? किसी वनस्पति विशेषज्ञ से मदद की दरकार थी···बाद में एक स्थानीय ग्रामीण से पता चला—इस 'श्री इन वन' (फल, फूल और पेड़) वनस्पति को 'केवड़ा' कहते हैं···सब्जी बनती है इसकी तथा तेज खुशबू के कारण आसपास उगे बाँसों के झुंड में इसको 'सर्प-बांबी' का लैंडमार्क भी माना जाता है।

सुपरिचित लेखक। पाँच उपन्यास, सात कथा-संग्रह, आठ नाटक, तीन कविता-संग्रह, तीन ललित-निबंध तथा बाल-साहित्य की कई रचनाएँ प्रकाशित। हिंदी अकादमी दिल्ली, मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी भोपाल, ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट द्वारा कई सम्मान प्राप्त।

तीन मानस देवस्थान और बाँध-प्रसंग

एक दिन बेटी प्रियंका ने सुझाव दिया, 'शाम की सैर के लिए आप डेम तक भी जा सकते हैं'। मोइरा में कोई बाँध भी है—मुझे तब पहली बार पता लगा। अभी तक मापसा जानेवाली सड़क पर मोइरा से निकलते ही जो पहला पुल पड़ता था, उसके नीचे नदी को दोनों ओर बहते देख आश्चर्य करता था—कैसी विचित्र दोमुँहा नदी है यह, कभी इस तरफ तो कभी उलटी तरफ बहती हुई दिखती है!

बाद में शोध से ज्ञात हुआ, यह परंपरागत वैसी मैदानी नदी नहीं है, जिसका उद्गम पहाड़ से होता है और मुहाना कोई बड़ी नदी या समुद्र होता है। इस तथाकथित मीलों लंबी मोइरा नदी के दोनों सिरे अरब सागर से ही जुड़े हैं और ज्वार-भाटा इसके बहाव की दिशा तय करते हैं। स्थानीय लोग इसे दरिया कहते हैं, जिसके आसपास क्षेत्र का स्थानीय कृषि, परिवहन और मछली-उद्योग फलता फूलता है।

यों भी समुद्र तटवाले क्षेत्र मूलत: मछुआरों की ही बस्ती होते हैं। फिर अतीत में यहाँ शासन-सत्ता पर पुर्तगाली हस्तक्षेप के अतिरिक्त महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्यों से सीमा का लगा होना, एक नई मिश्रित (पुर्तगाली, कोंकणी, मराठी और कन्नड़) गोवा-संस्कृति (रहन-सहन, रीति-रिवाज, बोलचाल, वेश-भूषा, रूप-रंग और खानपान) को सामने लाता है, तो आश्चर्य नहीं। यहाँ के मूल निवासियों का सहज, सरल और

सहिष्णुता पूर्ण नम्र स्वभाव तथा व्यवहार, यहाँ की सुखद जलवायु का परिणाम है ही। इसलिए अगर गोवा को 'मिनी इंडिया' से एक कदम आगे 'मिनी वर्ल्ड' कहा जाता है तो अन्यथा नहीं, यों भी यहाँ हर सीजन में अंतरराष्ट्रीय पर्यटकों की भरपूर रौनक बनी रहती है।

आध्यात्मिक एवं वाणिज्यिक पक्ष

क्षेत्र में जगह-जगह, ढेरों गिरजाघर हैं तो हिंदू मंदिर भी हैं। सुभाष ने बताया, 'पौराणिक तौर पर यह शिव-भक्त परशुराम का क्षेत्र है जो शस्त्र धारण (धनुष और फरसा) करनेवाले पहले ब्राह्मण-योद्धा थे और जिन्होंने क्षत्रिय राजाओं से भूमि जीतकर ब्राह्मणों को सौंप दी थी···पुर्तगालियों से भी पहले, यहाँ कदम राजा का शासन था, जिसने कई हिंदू मंदिर बनवाए। यहाँ से तीस किलोमीटर दूर, वास्को-डी-गामा की तरह, उस समय के बड़े अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक केंद्र 'कुदने' में एक जैन मंदिर के सदियों पहले के भग्नावशेष मिले हैं, उसके सामने सूर्य-मंदिर और पांडव-गुफा होने के चिह्न भी पाए गए हैं।'

प्राकृतिक जल-शोधन संयंत्र

तथाकथित डैम के पास 'तीन मानस मंदिर' पुर्तगाली-युग से पहले राजा कदम के जमाने का है, जहाँ उन 'ग्रामदेवता' का वास माना जाता है, जो प्राकृतिक स्तर पर हमेशा रात-दिन, गाँव की रक्षा करते रहते हैं। दरिया पर जो तीन द्वारवाला बाँध पुर्तगाली समय में बना था, वह समुद्र के खारेपन को, रिहायशी दरिया के पानी से अलग करता है। वहाँ गाँव में आसपास पानी में 'खार-फुटी' नामक झाड़ियाँ बेइंतहाँ उगी हुई हैं, जो पानी का खारापन सोख लेती हैं—अर्थात् एक तरह से 'नैचुरल आर ओ'। शायद यह अपनी-अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति कट्टर आस्था का ही परिणाम है कि बाँध पर पुर्तगालियों ने भी एक विशाल 'क्रॉस-चिह्न' (सलीब) को, हिंदू देवस्थान के समकक्ष स्थापित कर दिया, जो अभी भी सम्मानपूर्वक सुरक्षित है।

पंजिम और मापसा से दूर 'वेस्टर्न घाट' (अरब सागर से लगा) के किनारे-किनारे कर्नाटक की ओर बढ़ें तो नया गोवा अपने सुनहरे अतीत के साथ नमूदार हुआ। मोइरा गाँव में पुश्तैनी शतकों से रह रहे पड़ोसी सीनियर सिटीजन सुभाष मापसेकर, अब मेरे मित्र ही नहीं, गोवा-प्रसंग के लिए मेरे गाइड भी हैं। उनसे ही पता लगा, जिस 'अटा फोंदेम' गाँव में हम रहते हैं, पुर्तगाली भाषा में उसका अर्थ है, 'विशाल केली कुंज', 'अटा', यानी हाथी जैसा बड़ा। यहाँ दरिया के आसपास पहले केले के पेड़ों का घना जंगल था, बागों में बड़े-बड़े सूँड़ समान केले के पत्तों और फलों की भरमार के कारण इस जगह का नाम पड़ा, 'अटा फोंदेम', 'बार डेज मापसा' का मतलब, उन्होंने बताया, 'बारह गाँव वाला मापसा शहर'।

कुदने की ओर

और कल ड्राइवर की वादा-खिलाफी से निस्संग, हम खुद गाड़ी लेकर निकल पड़े 'कुदने' की तलाश में, जहाँ पुर्तगाली समय से भी, सदियों पूर्व के हिंदू और जैन मंदिर के अवशेष प्राप्त होने की खबर थी। जैसे ही अल्दोना से बाहर 'मोर्जिम फोर्ट' (पुर्तगाली समय की जेल) और 'फोल्डिंग केबल ब्रिज' (जो जरूरत होने पर मॉल ढोनेवाले शिप के आवागमन हेतु खोल दिया जाता था—लंदन ब्रिज की तरह) पार करके आगे बढ़े तो 'लौह अयस्क' की क्षेत्रीय खदानों के बीच, शानदार विकसित सड़क और आसपास काजुओं के घने पेड़ों से आच्छादित पहाड़ियाँ, एक नए गोवा की झाँकी दिखाने लगीं।

सुभाष ने टिप्पणी की, 'यह हमारे सी.एम. का इलाका है। काजू का जंगल पहले और भी घना था—इस तरफ माइनवाले लोग हैं, काजू के उद्योग भी हैं···देखा, कितने फूल भरे पड़े हैं काजुओं के···हवा में इनकी गंध है और यही जब जमीं पर गिरने के बाद, बारिश के साथ बहते हैं तो जमीं और ग्राउंड वाटर में नैसर्गिक मादकता आ जाती है। जैसे गोवा की जमीं प्राकृतिक रूप से 'डिस्टलरी प्लांट' बन जाती है और बगैर पिए लोग अपनी ही मौज-मस्ती में शांत बने रहते हैं। तुम न भी चाहो, फिर भी स्वाभाविक जलवायु के कारण अनायास नैसर्गिक (सॉफ्ट) पियक्कड़ श्रेणी में तो दर्ज हो ही जाओगे।

भटकते हुए 'कुदने' पहुँचे। वहाँ सदियों पूर्व के भग्नावशेष हैं—एक छोटा जैन मंदिर, जिसमें तीर्थंकर भगवान् की मूर्ति पाई गई थी (सूचना-पट पर दर्ज है), किंतु अब नहीं है। ऐसा लगा, शरीर तो है, पर आत्मा नहीं। उसके सामने सूर्य मंदिर के अवशेष और सामने के टीले पर वनवासी पांडवों की तथाकथित गुफाएँ!

मैदान में आसपास खेल रहे मोबाइलधारी किशोर बच्चों से वहाँ का अतीत जानना चाहा तो उनका दोटूक जवाब था, 'सबकुछ गूगल में मिलेगा। अभी सरकार से डवलपमेंट मंजूर हुआ है, दो-तीन साल बाद आना···तब यहाँ सब ठीक-ठाक रोड और बोर्ड वगैरह मिलेगा।'

मेरे मन का यह सुझाव मन में ही रह गया, 'प्यारे बच्चो, तुम लोग यहाँ हमेशा रहते हो, रोज घूमते-खेलते हो, क्यों नहीं सारी प्रामाणिक जानकारी जुटाकर एक आलेख बना लेते अपनी ही इस ऐतिहासिक जगह के बारे में? शायद विश्वव्यापी इंटरनेट भी तब व्यापारिक हितों से हटकर, हम जैसे जिज्ञासुओं के लिए और अधिक विश्वसनीय तथा समृद्ध हो सकेगा।' सा.अ.

४०, करिश्मा अपार्टमेंट्स
२७, इंद्रप्रस्थ एक्सटेंशन, दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ९७१७७७२०६८

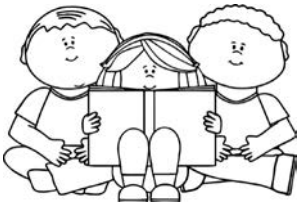

बाल-कहानी

मधुमक्खियाँ

● विष्णु भट्ट

रविवार होने के कारण कॉलोनी के सभी बच्चे मैदान में अपनी-अपनी पसंद के खेल खेल रहे थे। कोई क्रिकेट प्रेमी, कोई फुटबॉल प्रेमी तो कोई सतोलिया प्रेमी, अपनी-अपनी टीम बनाकर खेल रहे थे।

जब कॉलोनी के बच्चे खेल रहे थे, तभी कॉलोनी के मुख्य द्वार से एक युवक अपने हाथ में स्टील की बाल्टी लिए हुए आया। जैसे ही उसने कॉलोनी में प्रवेश किया, उसने ऊँची आवाज में बोला, "लो, ताजा-ताजा शहद लो।"

जोर से चिल्लाने के बाद कॉलोनी के क्वार्टरों की ओर उसने अपने कान लगाकर यह सुनने की कोशिश की कि कहीं किसी ने शहद लेने के लिए उसे बुलाया तो नहीं।

तभी उसने देखा कि उसके जोर से बोलने पर लड़कों ने खेलना बंद कर दिया। वे दौड़े-दौड़े उस युवक के पास आए। मैंने बालकानी से देखा, उन लड़कों में मेरे दोनों लड़के पप्पू और गप्पू भी थे। पप्पू बड़ा और गप्पू उससे छोटा है। मैंने देखा, पप्पू उस युवक के पास गया और उससे कहा, "अंकलजी, आप हमारे घर चलिए। मेरे पापा आपसे ताजा-ताजा शहद खरीद लेंगे।"

पप्पू के कहने से वह व्यक्ति हमारे सी ब्लॉक के क्वार्टर की ओर मुड़ गया। आगे-आगे पप्पू-गप्पू और पीछे-पीछे वह व्यक्ति। बाएँ हाथ से दाएँ हाथ में बाल्टी को पकड़े और रेलिंग के सहारे वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। उसके पीछे कॉलोनी के अन्य लड़के भी थे।

कॉल-बेल के बजने के साथ ही पप्पू-गप्पू दोनों की एक स्वर में मुझे पुकारने की आवाज सुनाई दी—"पापा! पापा! दरवाजा खोलिए!"

मैंने दरवाजा खोला। मेरे सामने पप्पू-गप्पू खड़े थे। एक तरफ दीवार से टिककर वह व्यक्ति खड़ा था। उसे घेरे हुए थे उनके साथी खिलाड़ी। मुझे देखते ही उस व्यक्ति ने बाल्टी नीचे रखी और दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया। 'नमस्कार' कहते हुए मैंने उसके अभिवादन का उत्तर दिया।

तब मैंने पूछा, "बाल्टी में शहद लाए हो?"

"उसने बाल्टी में से एक डाल निकालकर शहद से झर रहे मधुमक्खियों के छत्ते को दिखाते हुए कहा, "साहब! बिल्कुल ताजा शहद है। अभी-अभी तोड़कर लाया हूँ।"

सुपरिचित लेखक। अब तक हिंदी में तीन कृतियाँ तथा राजस्थानी व हिंदी में बाल-साहित्य की सात पुस्तकों के अलावा पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। 'कर्तव्य रो पुकार' राजस्थानी भाषा में बाल-कहानियों की पुस्तक पर 'पं. जवाहरलाल नेहरू बाल साहित्य पुरस्कार'; राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति बीकानेर से पुरस्कृत।

"अंकल! आपको मधुमक्खियों ने डंक नहीं मारे?" सभी बच्चों ने एक स्वर में उस व्यक्ति से प्रश्न कर डाला।

"नहीं!" उस व्यक्ति ने बच्चों की जिज्ञासा के उत्तर में कहा।

"ऐसा कैसे हो सकता है, अंकल? आप उनका शहद लेंगे तो वे क्या खुशी से ऐसा करने देंगी?" पप्पू ने पूछा।

"मैं मधुमक्खियों को न मारता हूँ और न सताता हूँ। इसलिए जब भी उनके छत्ते से शहद निकालता हूँ, तब वे भी मुझे डंक नहीं मारतीं।" उस व्यक्ति ने बड़े आत्मविश्वास से कहा।

बच्चों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उसने मुझसे पूछा, "साहबजी! शहद लेंगे न?"

अरे भाई! अब बच्चे तुम्हें ले ही आए हैं तो उनकी बात रखने के लिए शहद तो लेना ही पड़ेगा। चाहे तुम शुद्ध लाए हो या मिलावट करके।" मैंने उसकी शंका को दूर करते हुए कहा।

"बाबूजी, ऐसा ताजा और शुद्ध शहद आपको हम जैसे लोगों से ही मिल सकता है। आपके शहर की दुकानों में आकर ही मिलावटी बन जाता है। देखिए साहब! अभी तो डाल पर पूरा छत्ता ही लगा हुआ है।" उस व्यक्ति ने अपनी बात को सही सिद्ध करने के लिए डाल दिखाते हुए कहा।

तभी पप्पू ने पूछ लिया, "अंकल! मधुमक्खियाँ अपने रहने के

लिए छत्ता कैसे बनाती हैं?"

अपने उत्तर में उस व्यक्ति ने बच्चों को समझाते हुए कहा, "बच्चो! मधुमक्खियाँ अपना छत्ता फूलों, बाग-बगीचों, हरे खेतों पर तथा नदी के किनारे साफ-सुथरी और सुरक्षित जगहों पर बनाती हैं।"

"अंकल! छत्ते में बहुत सारे छेद हैं। इनको कोष कहा जाता है। यानी छोटे-छोटे कमरे। मोम से बने हुए इन कोषों को 'मधुकोष' कहते हैं। मोम मधुमक्खियों के पेट की ग्रंथियों से पैदा होता है। मधुमक्खियाँ इसे जबड़ों द्वारा गूँथकर मुलायम और लचीला बनाकर अपने पिछले पैरों द्वारा बाहर निकालती हैं। फिर उचित जगहों पर चिपकाकर छत्ता बनाती हैं।"

"क्या मधुमक्खियाँ छत्ते में ही रहती हैं या बाहर?" टीना ने पूछ लिया।

"मधुमक्खियों के सभी काम छत्ते में बने छेदनुमा कोषों में ही होते हैं।" उस व्यक्ति ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"अंकल! फिर मधुमक्खियाँ शहद कहाँ इकट्ठा करती हैं?" पिंटू ने पूछा।

"मधुमक्खियाँ भारी वजनदार शहद को इन छेदों में सुरक्षित रखती हैं।" उस व्यक्ति ने अपनी बाल्टी में रखे हुए छत्ते को दिखाते हुए कहा।

"तो फिर मधुमक्खियों के अंडे व बच्चे कहाँ रहते हैं?" पप्पू ने जानना चाहा।

"मधुमक्खियों के अंडे-बच्चों का आश्रय छत्ते में बने कोष या कमरे ही हैं। ये सर्दी, गरमी और बरसात से इनको बचाते हैं।" उस व्यक्ति ने समझाते हुए कहा।

"क्या छत्ता बनाने में सबका हाथ होता है?" मीना ने पूछा।

"हाँ! मधुमक्खियाँ छत्ते का काम बड़ी सूझ-बूझ से मिलकर बनाती हैं। यह सहकार की भावना का एक अच्छा उदाहरण है। छत्ता बनाने के लिए उम्र के हिसाब से सबका काम बँटा होता है।" उसने समझाते हुए कहा।

"अंकल! मधुमक्खियाँ शहद कैसे इकट्ठा करती हैं?" पप्पू ने प्रश्न किया।

"मधुमक्खियाँ फूलों का रस पीकर मधु यानी शहद इकट्ठा करती हैं।" उसने उत्तर दिया।

"अंकल, कोई मधुमक्खी बड़ी होती है और कोई छोटी। क्या इनमें भी अलग जातियाँ होती हैं?" गप्पू ने पूछा।

"हाँ, जिस तरह मनुष्य की जातियाँ हैं, अलग धर्म है, उसी तरह मधुमक्खियों की भी हैं।" उसकी जिज्ञासा का उत्तर देते हुए उस व्यक्ति ने कहा।

"कृपया बताइए न अंकल, कौन सी जातियाँ और धर्म इनमें होते हैं?" सबने एक स्वर में पूछा।

"पूरे संसार में मधुमक्खियों की चार जातियाँ हैं। इनमें दो जातियों वाली मधुमक्खियों को 'भुनगा' एवं 'आर्ध्य' नाम से पुकारते हैं। भुनगा बड़ी और आर्ध्य छोटी होती है। हमारे यहाँ इसी जाति की मधुमक्खियाँ मिलती हैं। दो और जातियाँ हैं, जिनमें 'खेरा' एवं 'उद्यातक' नाम की होती हैं।" शहद वाले व्यक्ति ने कहा।

"कृपया इनके रहन-सहन के बारे में भी कुछ बतलाइए, अंकल।" मीना ने पूछा।

"इनमें बड़ी एकता होती है। ये सब समूह में ही रहती हैं। एक वंश में एक मादा, जिसे रानी कहते हैं, पंद्रह से बीस हजार कमेरी यानी मादा कामगार और चार से पाँच सौ नर, जिन्हें निखट्टू कहते हैं, रहते हैं। जिस वंश में कमेरी अधिक होती हैं, वह ऊँचा माना जाता है। बड़ा वंश वह होता है, जिसमें ५० से ६० हजार मधुमक्खियाँ होती हैं। जिस तरह चींटियों में 'रानी' को सभी सम्मान देती हैं, उसी तरह मधुमक्खियों में भी 'रानी' का स्थान सबसे ऊँचा है। रानी वंश की आवश्यकता के अनुसार एक से दो हजार अंडे प्रतिदिन देने की क्षमता रखती है। अपनी पूरी उम्र में रानी दस लाख अंडे देने में सक्षम होती है। रानी छत्ते के हर कोष में एक-एक अंडा देती है। रानी के अंडे दो तरह के होते हैं—सेने वाले और बिना सेने वाले। सेने वाले अंडों से बच्चे बनते हैं और न सेने वाले अंडे छत्ते के छेदों को बढ़ाते हैं। अंडों से पंद्रह दिन में रानी, इक्कीस दिन में कमेरी और चौबीस दिन में निखट्टू पूरी तरह से मधुमक्खी बन जाते हैं। फिर रानी मधुमक्खी बच्चों के बड़े होने पर अन्य मधुमक्खियों को साथ लेकर दूसरी जगह की तलाश में उड़ती है। जगह मिलने पर मजदूर मक्खियाँ नया छत्ता बनाने में जुट जाती हैं। मधुमक्खियों के आकार और प्रकार के अनुसार इनका शहद भी कई तरह का होता है। वसंत ऋतु में तैयार शहद सबसे बढ़िया होता है।" इतना कहकर उस व्यक्ति ने बात पूरी की।

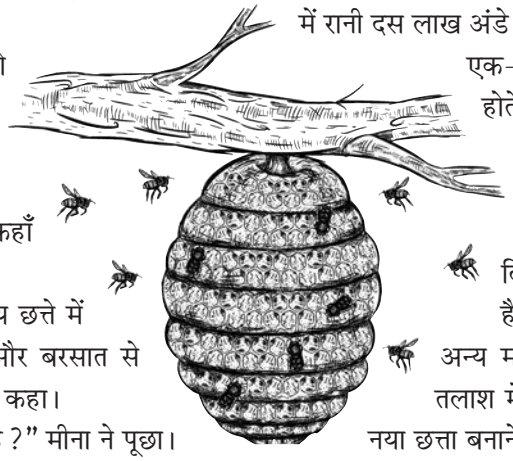

उस व्यक्ति से बच्चों ने मधुमक्खियों के बारे में काफी पूछ लिया। वह अपने धंधे पर निकला था, मगर बेचारा बच्चों से घिर गया था। किंतु मैंने देखा उसे भी बच्चों के साथ रहने में अच्छा लग रहा था। यही कारण था कि वह उनके प्रश्नों के उत्तर दिए जा रहा था।

तब मैंने उससे पूछा, "अब तुम अपने बारे में भी तो कुछ बताओ।"

"मेरा नाम राम प्रसाद है। मैं पास की पहाड़ी के तले में बसे एक छोटे से गाँव खेड़ा में रहता हूँ। सीनियर हायर सेकेंडरी पास हूँ। जब कोई नौकरी नहीं मिली तो शहद बेचने का धंधा करने लगा। गाँव में रहने के कारण मधुमक्खियों के संबंध में सभी जानकारी जल्दी ही सीख गया। मैं मधुमक्खियों का दोस्त बन गया हूँ। क्योंकि मैं इन्हें कभी भी सताता नहीं। जब भी उनके छत्तों में भरपूर शहद हो जाता है, तब मैं धुआँ करके उनको यह संकेत करता हूँ कि अब शहद लेने का समय आ गया है। वे मेरी सांकेतिक भाषा को समझ छत्ते को छोड़कर दूसरी जगह चली जाती

हैं। तब मैं बड़ी होशियारी से बाल्टी छत्ते के नीचे रखकर छत्ते की डाल काटकर शहद बाल्टी में रख लेता हूँ। इस तरह से अपना और परिवार का गुजर-बसर करता हूँ। मेरी सहायता के लिए मेरा भाई अथवा किसी भी व्यक्ति को रख लेता हूँ।" कहकर वह चुप हो गया।

"तब मधुमक्खियाँ अपनी रक्षा कैसे करती हैं?" पप्पू ने पूछ लिया।

"आमतौर पर मधुमक्खियाँ किसी को डंक नहीं मारतीं। लेकिन यदि कोई अकारण उन्हें पत्थर मारता है या उनके छत्ते को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करता है, तो फिर मधुमक्खियाँ भयंकर आवाज करती हुई, तमतमाकर गुस्से में डंक मारती हैं और अपने डंक को तुरंत अपने पेट में छिपा लेती हैं। डंक केवल रानी और कमेरी मक्खी में होता है, नर कीट में नहीं होता। इसीलिए इसको दोस्तों का दोस्त कहते हैं, जब अपने दोस्तों को यह शहद देती है और दुश्मनों को डंक मार-मारकर उसे कड़ी सजा देती है। मधुमक्खियाँ फूलों का रस पीकर मधु इकट्ठा करती हैं। हमारे कई कामों में गुणकारी शहद का उपयोग किया जाता है। इसलिए मधुमक्खी को 'स्वर्ग का फरिश्ता' भी कहा जाता है। साहबजी! इसका शहद कोई भी व्यक्ति काम में ले सकता है। चाहे वह हिंदू हो, मुसलमान हो, सिक्ख हो या ईसाई। मधुमक्खी किसी के साथ भेदभाव नहीं करती है अपना शहद देने में।" कहते हुए उसने अपनी बात समाप्त की।

रामप्रसाद के इन अंतिम शब्दों ने मुझे काफी प्रभावित किया, 'मधुमक्खियाँ सबको अपने द्वारा सचित शहद देती हैं बिना किसी भेदभाव के', फिर हमें क्यों नहीं मधुमक्खियों की ही तरह ऊँचे विचार रखने चाहिए।

पप्पू-गप्पू और उसके खिलाड़ी साथियों ने रामप्रसाद को एक स्वर में कहा, "अंकल! आपने मधुमक्खियों की एकता और सबके साथ समानता का व्यवहार करने की जो बात कही, इसके लिए हम आपके आभारी हैं।" कहते हुए वे फुटबॉल खेलने के लिए चले गए।

मैंने भी उसे मन-ही-मन बच्चों की बात बात में इतनी अच्छी प्रेरणदायक जानकारी के लिए साधुवाद दिया। फिर उससे एक के बजाय दो किलो शहद ख लो ताजा शहद, लो मीठा शहद", जोर-जोर से बोलते हुए अपने दूसरे ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अन्य क्वार्टरों की ओर चला जा रहा था।

म.न. १, म. ९,
गायत्री नगर, हिरनमगरी, सेक्टर-५,
उदयपुर-३१३००२ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९४६१४०३१६९

कुंडलियाँ

सावन की कुंडलियाँ

• **श्याम सुंदर श्रीवास्तव 'कोमल'**

झूले अब दिखते नहीं, डालें पड़ीं उदास।
सन्नाटा सा छा रहा, नहीं पेंग उल्लास।
नहीं पेंग उल्लास, शांत हैं सारे तरुवर।
कजरी के स्वर मौन, मौन हैं आल्हा के स्वर।
कह 'कोमल' कविराय, रीति सावन की भूले।
सूने-सूने पेड़, नहीं दिखते अब झूले।

कानों में पड़ते नहीं, मधुरिम गीत मल्हार।
ना झूला ना झूलना, ना पायल झंकार।
ना पायल झंकार, नहीं अब कंगना बजते।
ललनाओं के झुंड, नहीं अब विहँस सँवरते।
कह 'कोमल' कविराय, निराशा उद्यानों में।
हँसने के नहीं स्वर, पड़ें मधुरिम कानों में।

कोयल अब कूकै नहीं, ना बालै मधु बैन।
साजन बिन कैसे कटै, कारी-कारी रैन।

कारी-कारी रैन, मुझे नागिन सी डसती।
उमड़-घुमड़कर घोर, बदरिया खूब बरसती।
कह 'कोमल' कविराय, तड़पती पग की पायल।
अमराई में मौन, शांत हो बैठी कोयल।

सावन की सखि मद भरी, भीगी-भीगी रात।
हृदय जगाती कामना, मदमाती बरसात।
मदमाती बरसात, याद प्रियतम की आती।
सुप्त पड़े जो मौन, हृदय में स्वप्न जगाती।
कह 'कोमल' कविराय, माह श्रावण का पावन।
प्रियतम हों यदि पास, तभी मन भावन सावन।

मार्केटिंग के सामने, बृहताकार के पीछे
वार्ड नं १, खन्ना रोड
लहार, जिला-भिंड-४७७४४५
दूरभाष : ८८३९०१०९२३

वर्ग पहेली (१९६)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे थे; उनके देहावसान के उपरांत अब **श्री ब्रह्मानंद खिच्ची** इसे तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ जुलाई, २०२२ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रा द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें तीन सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते सितंबर २०२२ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१९४) का शुद्ध हल

१ मु	२ आ	३ व	जा	४ ले	५ ना	■	६ मू	सा
७ हा	र	क	■	८ खा	ना	९ पू	तिं	■
१० ल	क्ष	■	११ घी	■	१२ सा	स	■	१३ ल
■	१४ क	१५ च	■	१६ स्ने	ह	की	१७ रा	खी
१८ अ	ब	ल	१९ क	■	२० ब	रा	म	द
२१ पा	ल	न	हा	र	■	२२ त	ब	■
त्र	■	२३ सा	नी	■	२४ माँ	■	२५ ल	२६ त
■	२७ द	र	का	२८ र	■	२९ प	रा	ग
३० त	री	■	३१ र	ज	नी	र	म	ण

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री मोहन जगदाले**
९७ ए, वृंदावन धाम,
निकट महामृत्युंजय द्वार
उज्जैन-४५६००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ७०२४५२४०७५

२. **श्री माणक तुलसीराम गौड**
२४७ द्वितीय तल, नौवीं लेन
शांति निकेतन ले आउट
अरेकेरे, बेंगलुरु-५६००७६
दूरभाष : ८७४२९१६९५७

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १९४ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री बाल कुमार, सपना, अनिल कुमार (महेंद्रगढ़), वाई.के. श्रीवास्तव (जबलपुर), अंजना रानी गर्ग (मानसा), विनीता सहल (मुंबई), हरदेव सिंह धीमान (शिमला), रमेश कुमार (मोहाली), उदय प्रताप (हरिद्वार), जय सिंह राज (बीकानेर), भूपसिंह (मेरठ), रामप्रकाश राय (गोरखपुर), शिव सिंह, आनंद शर्मा, राम आधार गर्ग, भुवनेश सारस्वत, इद्रारानी, दिनकर सहल (दिल्ली)।

वर्ग पहेली (१९६)

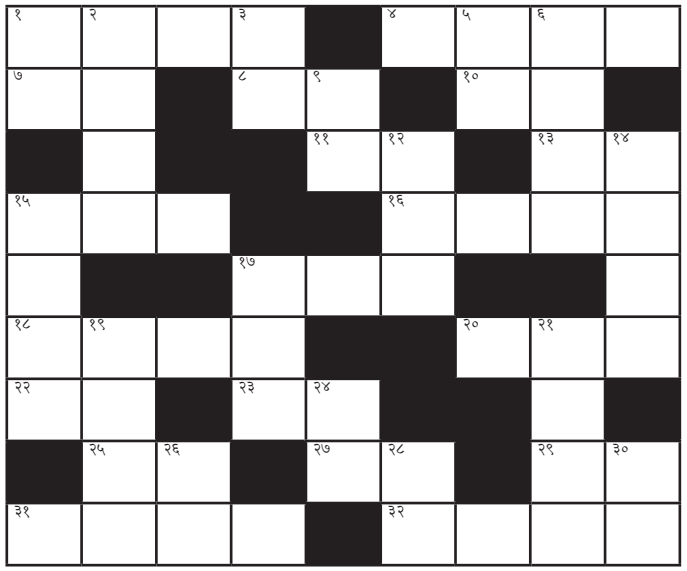

बाएँ से दाएँ—

१. ज्ञान देनेवाली, कार्तिक शुक्ला एकादशी (४)
४. विचार किया हुआ, कल्पित (४)
७. मस्तक, पेशानी (२)
८. कुशल, निपुण, धूर्त, चालाक (२)
१०. परिषद, दरबार (२)
११. केश, सूखा फोड़ा व घाव (२)
१३. बातचीत में दूर स्थित (२)
१५. घुमक्कड़, मनमौजी (३)
१६. शैलेय, चट्टानी (४)
१७. मजदूर, परिश्रमी, नौकर (३)
१८. बहुत सीधा होना, अति नम्र होना (मुहावरा) (२,२)
२०. सिनेमा की अभिनेत्री, नायिका (३)
२२. हाथ के पंजे का छापा (२)
२३. दान आदि के रूप में दी जानेवाली कच्ची भोजन सामग्री (२)
२५. के लिए, के निमित, वास्ते (२)
२७. कारीगरों का औजार (२)
२९. मित्र, दोस्त (२)
३१. अर्थ, गरज, इच्छा (४)
३२. शिव, महादेव (४)

ऊपर से नीचे—

१. तेज, चमक, प्रकाश (२)
२. उत्कर्ष, प्रसिद्धि (४)
३. कदंब का पेड़ या फूल, अशोक वृक्ष (२)
५. दीप्ति, कल्पना (२)
६. रात, शर्वरी (४)
९. थोड़ा, तनिक, कम, जरा (२)
१२. झूठा, हठात् (३)
१४. ईमानदारी से कमाया हुआ (३,१)
१५. रमणीय स्थान (४)
१७. रेती, एक तरह का दानेदार औजार (३)
१७. रीति के अनुसार, पहले जैसा ही (४)
२१. किसी पर बिगड़ना, क्रोध करना (४)
२४. घोड़े की चार, प्रवाह (२)
२६. तिलहन का स्निग्ध द्रव्य (२)
२८. शोभा, सुंदरता (२)
३०. चक्रपाद, एक प्राचीन यान (२)

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

वर्ग पहेली (१९५) का हल अगले अंक में।

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक भी अपनी स्तरीय परंपरा के अनुकूल है। प्रासंगिकता को प्राथमिकता देने की दृष्टि से यह अंक प्रशंसनीय है। संपादकीय 'प्रभु श्रीराम के देश में···' गहन चिंतन का विषय है। ऊर्ध्वमुखी से अधोमुखी होना नितांत दुखांत है। साधु बहेलिया और चिड़ियों की प्रचलित कहानी के अनुसार हम सीख तो श्रवण करते हैं, मगर ग्रहण नहीं करते हैं। प्रभु श्रीराम के आदर्शों एवं संदेशों को जीवन में उतारने के प्रति यह अति उदासीनता अपने संस्कार को जान-बूझकर तिलांजलि देना है। त्रेता युग के राम-लक्ष्मण का मातृत्व यह सिद्ध करता है कि त्याग ही अनुराग की अग्निपरीक्षा है। संस्मरण के अंतर्गत 'कवि-सम्मेलन के बहाने दिनकरजी से भेंट' राष्ट्रीय कवि दिनकरजी की पुण्यतिथि पर विशेष प्रासंगिक है। 'बालवाटिका' के संपादक डॉ. भैरूँलाल गर्गजी ने उनके दर्शन, स्वागत और संवाद के दुर्लभ संयोग का जो चिर-स्मरणीय मार्मिक चित्रण किया है, वह हिंदी काव्य के नगपति की एक सुलभ झाँकी है। गद्य एवं पद्य की बहुमुखी रचनाएँ 'साहित्य अमृत' की स्तरीय सारस्वत परंपरा की साक्षी हैं।

—राजा चौरसिया, कटनी (म.प्र.)

आपका संपादकीय सबकी हिंदी और बच्चों से ही शुरुआत हो प्रभावकारी और बोधप्रद है। आज बच्चे ही सबसे ज्यादा उपेक्षित हैं, जिसके लिए माता-पिता ही उत्तरदायी हैं, ऐसा मेरा मानना है। डॉ. स्मरजीत जैना पर उनकी पुण्यतिथि पर प्रेमपाल शर्मा द्वारा लिखा गया लेख महत्त्वपूर्ण है। कार्य के प्रति निष्ठा, समर्पण और लक्ष्य-प्राप्ति के लिए किया गया अहोरात्र कठिन परिश्रम, ध्यान, लगन युवा वर्ग को निश्चित रूप से प्रेरणा देता उद्‌बोधन करता लेख है। आजादी के लिए आत्मार्पण करते क्रांतिवीरों का स्मरण गोखले, तिलक, सावरकर, जगत राम हरियाणवी का परिचय विशेष है। ब्रेख्त के नाटकों में व्यक्त सामाजिक सरोकार एक विशिष्ट दृष्टि देता लेख है। इतना अवश्य स्वीकारना होगा कि क्रांतिकारियों के बारे में जानने, समझने, पढ़ने और सोचने की ललक-चाह लोगों में है। चाहे वे गुजराती भाषी हों या पंजाबी भाषी या मराठी। इनकी भूख की तृप्ति का काम 'साहित्य अमृत' कर रहा है।

—विद्या केशव चिटको, नासिक (महाराष्ट्र)

'साहित्य अमृत' का जून अंक का मुखपृष्ठ पर्यटन पर केंद्रित है। जून माह में बच्चों की गरमियों की छुट्टियाँ होती हैं तो उनके माँ-बाप या अभिभावक उन्हें कहीं घुमाने ले जाते हैं, ताकि बच्चों का मन बहलाव हो जाए और इसी बहाने वे नई जगह व नए लोगों से मिलें, विशेष जानकारी प्राप्त कर सकें। संपादकीय 'जीवन रक्षा के लिए···' में इस 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर संपादकजी ने हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है कि जलवायु परिवर्तन की समस्या कितनी गंभीर है। इसके लिए सिर्फ सरकारों के भरोसे रहना उचित नहीं है, बल्कि इसके हर नागरिक को अपनी जिम्मेदारियाँ निभानी होंगी। संपादकीय में ही 'अमृत महोत्सव की पुकार' शीर्षक से जो लेख है, उसमें यह विचार कि हर भारतीय को सम्मान एवं गरिमा तथा किसी भी प्रकार के शोषण-उत्पीड़न से मुक्ति मिले एवं पूरा तंत्र मानवीय संवेदना से परिपूर्ण हो, प्रशंसनीय है। आचार्य मायाराम पतंग की कहानी 'असलियत ने खोली आँखें' बहुत ही मार्मिक है। हमारी युवा पीढ़ी को सीख देनेवाली है। दीक्षित दनकौरीजी की 'गजलें' अच्छी लगीं। अमिता दुबे की कहानी 'अनमोल' भी मन को खूब भाई। उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी' की चौपाइयाँ 'द्रौपदी की ऊहापोह' अच्छी लगीं। अन्य रचनाएँ भी पठनीय हैं। अगले अंक 'अमृत महोत्सव विशेषांक' का बेसब्री से इंतजार है। पत्रिका यों ही गतिशील रहे। हम इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं।

—अमित सिंह, जयपुर (राज.)

'साहित्य अमृत' का जून २०२२ अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय में संपादकजी की जलवायु परिवर्तन को लेकर चिंता उचित है। साथ ही सिर्फ सरकार को दोष देनेवालों के लिए संदेश भी है कि हर नागरिक को अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए। इस अंक की सभी रचनाएँ—कविता, कहानी, आलेख आदि रोचक व पठनीय हैं। उच्च स्तरीय रचनाएँ परोसने के लिए 'साहित्य अमृत' के संपादक मंडल को बधाई तथा पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए ढेर सारी शुभकामनाएँ।

—सुमन शर्मा, लखनऊ (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' के जून अंक की प्रति प्राप्त हुई, मुखपृष्ठ पर अंकित दर्शनीय स्थलों की छवियाँ मनोहर व आकर्षक हैं। साहित्य एवं संस्कृति की मासिक पत्रिका भारतीय साहित्य के विकास की दिशा में किया जानेवाला विनम्र प्रयास है। इस अंक में संकलित सभी लेख, कविताएँ, गजल, व्यंग्य, यात्रा-वृत्तांत आदि रचनाएँ अत्यंत रोचक, ज्ञानवर्धक, मनोरंजक, पठनीय एवं सराहनीय हैं। वीरेंद्र बहादुर सिंह की कहानी 'अनोखा मिलन', आचार्य मायाराम पतंग की कहानी 'असलियत ने खोली आँखें' संवेदनशील एवं हृदयस्पर्शी लगीं। अरुण गुप्ता के यात्रा-वृत्तांत 'हंपी, जहाँ शिलाओं पर खुदी है रामकथा' को पढ़कर घर बैठे यात्रा का लाभ प्राप्त हुआ। अशोक गौतम का व्यंग्य 'आपका शुभचिंतक यमराज!' गुदगुदाने के साथ ही वर्तमान चिकित्सकों को आईना दिखाता है। अंक की संपूर्ण सामग्री प्रशंसनीय है। सभी रचनाकार बधाई के पात्र हैं।

—आनंद शर्मा, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का जून २०२२ अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय सीख लेनेवाला है। प्रतिस्मृति में जैनेंद्र कुमार की कहानी 'खेल' तथा दिनेश विजयवर्गीय की बाल-कहानी 'नम्रता की मुस्कान' अच्छी लगी। अमिता दुबे की कहानी 'अनमोल' रोचक व ज्ञानप्रद है। विजय कुमारजी का आलेख 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिंदी' में संघ को हिंदी विरोधी बताना गलत है, इसका यह लेख हमें ज्ञान कराता है। कर्नल कौशल मिश्र की कविता 'उम्र के इस पड़ाव पर' शिक्षाप्रद है। इन सबके अतिरिक्त नीता चौबीसा का ललित-निबंध, पुरुषोत्तम पाटील का आलेख आदि अन्य रचनाएँ भी रोचक, ज्ञानवर्धक एवं पठनीय हैं।

—अजीत गौतम, हरिद्वार (उत्तराखंड)

साहित्यिक गतिविधियाँ

'महाराणा' कृति लोकार्पित

१० जून को दिल्ली के एन.डी.एम.सी. कन्वेंशन हॉल में केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री मान. अमित शाह ने प्रसिद्ध ई.एन.टी. सर्जन डॉ. ओमेंद्र रत्लू की हिंदी व अंग्रेजी में लिखित और प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'महाराणा' का लोकार्पण किया। डॉ. ओमेंद्र रत्लू ने विस्तार से बताया कि यह पुस्तक अस्तित्व में कैसे आई। इतिहासकारों ने राणाओं के शौर्य को इतिहास में सम्मानित स्थान नहीं दिया और झूठा इतिहास रचा। यह महाराणाओं के एक हजार वर्ष के निरंतर संघर्ष का सच्चा इतिहास है।

केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि यह एक तथ्य है कि कुछ लोगों ने इतिहास को विकृत कर दिया है। उन्होंने जो कुछ भी चाहा, वैसे लिखा, पर हमें कौन रोक सकता है? हमें कोई नहीं रोक सकता। इतिहास सरकारों द्वारा नहीं रचा जाता है, बल्कि यह सच्ची घटनाओं पर रचा जाता है। उन्होंने जोर देकर कहा कि सावरकर नहीं होते तो १८५७ की क्रांति की कहानी सामने नहीं आ पाती। उन्होंने लेखकों और फिल्म निर्माताओं से इतिहास का सच सामने लाने पर काम करने का आग्रह किया और कहा कि इतिहास की नई किताबों के माध्यम से तथ्यों को सामने लाने का प्रयास करना होगा। श्री शाह ने का कि भारत के प्रतापी राजवंशों पर विस्तार से लिखकर उनके शौर्य और पराक्रम से आमजन को परिचित करवाना चाहिए। अंत में निमित्तएकम के श्री जय आहूजा ने धन्यवाद ज्ञापित किया। □

दो पुस्तकों का लोकार्पण संपन्न

विगत दिनों जोधपुर में नवोदय सबरंग साहित्य परिषद् की ओर से कवि-कथाकार श्री श्याम गुप्ता 'शांत' की दो पुस्तकों 'चौथी जेब' (व्यंग्य-संग्रह) और 'परदे के पीछे का सच' (कहानी-संग्रह) का लोकार्पण किया गया। मुख्य अतिथि डॉ. हरीदास व्यास थे; अध्यक्षता डॉ. आईदान सिंह भाटी ने की। डॉ. कैलाश कौशल और श्री मनोहर सिंह राठौड़ ने पत्रवाचन किया। लेखक ने अपनी रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम में सर्वश्री हरिप्रकाश राठी, अनिल अनवर, राजेश भैरवानी, अरुण सिंह, पद्मज शर्मा आदि उपस्थित थे। परिषद् के सचिव श्री अशफाक अहमद फौजदार ने आभार व्यक्त किया। □

'भारतीय संविधान : अनकही कहानी' लोकार्पित

१८ जून को नई दिल्ली के डॉ. आंबेडकर इंटरनेशनल सेंटर में भारतीय शिक्षण मंडल, एस.जी.टी. यूनिवर्सिटी, एकात्म मानवदर्शन प्रतिष्ठान एवं प्रभात प्रकाशन के तत्त्वावधान में प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पत्रकार तथा इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष श्री रामबहादुर राय की पुस्तक 'भारतीय संविधान : अनकही कहानी' का लोकार्पण केंद्रीय शिक्षामंत्री श्री धर्मेंद्र प्रधान ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ संपादक श्री अच्युतानंद मिश्र ने की। विशिष्ट अतिथि राज्यसभा के उपसभापति श्री हरिवंश एवं जम्मू-कश्मीर के उपराज्यपाल श्री मनोज सिन्हा थे। लोकार्पण कार्यक्रम को वर्चुअली संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने कहा कि पुस्तक के लोकार्पण का दिन बहुत ही खास है। १८ जून को ही मूल संविधान के पहले संशोधन पर तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने हस्ताक्षर किए थे, यानी यही दिन लोकतांत्रिक गतिशीलता का पहला दिन था। पुस्तक में तमाम ऐसी घटनाएँ दर्ज हैं, जो अभी तक बाहर नहीं आईं। जिस राजद्रोह की बात आजकल बहुत हो रही है, मूल संविधान के बाद उसकी कैसे वापसी हुई, उसकी कहानी भी दर्ज है। आखिर पं. नेहरू राजेंद्र प्रसाद को राष्ट्रपति क्यों नहीं बनने देना चाहते थे, इसकी भी कहानी इस पुस्तक में है। यह पुस्तक भारतीय संविधान के ऐतिहासिक सच, तथ्य, कथ्य और यथार्थ की कौतूहलता का सजीव चित्रण करती है। प्रधानमंत्री मोदी ने कहा कि संविधान आजाद भारत की ऐसी परिकल्पना के रूप में हमारे सामने आया था, जो देश की कई पीढ़ियों के सपने को साकार कर सके। संविधान निर्माण के लिए पहली बैठक ९ दिसंबर, १९४६ को हुई थी। स्वतंत्रता से पहले हुई इसकी बैठक के पीछे ऐतिहासिक संदर्भ है।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री धर्मेंद्र प्रधान ने कहा कि वर्तमान युवा पीढ़ी डिजिटल युग में जी रही है। इस पीढ़ी के लिए संविधान को सरल और रोचक तरीके से बताना चुनौतीपूर्ण काम है। इसमें यह पुस्तक काफी हद तक सफल है। राज्यसभा के उपसभापति श्री हरिवंश नारायण सिंह ने कहा कि संविधान बनने की पूरी कहानी रोचक तरीके से पुस्तक में प्रस्तुत की गई है। संविधान बनने के दौरान की बैठकों और वक्तव्यों के बारे में पुस्तक में विस्तार से जिक्र है। जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल श्री मनोज सिन्हा ने कहा कि यह पुस्तक तुसलीदास की 'रामायण' की भाँति समाज में लोकप्रिय होनी चाहिए, ताकि हर भारतीय को भारतीय संविधान की अनजानी कहानी पता चले। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सचिव श्री सच्चिदानंद जोशी ने स्वागत वक्तव्य दिया। एकात्म मानवदर्शन प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डॉ. महेश चंद्र शर्मा ने पुस्तक परिचय दिया। कार्यक्रम में अनेक गण्यमान्य जन, सांसद एवं मंत्री उपस्थित थे। □

'Beyond the Misty Veil' कृति लोकार्पित

१७ जून को उपराष्ट्रपति भवन में आयोजित एक कार्यक्रम में पूर्व वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी श्रीमती आराधना जौहरी ने अपनी पुस्तक 'Beyond the Misty Veil' की प्रति भारत के उपराष्ट्रपति श्री एम. वेंकैया नायडू को भेंट की। विशिष्ट अतिथि केंद्रीय संस्कृति मंत्री श्री जी. किशन रेड्डी थे। कार्यकम में अनेक वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी, पत्रकार तथा समाजधर्मी उपस्थित थे।

उपराष्ट्रपति महोदय ने कहा कि भारतीय कला, संस्कृति और विरासत को आनेवाली पीढ़ी को सहेजना बहुत जरूरी है। युवा पीढ़ी के लिए यह जानना आवश्यक है कि हमारी विरासत कितनी महत्त्वपूर्ण

है, इसलिए भी यह पुस्तक काफी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। लेखिका आराधना जौहरी ने बताया कि पुस्तक में उत्तराखंड के एक हजार मंदिरों की जानकारी है। इन मंदिरों के इतिहास, आर्किटेक्ट और इनसे जुड़ी लोककथाएँ भी इसमें संकलित हैं। ☐

दो पुस्तकों का विमोचन संपन्न

२० जून को नई दिल्ली के कांस्टीट्यूशन क्लब में देश के पूर्व सेना प्रमुख जनरल मनोज मुकुंद नरवणे ने दो पुस्तकों 'IAF Strikes @ 0328 hours' और 'भारत-चीन एल.ए.सी. टकराव' के लोकार्पण के बाद कहा कि देश में जवानों की भरती को लेकर कोहराम मचा हुआ है, सेना में भरती की नई अग्निपथ योजना पर उनके कार्यकाल में ही तैयारी शुरू हुई थी, लेकिन यह योजना उनके सेवानिवृत्त होने के बाद लागू हो रही है। इस मौके पर पूर्व वायुसेना प्रमुख एयर चीफ मार्शल राकेश कुमार सिंह भदौरिया ने कहा कि मुझे पूरा भरोसा है कि बालाकोट सर्जिकल स्ट्राइक के बारे में लेखकों ने वास्तविकता व व्याख्या के बीच कुछ अंतर जरूर रखा होगा। देश के सुरक्षा कारणों की वजह से केवल उतनी जानकारियाँ ही सार्वजनिक होनी चाहिए, जिनसे कोई खतरा न पैदा हो। स्ट्राइक से जुड़ी पुस्तक रक्षा पत्रकार श्री मुकेश कौशिक व श्री संजय सिंह ने लिखी है, जबकि भारत चीन टकराव की पुस्तक श्री मुकेश कौशिक ने। दोनों पुस्तकें प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित हैं। ☐

ऑनलाइन कवि-सम्मेलन संपन्न

२३ मई को पटना में भारतीय युवा साहित्यकार परिषद् के तत्त्वावधान में फेसबुक के माध्यम से 'साहित्यधर्मी' पत्रिका के पेज पर 'हेलो फेसबुक कवि-सम्मेलन' का संचालन श्री सिद्धेश्वर ने किया। मुख्य अतिथि कवयित्री डॉ. नीलू अग्रवाल थीं। 'अनुस्वार' पत्रिका के संपादक डॉ. संजीव कुमार ने अध्यक्षता की। सर्वश्री आरती कुमारी, हरे कृष्ण प्रकाश, नीलम नारंग, अनिल पतंग, जयंत, संजीव कुमार, घनश्याम, रशीद गौरी, जग नारायण पांडे ने कविता पाठ किया। ☐

पत्रकारिता दिवस पर संगोष्ठी संपन्न

१ जून को गाजियाबाद में राष्ट्रभाषा स्वाभिमान, यू.एस.एम. पत्रिका एवं भागीरथ सेवा संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में २०वें साहित्यिक पत्रकारिता दिवस के अवसर पर आयोजित ऑनलाइन व ऑफलाइन संगोष्ठी में 'डिजिटल इंडिया के दौर में साहित्यिक पत्रकारिता का महत्त्व' विषय पर विद्वान् वक्ताओं ने साहित्यिक पत्रकारिता के इतिहास, स्वाधीन भारत में इसके विकास, देश व समाज के समन्वित परिवेश में इसका योगदान रेखांकित किया। मुख्य वक्ता डॉ. संजय द्विवेदी थे, पूर्व कुलपति डॉ. गिरीश्वर मिश्र ने पत्रकारिता के प्रारंभिक युग की चर्चा की। शिक्षाविद् एवं चिंतक डॉ. लल्लन प्रसाद ने आधुनिक तकनीक का सावधानी से प्रयोग करने पर जोर दिया। पूर्व प्रशासनिक अधिकारी श्री राजकुमार सचान 'होरी' ने यू.एस.एम. पत्रिका के ३८ वर्ष पूरे होने और इसके संपादक श्री उमाशंकर मिश्र के ७३वें जन्मदिवस पर अपनी शुभकामनाएँ दीं। संगोष्ठी के अन्य वक्ताओं में सर्वश्री ओमप्रकाश पांडेय, गजानन पांडेय, अशोक कुमार ज्योति, राकेश पांडेय, अशोक बनर्जी, हरिसिंह पाल, राम महेश मिश्र प्रमुख थे। श्री अमिताभ सुकुल ने आभार व्यक्त किया। ☐

मूल्यांकन कवि-गोष्ठी संपन्न

३१ मई को हैदराबाद में गीत चाँदनी द्वारा संचालित सीता युद्धवीर पुस्तकालय और शोध संस्थान के तत्त्वावधान में प्रतिमास देश की किसी एक साहित्यिक हिंदी पत्रिका पर संपन्न होनेवाली २९४वीं मूल्यांकन कवि-गोष्ठी इस बार नामपल्ली स्थित हिंदी प्रचार सभा हैदराबाद के सभागृह में हिंदी और उर्दू के वरिष्ठ कवि श्री अंजनी कुमार गोयल की अध्यक्षता में संपन्न हुई। 'समय सुरभि अनंत' पत्रिका के संपादक श्री नरेंद्र कुमार सिंह हैं। मूल्यांकन गोष्ठी में सर्वश्री सुधा ठाकुर, रमा बहैड, चंपालाल बैद, रामदास कृष्णा कामत, रत्नकला मिश्र, राजनारायण अवस्थी, शेख सादिक पाशा, राजिंदर कौर महाजन, गोविंद अक्षय और अंजनी कुमार गोयल ने पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर सारगर्भित चर्चा की।

कवि गोष्ठी में सर्वश्री विजय बाबा स्याल, राहुल सिंह, सुधा ठाकुर, गोविंद अक्षय, रामदास कृष्णा कामत, रत्नकला मिश्र, दिनेश अग्रवाल शशि, शोभा श्रीनिवास देशपांडे, सदानंद लाल, इमरान हुसैन, चंपालाल बैद, समा बहैड, शिव कुमार तिवारी कोहिरी, बासित अली रईस, लालचंद अग्रवाल, सुरय्या मेहर, शोभा पोरवाल, अंजनी कुमार गोयल, जाहेद हरियाणवी, अनिल कुमार गुप्ता, लतीफउद्दीन लतीफ, प्रदीप देवीशरण भट्ट, दुर्गाराज पटून, सुल्तान मिज्जा आदि ने रचना-पाठ किया। सुश्री रत्नकला मिश्र ने धन्यवाद प्रस्तुत किया। ☐

'रेत समाधि' को इंटरनेशनल बुकर प्राइज

विगत दिनों लंदन में वरिष्ठ कथाकार सुश्री गीतांजलि श्री के उपन्यास 'रेत-समाधि' को इंटरनेशनल बुकर प्राइज २०२२ के लिए चुना गया है। हिंदी की यह पहली पुस्तक है, जिसने वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित यह पुरस्कार प्राप्त किया है। ☐

व्याख्यान संपन्न

२७ मई को नई दिल्ली में 'हिंदी पत्रकारिता दिवस' के उपलक्ष्य में भारतीय जन संचार संस्थान में आयोजित विशेष व्याख्यान को संबोधित करते हुए 'हिंदुस्तान' समाचार-पत्र के प्रधान संपादक श्री शशि शेखर ने कहा कि डिजिटलाइजेशन ने पत्रकारों और पत्रकारिता को एक नई शक्ति दी है। आई.आई.एस.सी. के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी, अपर महानिदेशक श्री आशीष गोयल, डीन (अकादमिक) प्रो. गोविंद सिंह एवं हिंदी पत्रकारिता विभाग के अध्यक्ष प्रो. आनंद प्रधान तथा बहुत सारे विद्यार्थी उपस्थित थे। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

३१ मई को अपनी स्थापना के ८० वर्ष पूरे करने के उपलक्ष्य में महात्मा गांधी द्वारा स्थापित 'हिंदुस्तानी प्रचार सभा' ने सर्वश्री उषा ठक्कर, विश्वनाथ सचदेव, राजेंद्र खिमाणी, सूर्यबाला, करुणाशंकर

उपाध्याय, राजम पिल्लै, सरफराज आरजू, मोहम्मद वजीहुद्दीन को 'महात्मा गांधी शिखर प्रतिभा सम्मान' प्रदान किया। सभा की पूर्व निदेशक स्व. डॉ. सुशीला गुप्ता को 'जीवन गौरव सम्मान' प्रदान किया गया। ☐

लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न

३० मई को कोलकाता में मीडिया प्राध्यापक प्रो. कृपाशंकर चौबे पर केंद्रित पुस्तक 'कृपाशंकर चौबे : एक शिनाख्त' का लोकार्पण भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदशेक प्रो. संजय द्विवेदी ने किया। बंगीय हिंदी परिषद्, कोलकाता द्वारा आयोजित कार्यक्रम में सर्वश्री अमरनाथ, अरुण होता, प्रेमशंकर त्रिपाठी, ओम प्रकाश अश्क, मृत्युंजय, शर्मिष्ठा बाग और निर्भय देवयांश भी उपस्थित रहे। संचालन डॉ. सुनील कुमार सुमन ने एवं धन्यवाद ज्ञापन बंगीय हिंदी परिषद् के मंत्री डॉ. राजेंद्रनाथ त्रिपाठी ने दिया। ☐

बौद्धिक परिसंवाद संपन्न

१५ मई को प्रयागराज में सारस्वत मंच 'सर्जनपीठ' के तत्त्वावधान में द्विवेदी-युग के प्रथम पुरुष आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी की जन्मतिथि पर 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी की समग्र सारस्वत यात्रा की प्रासंगिकता' विषयक बौद्धिक परिसंवाद का आयोजन किया गया था। अध्यक्षता हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री विभूति मिश्र ने की। मुख्य अतिथि डॉ. सरोज सिंह व विशिष्ट अतिथि डॉ. धारवेंद्र प्रताप त्रिपाठी एवं श्री पृथ्वीनाथ पांडेय थे। ☐

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

१३ जून को दिल्ली में साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत संस्थान 'स्वयं प्रकाश न्यास' ने सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्वयं प्रकाश की स्मृति में दिए जानेवाले वार्षिक सम्मान के लिए प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं। राष्ट्रीय स्तर के इस सम्मान में क्रमशः कहानी, उपन्यास और नाटक विधा की किसी ऐसी कृति को दिया जाएगा, जो १ जनवरी २०१६ से ३१ दिसंबर, २०२१ के मध्य प्रकाशित हो। इस वर्ष यह सम्मान कथेतर विधाओं की किसी कृति को दिया जाएगा। प्रविष्टियाँ डॉ. पल्लव, ३९३, डी.डी.ए. ब्लॉक सी एंड डी, शालीमार बाग, दिल्ली-११००८८ पर १५ अगस्त, २०२२ तक भेजी जा सकती हैं। ☐

'कविता से आलोचना तक' ग्रंथ लोकार्पित

विगत दिनों साहित्यकार-प्राध्यापक डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र की षष्ठिपूर्ति का भव्य आयोजन शास. नर्मदा महाविद्यालय नर्मदापुरम (म.प्र.) के सांस्कृतिक भवन में संपन्न हुआ। डॉ. सीतासरन शर्मा (विधायक) के मुख्य आतिथ्य एवं श्री श्रीश देवपुजारी (अखिल भारतीय महामंत्री, संस्कृत भारती) की अध्यक्षता, श्री नीरज दीक्षित (प्रांतीय संगठन मंत्री, संस्कृत भारती), श्री सोमेश परसाई एवं डॉ. बी.सी. जोशी (प्राचार्य, नर्मदा महाविद्यालय) के विशिष्ट आतिथ्य में कार्यक्रम का शुभारंभ डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र की साहित्यिक समीक्षात्मक उपलब्धियों पर केंद्रित लघु फिल्म के प्रदर्शन से किया गया। डॉ. बी.सी. जोशी के स्वागत उद्बोधन एवं डॉ. विनोद निगम ने काव्य-पाठ कर डॉ. मिश्र को शुभकामनाएँ दीं। डॉ. सुधीर आजाद ने डॉ. मिश्र के व्यक्तित्व और कृतित्व पर केंद्रित अभिनंदन-पत्र का वाचन किया। डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर केंद्रित ग्रंथ 'कविता से आलोचना तक' का लोकार्पण भी किया गया। संचालन डॉ. संतोष व्यास ने और आभार डॉ. नमन तिवारी ने व्यक्त किया। ☐

'वीर सावरकर' पुस्तक लोकार्पित

२८ मई को लखनऊ में स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर की जयंती पर श्री उदय माहुरकर एवं श्री चिरायु पंडित द्वारा लिखित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'वीर सावरकर : जो भारत का विभाजन रोक सकते थे और उनकी राष्ट्रीय सुरक्षा दृष्टि' पुस्तक का विमोचन उ.प्र. के मुख्यमंत्री महंत योगी आदित्यनाथ के कर-कमलों से संपन्न हुआ। इस अवसर पर अपने उद्बोधन में उन्होंने कहा कि अगर सावरकर की बात कांग्रेस ने मान ली होती तो देश का विभाजन नहीं होता। सावरकर ने कहा था कि पाकिस्तान आएँगे-जाएँगे, लेकिन हिंदुस्तान हमेशा रहेगा। योगीजी ने कहा कि जो लोग कहते थे, कश्मीर से धारा ३७० समाप्त नहीं हो सकती, आज वह सब हो गया। उन्होंने याद दिलाया कि अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने पोर्टब्लेयर की सेल्युलर जेल में उनकी प्रतिमा लगाई थी, जिसे बाद में कांग्रेस की सरकार ने हटवा दिया। सावरकर बीसवीं सदी के महानायक थे और उन्होंने राष्ट्र के लिए एक ही जन्म में दो-दो आजीवन कारावास की सजा काटी। उन्होंने कहा कि 'नेशन फर्स्ट' की थ्योरी हमने अपनाई होती तो भारत का विभाजन, १९६२, १९६५ का युद्ध १९७१ के विभाजन में भारत के बहादुर सैनिकों का बलिदान नहीं होता, आज आतंकवाद, अलगाववाद न पनपते। लोहियाजी ने कहा था, कोई व्यक्ति ५० वर्ष बाद अगर श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है तो वह सामान्य व्यक्ति नहीं हो सकता, अब हम सावरकर के जाने के ५६ वर्ष बाद उन्हें स्मरण कर रहे हैं, तो हम उनके व्यक्तित्व के बारे में आकलन कर सकते हैं। इस अवसर पर मुख्यमंत्री ने बताया कि हिंदू महासभा के बनने बाद उनके दादागुरु महंत दिग्विजय नाथ भी वीर सावरकर से जुड़े थे। ☐

'चेतना हीरोज' का विमोचन संपन्न

२२ मई को इंडिया हैबिटेट सेंटर, नई दिल्ली में आयोजित एक पुरस्कार समारोह में जम्मू-कश्मीर के उपराज्यपाल श्री मनोज सिन्हा ने वास्तविक जीवन के नायकों को पुरस्कार प्रदान किए और उन्हीं पर आधारित प्रभात प्रकाशन द्वारा हिंदी व अंग्रेजी में प्रकाशित एक कॉफी टेबल पुस्तक 'चेतना हीरोज : भलाई का प्रसार' का विमोचन किया। 'कॉफी टेबल बुक' में ३२ चेतना हीरोज का विवरण है, जिनकी विशिष्ट परोपकारी गतिविधियों ने लगभग एक करोड़ वंचित भारतीयों के जीवन में परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। श्री मनोज सिन्हा ने

कहा कि हमारे पुराण हमें अच्छे कार्य करने की प्रेरणा देते हैं और यह अधिकार किसी सत्ता के नियंत्रण में नहीं है। इसी तरह हमारी पौराणिक कहानियाँ हमें अच्छाई को फैलाने का संदेश देती हैं। इतने सारे चेतना हीरोज को देखकर मैं अभिभूत हूँ और खुद को भाग्यशाली मानता हूँ कि मैं उनका सम्मान कर सका।

विशिष्ट अतिथि राज्यसभा सांसद श्री के.जे. अल्फोंस लोकसभा, सांसद श्रीमती लॉकेट चटर्जी तथा वरिष्ठ पत्रकार सुश्री उषा राय ने भी अपने वक्तव्य दिए। चेतना मिशन के संस्थापक श्री रवि शर्मा ने समाज में इस चेतना हीरोज की परोपकार व अच्छे कार्यों के विस्तार और प्रसार में सबकी सहभागिता का अनुरोध किया, ताकि हम वंचितों-शोषितों के जीवन में कुछ सकारात्मक परिवर्तन कर सकें। □

'महाकवि कालिदास पुरस्कार' घोषित

विगत दिनों पुणे का प्रतिष्ठित 'महाकवि कालिदास पुरस्कार' कला व साहित्य के क्षेत्र में अपने महती योगदान से राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना चुके श्री संदीप राशिनकर व विशिष्ट कृति 'कुछ मेरी कुछ तुम्हारी' की चर्चित लेखिका श्रीमती श्रीति राशिनकर को देने की घोषणा की गई। □

'सदस्यनामा' पुस्तक लोकार्पित

१६ मई को नई दिल्ली में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में आयोजित समारोह में केंद्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज मंत्री श्री गिरिराज सिंह ने डॉ. चंद्रशेखर प्राण की पुस्तक 'ग्राम पंचायत सदस्यनामा' का लोकार्पण किया। श्री गिरिराजजी ने पंचायतों की मजबूती के लिए संवाद की आवश्यकता बताई। अध्यक्षता राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष एवं वरिष्ठ पत्रकार श्री रामबहादुर राय ने की। विशिष्ट अतिथि एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डॉ. महेशचंद्र शर्मा थे। इंदिरा गांधी कला केंद्र के सदस्य सचिव डॉ. सच्चिदानंद जोशी ने पुस्तक को पंचायतों के लिए श्रीमद्भगवद्गीता की तरह बताया। इंडिया पंचायत फाउंडेशन के ट्रस्टी श्री रामचंद्र राव, वरिष्ठ पत्रकार श्री अरुण तिवारी एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र शैक्षणिक इकाई के प्रो. अरुण भारद्वाज ने भी आयोजन को संबोधित किया। □

लघुकथा संगोष्ठी संपन्न

१६ जून को कोलकाता में अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक एवं सामाजिक संस्था 'रचनाकार' के तत्त्वावधान में ऑनलाइन आयोजित लघुकथा संगोष्ठी में सुश्री विद्या भंडारी के संचालन में सर्वश्री स्वीटी सिंघल, विजेंद्र जैमिनी, अन्नपूर्णा बाजपेई, कुमुद शर्मा, सिद्धेश्वर, ऋचा शर्मा 'सिहरन', विद्या भंडारी ने अपनी लघुकथाओं का पाठ किया। □

कार्यशाला एवं लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न

९ जून को रूम टू रीड इंडिया ट्रस्ट, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास और दून विश्वविद्यालय, देहरादून के संयुक्त तत्त्वावधान में दून विश्वविद्यालय, केदारपुरम देहरादून के सीनेट हॉल में 'मूलभूत शिक्षा के संदर्भ में बाल साहित्य' विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला में कुलपति प्रो. सुरेखा डंगवाल, शिक्षाविद् श्री शक्तिव्रत सेन, रूम टू रीड इंडिया ट्रस्ट की कार्यक्रम निदेशक श्रीमती पुष्पलता रावत, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की सुश्री स्वाति बडोला के साथ ही उपस्थित साहित्यकारों ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर रूम टू रीड इंडिया ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'बुनियादी शिक्षा और बाल साहित्य' (शिक्षाविदों और साहित्यकारों से संवाद) पुस्तिका का लोकार्पण भी हुआ। संचालन श्रीमती रोहिणी राय व श्री मुकेश नौटियाल ने संयुक्त रूप से किया। धन्यवाद डॉ. चेतना द्वारा किया गया। □

साहित्यिक क्षति

श्री योगेंद्र बाबा नहीं रहे

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वरिष्ठ प्रचारक व संस्कार भारती के संरक्षक पद्मश्री बाबा योगेंद्र का ९८ वर्ष की आयु में १० जून, २०२२ को स्वर्गवास हो गया। उनका जन्म ७ जनवरी, १९२४ को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में गांधीनगर में हुआ था। बाबा योगेंद्रजी कला तथा साहित्य के क्षेत्र में काम करनेवाली अखिल भारतीय संस्था 'संस्कार भारती' के संस्थापक थे तथा अनेक वर्षों तक राष्ट्रीय संगठन मंत्री रहे। कला क्षेत्र में उनके योगदान को देखते हुए वर्ष २०१८ में भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया था। इसके अतिरिक्त भाऊराव देवरस सेवा सम्मान, अहिल्या बाई होलकर राष्ट्रीय पुरस्कार तथा अनेक पुरस्कारों से भी वे सम्मानित हुए थे। वर्ष १९८१ में जब संस्कार भारती की स्थापना हुई तो बाबा योगेंद्रजी को उसके अखिल भारतीय संगठन मंत्री का दायित्व सौंपा गया। उनके सतत मार्गदर्शन के कारण आज 'संस्कार भारती' कला-साहित्य के क्षेत्र में देश की अग्रणी संस्था है।

श्री गोपीचंद नारंग नहीं रहे

उर्दू के प्रख्यात विद्वान् और साहित्यकार श्री गोपीचंद नारंग का अमेरिका के शेर्लोट शहर में उनके बेटे के घर पर निधन हो गया। वह ९१ वर्ष के थे। नारंग का जन्म बलूचिस्तान (अब पाकिस्तान में) के छोटे से शहर दुक्की में हुआ था। उन्होंने उर्दू, हिंदी और अंग्रेजी में ६० से अधिक पुस्तकें लिखीं। श्री नारंग को १९९० में पद्मश्री, २००४ में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया था। वर्ष २०१२ में पाकिस्तान ने उन्हें सितारा-ए-इम्तियाज से सम्मानित किया। उन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय और जामिया मिल्लिया इस्लामिया द्वारा प्रोफेसर एमेरिट्स सम्मान मिला था। १९९५ में उन्होंने साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त किया।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से
दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।